महारात्रि

(उपन्यास)

लेखक

यशोधर महेता

अनुवादक

श्यामू संन्यासी

मगनलाल जैन

वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट

३, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-

© यशोधर महेता

• प्रथम संस्करण
मई, १९६०

• मूल्य : ५·५०

• प्रकाशक :
के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स, प्रा. लि.
३, राउण्ड बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड,
बम्बई २.

• मुद्रक :
मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३.

प्रकाशकीय

भारतीय विचार-धारा और दर्शन में त्याग की बड़ी महिमा है। त्याग, और उसके साथ-साथ सेवा को समस्त ऐहिक और पारलौकिक उद्देश्यों एवं सुखों की प्राप्ति का मूलमंत्र कहा गया है। श्री यशोधर महेता ने अपने इस उपन्यास 'महारात्रि' में इसी मौलिक तथ्य का उद्घाटन किया है। आधुनिक कर्मसंकुल भौतिक जीवन के सफल निरूपण के साथ-साथ लेखक ने आध्यात्मिक जीवन और उससे सम्बन्धित रहस्यवाद का बड़ी कुशलता से चित्रण किया है।

उपन्यास का नायक धर्मवीर, जो रंतिनाथ के नाम से प्रसिद्ध है, बाल्यकाल से ही शक्ति का उपासक था। युवावस्था में उसका प्रेम जिस कुमारी से हुआ, वह संयोग-वैचित्र्य के कारण उसी के छोटे भाई की पत्नी बनी। धर्मवीर को इसके कारण आघात नहीं लगा, वह प्रतिहिंसा से नहीं भर गया, कुपित भी नहीं हुआ। उपनिषद् के इस सूत्र 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' ने

उसका मार्गदर्शन किया। पाने से अधिक त्यागने के सुख को उसने जाना। उसकी समस्त माया, ममता और मोह विश्वात्मा की ओर अभिमुख हुए और वह भौतिक धरातल से ऊँचे आध्यात्मिक धरातल पर रहने-विचरने लगा। भौतिकता की जननी इंग्लैण्ड में वह आ बसा और वहाँ भी उसने अगणित लोगों को अपने आध्यात्मिक, रहस्यवादी विचारों से प्रभावित किया। उसके विचारों और व्यक्तित्व के कारण कई लोग अपने वैयक्तिक सुख-दु:खों से ऊँचे उठकर विश्व मानवता की काम्य और वरेण्य कोटि को प्राप्त हो सके।

लेखक ने इस बात पर विशेष रूप से जोर दिया है कि स्थायी सुख के लिए हमें सम्पन्नता का मोह, प्राप्ति की अभिलाषा और शारीरिक आनन्द की कामनाओं का त्याग करना तथा अपना प्रतिपल मानवता की सेवा में समर्पित करना चाहिए।

लेकिन यह समझना भूल होगी कि आध्यात्मिकता के रंग में रँगे हुए इस उपन्यास में उपदेशों और धार्मिक प्रवचनों की भरमार है। नहीं, इसमें उपदेश और धार्मिक प्रवचन कहीं नहीं हैं। मनोरंजक, रोचक घटनाओं के माध्यम से ही लेखक ने अपने अभीष्ट कथन को उद्घोषित किया है।

उपन्यास के सभी तत्त्व—रोमांचकता, कौतूहल, पुलकित करनेवाले प्रेम-प्रसंग, मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ, आश्चर्य-घटनाएँ—सभी कुछ होते हुए भी इस कृति का मुख्य स्वर आध्यात्मिक ही है। भारतीय कथा-साहित्य में भौतिकता और आध्यात्म का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ ही है। भारत, इंग्लैण्ड और यूरोप के अपने प्रादेशिक ज्ञान से लेखक ने प्रचुर लाभ उठाया और कथा-भूमि को सुखद विस्तार प्रदान किया है। निश्चय ही यह कृति हिन्दी कथा-साहित्य के पाठकों की रस-वृद्धि तथा ज्ञान-वृद्धि में सहायक होगी।

सूची

१ : कुहरा

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में, एक दिन सारा लन्दन शहर कुहरे में डूबा हुआ था। खड़े रहने की जगह से तीन क़दम आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता था। अगर दीख भी जाता तो बिलकुल धुँधला—परछाईं की भाँति अस्पष्ट। सड़कों पर बसें और कारें धीरे-धीरे रेंग रही थीं और फ़ुटपाथ पर चलनेवाले मनुष्य अक्सर एक-दूसरे से टकरा जाते थे। जब कोई युवक किसी युवती से टकराता तब शिष्टाचार की खातिर 'सॉरी' (अफ़सोस है) कहता, लेकिन उसके चेहरे पर अफ़सोस ज़रा भी दिखाई नहीं देता था। युवती भी हलकी मुस्कराहट के साथ 'आई एम सॉरी' कहती, लेकिन उसके दिल में अफ़सोस का नामनिशान तक न होता। कभी-कभी तो उन टक्करों से प्रेम की चिनगारियाँ भी फूट निकलतीं और वह प्रेम अपने स्वाभाविक मार्ग पर आगे बढ़ने लगता था। नवम्बर के उस कुहरे ने कई युवक-युवतियों को एक-दूसरे के प्रेम में फँसाकर विवाह-बन्धन में बाँधा होगा और पश्चात्ताप का पाठ पढ़ाकर पाँच-दस वर्ष में सचमुच 'सॉरी' भी किया होगा, लेकिन किसी ने उसका लेखा-जोखा नहीं रखा।

सिर्फ़ नौजवान ही नहीं टकराते थे, प्रौढ़-प्रौढ़ाओं में भी कई बार टक्करें हो जाती थीं, और वे भी झूठ-मूठ के लिए 'सॉरी' होते थे।

लन्दन में नवम्बर का वह कुहरा प्रेम की उपलब्धि का उपयुक्त अवसर होने के कारण कई लोग उस धुँधलके में घूमना पसन्द करते थे।

ऐसे ही धुँधलके में उस दिन एक आकृति 'हॉबर्न वाया डक्ट' पर से धीरे-धीरे हॉबर्न की ओर आ रही थी। घने कुहरे में काला ओवरकोट और काला हेट एकाकार हो गये थे; सिर्फ़ गले में लिपटे हुए चितकबरे गुलूबन्द से ही उस आकृति की चाल जानी जा सकती थी। चाल धीमी किन्तु दृढ़ थी और वह आकृति एक पुरुष की थी।

चेन्सरी लेन के मोड़ पर वह आकृति क्षण-भर ठिठकी, उसने जेब में से सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट हाथ में ली।

उसी समय एक दूसरी आकृति चेन्सरी लेन से निकलकर तेज़ी से हॉबर्न की ओर मुड़ी। और मुड़ते ही मोड़ पर खड़ी इस आकृति से टकरा गई।

'सॉरी!'

'सॉरी!'

वह दूसरी आकृति स्त्री की थी। फरवाला काला ओवरकोट और सफ़ेद पंखों-वाली काली फ्रेंच हैट में सजी हुई वह फैशनेबल आकृति स्तम्भित-सी वहीं-की-वहीं खड़ी रह गई। पुरुष भी सहम गया और उसके एक हाथ में सिगरेट और दूसरे में लाइटर ज्यों-के-त्यों रह गये।

'हाय रे, इस कुहरे ने तो गजब कर दिया! मैं लन्दन से अपरिचित हूँ, और मुझे हॉबर्न स्टेशन जाना है।'

वह पुरुष सहसा कुछ बोल न सका; सिर्फ स्त्री की ओर देखता रहा; और तब उसने कहा—चलिए, मैं उसी ओर जा रहा हूँ।

इतना कहकर उसने सिगरेट का पैकेट स्त्री की ओर बढ़ाया और लाइटर निकालकर उसकी सिगरेट सुलगा दी।

कुछ दूर तक दोनो साथ-साथ चलते रहे। कुहरा बिखर रहा था और लाल-लाल नारंगी-जैसा सूरज मानो उसे कुछ क्रोध में भरा घूर रहा था।

कुहरे के छँटते ही ठंड बढ़ने लगी। नाक, कान और गरदन पर मानो बर्फ की धारदार छुरियाँ घिसी जाने लगीं। निखरते हुए प्रकाश में दोनो ने एक-दूसरे की ओर देखा।

पुरुष की उम्र चालीस-पैंतालीस वर्ष के लगभग होगी। उसका मुँह सुन्दर और गोलाकार, कन्धे चौड़े और ऊँचाई भरपूर थी। आँखों में विचारों की गहनता और रंग गेहुँआ था।

नारी का रंग अत्यन्त गोरा और उम्र तीस के लगभग थी। चेहरा उसका भी सुन्दर और गोल था। नाक छोटी, नुकीली और आँखें चमकीली। कद औसत दर्जे का और शरीर भरा हुआ। ओठ बड़े ही आकर्षक और अंग-उपांग तराशे हुए थे।

कौन हो सकता है यह व्यक्ति ?—स्त्री सोचने लगी।

'यह सर्दी तो काट रही है! इच्छा हो तो एकाध प्याली पी लें इस बार में।' उसने पुरुष से शिष्टाचार की खातिर कहा।

'मैं पीता तो नहीं, लेकिन आपके साथ बैठूँगा जरूर।'

दोनो ने हॉबर्न स्टेशन के पासवाले 'बार' में प्रवेश किया। 'बार' भरा हुआ था, और आतिशदान में आग जोरों से जल रही थी। अँग्रेज नर-नारी बार के आसपास प्यालियाँ भर-भर कर धीरे-धीरे पी रहे थे। सबके मुँह पर एक ही बात थी कि भई, ऐसा कुहरा और ऐसी कड़ाके की ठंड तो कभी नहीं देखी!

अँग्रेज स्त्री-पुरुषों के गाल और नाक सर्दी के मारे गुलाबी हो रहे थे और जब शराब की एक-दो प्यालियाँ पेट में पहुँच जातीं तब वह गुलाबी रंग धीरे-धीरे कम हो जाता था।

'आप कुछ भी नहीं लेंगे ?' स्त्री ने पूछा।

'जी, कुछ भी नहीं।'

'शेरी।' स्त्री ने बारमैन से कहा।

बारमैन स्त्री के लिए शेरी ले आया। घड़ी सुबह के ग्यारह बजा रही थी ?

'आप कौन हैं ?'

'मैं अँग्रेज हूँ; मेरे पति सेना में कप्तान हैं, आजकल वे हिन्दुस्तान में हैं। मैं काउण्टी के अपने घर इप्स्विच में रहती हूँ। और आप ?'

'मैं हिन्दुस्तानी हूँ; कई वर्षों से यहीं रहता हूँ।'

इतना कहकर वह चुप हो गया। स्त्री को आशा थी कि वह अपने सम्बन्ध में कुछ और कहेगा, लेकिन वह तो अँगीठी की ओर टक लगाये बैठा रहा। स्त्री को उस व्यक्ति की आँखों में प्रकाश की गहनता और वाणी में दार्शनिक की शान्ति का अनुभव हुआ। उसे ऐसा बोध भी हुआ मानो वह उसे अनेक वर्षों से जानती है और नाम भूल गई है! वह अपने हृदय की उस अद्भुत भावना को समझने का प्रयत्न कर ही रही थी कि पुरुष ने अपनी आँखें उस पर गड़ा दीं और बोला—फिर कब मिलेंगे ?

पुरुष का स्वर गूँज-भरा और शब्द अर्थ-गम्भीर थे। 'फिर' शब्द तो नारी को अत्यन्त ही साभिप्राय प्रतीत हुआ; लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया; सिर्फ

मृदु मुस्कान के साथ पुरुष की ओर देखती रही।

'आश्चर्य, महान आश्चर्य !' आखिर वह बोली।

पुरुष ने उन शब्दों का उत्तर मौन रहकर दिया।

'क्या आपको ऐसा नहीं लगता मानो हम एक-दूसरे को अनेक वर्षों से पहि-चानते हों ?' स्त्री ने पूछा।

'हो सकता है।'

इतना कहकर वह गहरे विचारों में निमग्न हो गया। वह टक लगाये आतिश-दान की लपटों को देखता रहा। घड़ी ने बारह बजाये। 'बार' बन्द होने को आया। सब बाहर निकलने लगे। लेकिन वह तो उसी प्रकार आग की ओर दृष्टि लगाये बैठा रहा। स्त्री उसे एकटक देख रही थी। ऐसी एकाग्रता उसने अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। कौन है यह विचित्र पुरुष ? वह विचार-तरंगों में डूबने-उत-राने लगी।

'समय हो चुका है साहब !' 'बार' के नौकर ने आवाज़ दी। 'बार' खाली हो चुका था।

'चलें हम लोग ?' स्त्री ने धीमे स्वर में पूछा और पर्स हाथ में ले ली।

'हूँ ! कहाँ ?' मानो किसी स्वप्न से चौंककर उसने कहा।

'बारह बज चुके हैं। हमें जाना चाहिए।'

स्त्री के इन शब्दों को सुनकर वह जैसे सजग हुआ और तब दोनो उठे।

'यही है हॉबर्न स्टेशन।' पुरुष ने कहा।

'कृतज्ञ हुई। पता भी नहीं चला और समय बीत गया।'

हैट उतारकर वह निर्निमेष उस स्त्री की ओर देखने लगा। उसका उन आँखों में कोई दैवी वाणी भरी हुई थी।

'मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि हम फिर कभी मिलें।' स्त्री ने कहा।

'जाने की जल्दी है क्या ?'

'नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं है, ले....कि....न....'

'मेरा कमरा पास ही है। यदि आपत्ति न हो तो चलिए। तले हुए आलुओं, अंडों और डबल रोटी से स्वागत करूँगा। गरीब आदमी हूँ इसलिए खाना भी गरीबा-गरीबी ही होगा। चलेगा न ?'

कुछ हिचकिचाहट के बाद उसने हँसकर कहा—चलेगा। क्यों नहीं, चलिए।
और दोनो हॉबर्न से रसल स्क्वेअर की ओर चल पड़े।

२ : धुँधलका

रसल स्क्वेअर की एक गली में वे लोग एक सादे और अनाकर्षक मकान के आगे आकर रुक गये। लन्दन के मकान सादे और अनाकर्षक तो होते ही हैं, लेकिन यह मकान तो बिलकुल ही गया-बीता था।

पुरुष ने जेब से चाबी निकालकर दरवाज़ा खोला और दोनो ने अन्दर प्रवेश किया। ऊपर जाने की सीढ़ी एकदम पुरानी थी; उस पर बिछे हुए मखमल का रंग उड़ गया था और जगह-जगह से इस बुरी तरह फट गया था कि ज़रा-सा चूकते ही पाँव फँस जाता और चलनेवाला गिर पड़ता।

'राजमहल पुराना है, ज़रा सँभलकर।'

स्त्री हँस दी। अँधेरा था। पुरुष ने बत्ती जला दी।

पहली मंज़िल पर दरवाज़ा खोलकर दोनो एक कमरे में पहुँचे। कमरे में सादगी की मानो पराकाष्ठा थी। आकार-प्रकार में बड़ा होते हुए भी उसमें एक मामूली पलंग, एक टूटी-सी आलमारी और दो चरमराती हुई आरामकुर्सियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। आतिशदान की कोर्निस पर, पलंग के आसपास और नीचे फर्श पर काग़ज़ तथा किताबें अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ी थीं।

दीवार पर लगा कागज उधड़ गया था, और उसके रंग-रोगन का पता भी नहीं चल रहा था। कूड़ा-कचरा चारों ओर बिखरा पड़ा था। कमरा ऐसा लग रहा था मानो कोई लँगोटधारी बाबा भभूत लगाये बैठा हो।

कमरे के एक ओर छोटा-सा रसोईघर और दूसरी ओर स्नानगृह था।

'बैठिए।' उसने कुर्सी की ओर इंगित करते हुए स्त्री से कहा।

वह बैठते ही उछल पड़ी, क्योंकि कुर्सी की स्प्रिंगों को उसका बैठना पसन्द नहीं आया। लेकिन फिर आपस में समझौता हो गया और वह जमकर बैठ गई। पुरुष ने गैसबॉक्स में एक शिलिंग डालकर सिगड़ी सुलगाई और दोनो तापने लगे।

अपने-अपने ओवरकोट उतारकर दोनो ने एक ओर रख दिये थे। स्त्री ने

देखा कि पुरुष का सूट चिथड़े-चिथड़े हो रहा था। पतलून की किनारें उधड़ गई थीं, कमीज़ का कॉलर फट गया था। कुछ देर तक दोनो चुपचाप तापते रहे। फिर वह खड़ा हुआ और बोला—अच्छा, तो अब मैं भोजन का प्रबन्ध करूँ।

'चलिए, मैं भी मदद करती हूँ।'

'क्या जरूरत है ? आप बैठिए।'

'नहीं-नहीं, मैं मदद करूँगी।'

दोनो रसोईघर में पहुँचे। पुरुष ने गैस की सिगड़ी सुलगाई। स्त्री आलू धोने लगी।

'आप अकेले हैं ?'

'जी हाँ।'

'क्या करते हैं ?'

'लिखना-पढ़ना। पुरानी किताबें खरीदता और बेचता भी हूँ।'

'काम में मज़ा आता है ?'

'आलू, अंडे, कमरे का किराया और गैस का शिलिंग मिल जाता है; फिर मज़ा क्यों नहीं आयेगा ?'

'आप बड़े विचित्र आदमी हैं !'

'कौन-सी विचित्रता दिखाई दी ?'

'आपको जैसे किसी बात से असन्तोष ही नहीं।'

वह खड़ा हँसता रहा; और इस बीच स्त्री ने आलू और अंडे तल डाले। फिर डबलरोटी के टुकड़ों पर मक्खन लगाया और काँच की तश्तरियों में खाना रख-कर दोनो बाहर के कमरे में ले आये। चम्मच-काँटे पुराने थे; नमक और मिर्च की शीशियों के ढक्कन पर जंग लग रही थी।

दोनो खाने बैठे। बिलकुल सादे भोजन में अच्छे-बुरे की फ़िलॉसफ़ी के लिए कोई स्थान नहीं था।

'आपको तो यह खाना बिलकुल सादा लगता होगा।' वह खाते-खाते बोला।

'बेशक; यह कोई दावत तो है नहीं। वैसे सादा भोजन मुझे पसन्द है, लेकिन हर रोज़ नहीं।'

'ऐसी कोई चीज़ बतला सकती हैं जो हर रोज़ पसन्द आये ?'

इस विचित्र प्रश्न ने उसे सोचने को विवश किया।

'मैं नहीं मानती कि ऐसी कोई चीज़ हो सकती है।'

इतना कहकर वह चुप हो गई और पुरुष का मुँह ताकने लगी। लेकिन वह कुछ न बोला।

'आप मानते हैं कि ऐसी कोई वस्तु हो सकती है ?'

पुरुष का मौन भंग करने के लिए उसने पुनः प्रश्न किया। वह भोजन कर रहा था। उत्तर देने से पहले उसने पानी पीया और कहा—हाँ, मानता हूँ।

'तो बतलाइए।'

'लेकिन मैं पूरी तरह नहीं जानता।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि ऐसी मेरी श्रद्धा है। उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।'

इतना कहकर उसने सिगरेट-केस स्त्री की ओर बढ़ाया और तब उसकी ओर स्वयं अपनी भी सिगरेट सुलगाकर आराम से पीने लगा। सिगरेट के धुएँ पर दृष्टि स्थिर करके वह विचारों में डूब गया।

मौन में शीतलता और उष्मा दोनो रहती हैं। उस युवती को पुरुष के मौन में उष्मा का आभास हुआ। उसके मस्तिष्क में कई स्पष्ट और अस्पष्ट विचार मँड-राने लगे। उसे अपना हृदय उस व्यक्ति की ओर आकर्षित होता प्रतीत हुआ। सहसा उसे अपने पति का स्मरण हो आया। सहसा इसलिए कि अपने पति को याद करने या भूलने का उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। और शायद ही किसी पति या पत्नी को ऐसा प्रयत्न करना पड़ता हो; क्योंकि विवाह के बाद पति या पत्नी स्मरण या विस्मरण करने की नहीं, केवल स्वीकार करने की वस्तुएँ होती हैं।

'क्या विचार कर रहे हैं ?'

कुछ भी उत्तर दिये बिना पुरुष स्त्री की ओर ध्यान से देखता रहा। उस शान्त, सौम्य दृष्टि से स्त्री के मन को बड़ा सुख मिल रहा था।

'क्या विचार कर रहे हैं ?' उसने फिर पूछा।

'तुम्हारे और अपने बारे में।'

पुरुष के शब्द सुनकर उसने स्नेहपूर्ण कोमल दृष्टि से उसकी ओर देखा। उस व्यक्ति के सादे और सरल शब्दों में उसे गूढ़ता और गहनता दृष्टिगोचर हुई। वहाँ

उसे उथली रागात्मकता नहीं, गहरा प्रेम दिखाई दिया।

'कितना अद्भुत! हम एक-दूसरे को जानते तक नहीं, फिर भी....'

'स्मृति-विस्मृति के रंग-ढंग तो नवम्बर के कुहरे-जैसे होते हैं। कुहरा बिखरता है और जमता है, जमता है और बिखरता है।'

स्त्री ने उसके शब्दों का रहस्य समझने का बहुतेरा प्रयत्न किया, किन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

'मैं चाहती हूँ कि आपके मन में नवम्बर का कुहरा न बनी रहूँ।' इतना कहकर उसने पुरुष के हाथ का स्पर्श किया।

'लेकिन नवम्बर के कुहरे में हम मिले हैं इस बात को तो भुलाया नहीं जा सकता।'

इतना कहकर उसने स्त्री का हाथ थाम लिया और निर्निमेष उसकी ओर देखता रहा। स्त्री को उन आँखों में चमकते हुए तारे का प्रकाश दिखाई दिया। और उस व्यक्ति की असाधारणता को परखते उसे देर न लगी।

'नहीं, कभी नहीं।' केवल इतना ही वह कह सकी।

एकान्त की उष्मा-भरी शान्ति का मानो पार नहीं था। चेतन की अनुपम उष्मा में दोनो व्यक्ति अनन्त जीवन का अमृत-रस पी रहे थे। स्त्री को मन-ही-मन ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे अविस्मरणीय-से क्षण आत्मबोध करा रहे हों। उस अपरिचित पुरुष के सान्निध्य में वह अपना पृथकत्व भूलती गई और उसके नेत्रों की गहनता को देखते-देखते आनन्द-निद्रा में निमग्न हो गई। पुरुष के हाथ में स्त्री का हाथ निश्चल पड़ा रहा; और जीवन-तत्व का विशिष्ट आह्लाद वातावरण में व्याप्त होता रहा।

दिशाएँ जब शून्य हुईं तब समय का ज्ञान अपने-आप लुप्त हो गया। माया का विलोप हुआ और आत्मकला का विस्तार। यह कहना कठिन है कि वे दोनो निद्रा में थे या समाधि में। कदाचित् यही कहना सही होगा कि पुरुष और स्त्री काल की मर्यादा को लाँघकर एकाकार हो गये थे।

लेकिन घड़ी अपना कार्य किये जा रही थी। दोपहर के दो बजे, तीन बजे, चार बजे।

'टनननन' दरवाजे की घंटी बज उठी।

वह जागा। स्त्री सो रही थी। उसे सोया छोड़कर वह सावधानी से उठा; दरवाज़ा खोला। दूधवाला दूध की शीशी देकर चला गया।

उसने पाँच मिनट में चाय तैयार की। चाय और वुलवर्थ से खरीदे हुए छः पेन्स के बिस्किट ट्रे में रखकर वह युवती के पास आया। युवती अब भी सो रही थी। उसने उसके कोमल हाथ पर हाथ रखा और अत्यन्त धीमे स्वर में बोला—चाय तैयार है।

'कहाँ जाते हो? हाथ न छुड़ाओ!' सोते-ही-सोते उसने कहा, 'अपना हाथ दो। जाओ मत।'

'मैं यहीं हूँ; चाय तैयार है।'

युवती ने आँखें खोलीं। वह बैठा-बैठा उसे देख रहा था। उसे देखते ही युवती आनन्दित हो उठी और बिना कुछ कहे उसके दोनो हाथ पकड़ लिये।

'कहाँ थे तुम?' इतना कहकर वह हँसती हुई उसे देखती रही।

'तुम्हारे ही साथ।'

'चलो, चाय पीयें।'

नारी की आँखों में आनन्द, उत्साह और उमंग का सागर लहरा रहा था। चाय के हर एक घूँट के साथ वह पुरुष की दृष्टि को भी पी रही थी।

घड़ी ने पाँच बजाये।

'समय कितनी जल्दी बीता जा रहा है!' युवती के शब्दों में भावी वियोग की ध्वनि थी।

'समय नहीं बीतता, हमीं समय से भागते हैं।'

'मैं भागूँगी नहीं तो घर कैसे पहुँचूँगी?'

'घर तो सब पहुँचते ही हैं। समय का विचार उस समय करना चाहिए जब सुख न हो।'

वह हँस पड़ी। उसे जाने की ज़रा भी जल्दी नहीं थी, इच्छा भी नहीं थी। वह खड़ा हुआ और घड़ी की सुइयाँ घुमाकर दो बजा दिये।

'लो बस! अब दो बजे हैं।'

युवती की हँसी की कोई सीमा नहीं थी। उस मस्त और बेफ़िक्र आदमी ने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया था।

'लेकिन रेल इस घड़ी को थोड़े ही मानेगी !'

'हम रेल को ही नहीं मानें ।'

'तो फिर इप्स्विच किस तरह पहुँचूँगी ?'

'ट्रेन में बैठकर ।'

'तो ट्रेन के समय का भी ध्यान रखना पड़ेगा ।'

'नहीं रखेंगे तो क्या ट्रेनें रुक जायेंगी ?'

'अरे, कैसी बात कर रहे हो !'

'जाना है यह तो निश्चित है । लेकिन कब जाना है इसका निर्णय तुम्हें करना है या घड़ी से करवाना है ?'

'करना तो मुझी को है ।'

'तो फिर घड़ी की सहायता के बिना ही करो ।'

'मैं रात को दस बजे की ट्रेन से जाऊँगी ।'

'चली जाना ।'

'फिर कब मिलेंगे ?'

'जब तुम चाहो ।'

पीछे की हुई घड़ी भी आगे बढ़ रही थी । दोनो एक-दूसरे की ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे । ठंड बढ़ती जा रही थी और बुझती हुई लपट को पुनः उकसाने के लिए वह गैसबाक्स में दूसरा शिलिंग डाल ही रहा था कि युवती ने उसे रोका ।

'चलो, बाहर घूम आयें ।'

'चलो ।'

आध घण्टे तक चलने के बाद दोनो एक छोटे-से काफे में गये । काफे सुन्दर और एकान्त जगह था । तीन-चार जोड़े मद्धिम प्रकाश में बैठे-बैठे धीमे स्वर में बातें कर रहे थे । पुरुष ने थोड़ा-सा नाश्ता और कॉफी मँगवाई ।

'क्या लगता है आपको, युद्ध होगा ?' स्त्री ने पूछा

'जरूर ।'

'आप क्या करेंगे ?'

'अभी कोई निर्णय नहीं किया ।'

'मेरी समझ में तो आप हिन्दुस्तान चले जायेंगे।'

'हो सकता है।'

'मैं भी हिन्दुस्तान जाने का विचार कर रही हूँ।'

'कहाँ रहेंगी ?'

'रानीखेत। मेरे पति वहीं हैं। आप कहाँ रहते हैं ?'

'सारी दुनिया मेरा देश है।'

उत्तर सुनकर युवती को आश्चर्य हुआ।

'रानीखेत देखा है आपने ?' पुरुष ने प्रसंग बदल दिया।

'नहीं तो। कुछ वर्ष पहले मेरा विवाह हुआ और हम लाहौर में एक वर्ष रहे। फिर मैं बीमार हो गई और देश लौट आई। उसके बाद दो बार हिन्दुस्तान गई। हम लखनऊ में भी रह चुके हैं। रानीखेत कैसा है ?'

उत्तर देने से पूर्व उस व्यक्ति ने आँखें बन्द कर लीं, मानो ध्यान में लीन हो गया।

'क्यों, क्या कुछ याद आ गया ?'

'हिमालय।'

'मेरे पति लिखते हैं कि हिमालय बड़ा ही रमणीक स्थान है; उसकी भव्यता देखने के लिए मुझे जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुँच जाना चाहिए। उन्हें शिकार का भी बड़ा शौक है।'

'कब जा रही हो ?'

'कौन जाने ! मेरे न जाने का कारण जलवायु के सिवा कुछ नहीं है।'

'लेकिन हिमालय की जलवायु तो बहुत अच्छी है।'

'आप कब हिन्दुस्तान जा रहे हैं ?'

युवती के प्रश्न का उत्तर उसने हाथ के इशारे से दिया, जिसका अर्थ यह था कि मुझे मालूम नहीं।

रात बढ़ रही थी; घड़ी की सुइयाँ आगे रेंग रही थीं। पुरुष की मुखाकृति युवती को ध्यान से देख रही थी। शान्ति और सौम्यता दोनो के मुखमंडल पर समान रूप से व्याप्त थी। युवती को लगा कि पुरुष उसके हृदय को उष्मा प्रदान कर रहा है।

आखिर दोनो उठे।

'मैं बिल चुकाऊँ तो तुम्हें आपत्ति होगी?' युवती ने मधुर स्वर में पूछा।

'मैं जरा देख लूँ; मेरे पास पैसे न निकलें तो तुम दे सकती हो।'

इतना कहकर उसने मुस्कराते हुए बटुआ निकाला। उसमें बिल चुकाने जितने ही पैसे थे।

'लेकिन मैं चुकाऊँ तो क्या हर्ज है?' स्त्री ने पूछा।

'यह पैसा आज नहीं तो कल जब खर्च होना ही है तब आज ही क्यों न हों?' पुरुष ने लापरवाही से कहा।

युवती कुछ न बोली और दोनो बाहर निकल आये। कड़कड़ाती ठंड में उसने अपना हाथ पुरुष के हाथ में दे दिया और उससे सटकर चलने लगी। उसके शरीर को गरमाहट मिल रही थी। उसे लग रहा था कि दोनो एक-दूसरे को अनन्तकाल से पहचानते हैं और वह स्वयं उस मनुष्य की परछाईं है।

धीरे-धीरे वे चलते हुए युस्टन स्टेशन पहुँचे। गाड़ी छूटने में अधिक देर नहीं थी।

'फिर कब मिलेंगे?' युवती ने पूछा।

'आने से पहले मुझे सूचित करना।'

'आपका नाम और पता?'

'रतिनाथ।' और उसने अपना नाम-पता उसे दे दिया।

'मुझे मिसेज़ लैम्बर्ट कहते हैं। तुम आइलीन भी कह सकते हो।'

प्लेटफार्म के मद्धिम प्रकाश में धीरे-धीरे चलते हुए जब दोनों डिब्बे के आगे आये तब आइलीन ने टूटते हृदय से धीरे-से अपना हाथ खींच लिया और रतिनाथ की ओर देखती हुई चुप खड़ी रही। उसके नेत्रों की सुकुमारता पर अपना हृदय निछावर करता हुआ रतिनाथ आइलीन के कोमल हाथों को पकड़े चुपचाप खड़ा था।

'आज का यह मिलन मैं कभी भूल नहीं सकती।' इतना कहकर आइलीन ट्रेन में बैठ गई और देखते-देखते ट्रेन चल दी।

३ : विचित्र अनुभव

अर्द्धरात्रि के घने काले पर्दे ने पृथ्वी को आवृत्त कर लिया था। कृष्ण-वर्णा विकराल प्रकृति देवी आसमान के ऊँचे आसन पर बैठी हुई थी। कड़ाके की ठंड में निरन्तर जलती हुई आग को स्थिर चित्त से देखता हुआ रंतिनाथ कुर्सी में पड़ा था। उसका हृदय अग्नि की उष्मा में शान्ति प्राप्त कर रहा था। रात धीरे-धीरे बढ़ती जाती थी और रंतिनाथ का मन एकाग्र होता जाता था।

बाह्य अन्धकार ज्यों-ज्यों बढ़ रहा था रंतिनाथ के अन्तर में प्रकाश की किरणें उसी परिमाण में फैलती जाती थीं। बिना किसी प्रयत्न के, अनायास ही वह मन के गूढ़-गहन प्रदेश में खिंचा जा रहा था। उसके दृष्टि-पथ पर छाया हुआ काल का कुहरा छिन्न होकर अतीत, अनागत और अगम्य का अरुणोदय होने लगा था।

अन्धकार-पूरित वातावरण में अग्नि की ज्योति ईश्वर के शाश्वत अस्तित्व की साक्षी दे रही थी। उस अग्नि की वाणी अमर थी और उस अमर वाणी को सुनने की सामर्थ्य भी अग्नि ही प्रदान कर रही थी।

मन की गहराइयों में वह उतरता ही गया। थोड़ी ही देर बाद उसे नाभि के निकट कुछ उष्णता का अनुभव हुआ। वह उष्णता न तो जलते अंगारों की थी और न बिजली की। वह तो कुछ विचित्र ही प्रकार की अनुभूति थी, जो नाभि-प्रदेश से होकर धीरे-धीरे सारे शरीर में फैल रही थी। फिर उसे अपना स्थूल शरीर वायुमंडल में ऊपर उठता प्रतीत हुआ।

उसे विभिन्न प्रकार के रंग दिखाई दे रहे थे। क्षण में नीला, क्षण में बैंगनी, क्षण में नारंगी और क्षण में लाल—इस प्रकार रंग-बिरंगे प्रदेश में वह उड़ा जा रहा था। विभिन्न रंगों के साथ उसे विचित्र स्वर भी सुनाई दे रहे थे।

रंग-परिवर्तन के साथ स्वर भी बदल रहे थे; उनमें से कोई भी स्वर उसे अरुचिकर नहीं लगा।

सहसा वह नीले रंग की एक किरण में लीन हो गया और एक ही अविराम स्वर उसे जोर से सुनाई देने लगा। फिर उसे वातावरण के बदलने का आभास हुआ। उसका शरीर भी भारी होने लगा। जो स्वर वह सुन रहा था वह क्रमशः स्पष्ट होता हुआ अब एकदम साफ सुनाई पड़ने लगा था।

तेज़ी से भागती हुई एक ट्रेन प्लेटफ़ार्म पर आ पहुँची और एक डिब्बे से आइ-लीन उतरती दिखाई दी। रतिनाथ उसके पास पहुँच गया और बिलकुल धीरे-धीरे साथ चलने लगा। आइलीन विचारों में मग्न थी। सारी दुनिया अन्धकार में डूबी हुई थी। प्लेटफ़ार्म के मद्धिम प्रकाश में चलकर वह स्टेशन के बाहर आई। आम रास्ते पर भी धुँधलका ही था। उस धुँधलके और कड़ाके की ठंड में कुछ दूर चलने के बाद वह दाहिनी ओर के रास्ते पर मुड़ गई। इस रास्ते पर तो निरा अन्धकार छाया था। अपने विचारों में मग्न वह धीमी गति से फ़ुटपाथ पर चलने लगी। रास्ता एकदम सुनसान था।

थोड़ी देर में वह अपने घर के आगे पहुँच गई और उसने चाभी निकालकर दर-वाज़ा खोला। आवाज़ सुनकर घर का कुत्ता भोंकने लगा और नौकरानी आँखें मलकर उठ बैठी। कुत्ता भूँकता-भूँकता दरवाज़े तक आ गया।

'टाइगर!' आइलीन ने नाम लेकर कुत्ते को पुचकारा। तब तक नौकरानी भी आ गई।

'रोज़ी, तुम क्यों उठी?'

'आपने बहुत देर कर दी, मैडम।'

'हाँ रोज़ी, मैं गाड़ी चूक गई थी।'

'कॉफ़ी बनाऊँ मैडम?'

'नहीं रोज़ी, तुम सो जाओ।' इतना कहकर उसने टाइगर को थपथपाया और अपने शयन-कक्ष में चली गई। आतिशदान में अग्नि जँभाइयाँ ले रही थी: उसे झकझोर कर दहका दिया।

आइलीन का सोने का कमरा साफ़-सुथरा था। दीवार पर राजा और रानी के चित्र लटक रहे थे। मेंटलपीस पर उसकी और उसके पति की तसवीरें थीं। सामने-वाली दीवार पर शेर और रीछ के सिर सजे थे।

ड्रेसिंग टेबल के आगे खड़ी होकर उसने बत्ती जलाई और कपड़े बदलने लगी। उसका गोरा, मुरझाया मुखड़ा दर्पण में दमक उठा। आँखें मानो किसी दूर की वस्तु के लिए तरस रही थीं। चेहरे पर कुछ ऐसा भाव था मानो वह किसी अपरिचित स्थान में आ गई हो। वह अपने कमरे को घूर-घूरकर देखने लगी; जब काफ़ी देर देख चुकी तो उसने अपनी आकृति को देखना शुरू किया।

उसके दिल में दर्द था। इस समय अकेलेपन के कारण वह दर्द बढ़ने लगा। वह रंतिनाथ के बारे में सोचने लगी। वह इस समय क्या कर रहा होगा? जब वह रंतिनाथ के विचारों में एकाग्र हो गई तो उसे अपने हृदय में बिजली के कौंधने-जैसा अनुभव हुआ—उसने चौंककर पीछे देखा तो वहाँ कोई नहीं था। अपने इस विचित्र अनुभव पर विचार करती हुई वह पुनः कपड़े उतारने लगी।

उसका शरीर सुन्दर और सुडौल था। सुघड़ अंगों की भंगिमाएँ दीवार पर परछाइयाँ बनाने लगीं। खिड़की का मखमली पर्दा उसने गिरा दिया और वे परछाइयाँ अब उस पर्दे पर फैलने और विस्तारित होने।

जब उसका शरीर निरावृत्त हो गया तो प्रकृत आकृति के सौन्दर्य से दर्पण छलक उठा और सौन्दर्य-किरणों ने प्रतिबिम्बित होकर समूचे शयन-कक्ष को भर लिया। अपने शरीर को निरखती हुई वह रंतिनाथ के ध्यान में लीन हो गई।

उसका हृदय धड़क रहा था; साँस घुट रही थी। रंतिनाथ के विचारों में वह इतनी तल्लीन हो गई थी कि कब घड़ी ने तीन बजाये उसे कुछ ध्यान ही न रहा।

सहसा नाभि और हृदय के बीच का प्रदेश प्रकम्पित हुआ और अपने अन्तःकरण में उसे दूर से आता कोई स्वर सुनाई दिया।

'हलो!' यह स्वर मानो रंतिनाथ का था।

'रंतिनाथ!'

वह इतने धीरे-से बोली मानो केवल ओठ ही हिला रही हो।

क्षण-भर के लिए उसे ऐसा आभास हुआ मानो रंतिनाथ उसके कन्धे पकड़े सामने खड़ा हो।

'हलो!' आइलीन के हृदय ने पुनः सुना।

'रंतिनाथ!' वह फिर उसी तरह बोली। और उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके कन्धों और हाथों को कोई सहला रहा हो।

उन अदृश्य हाथों के स्नेह-कोमल स्पर्श ने उसकी समाधि को भंग कर दिया। वह हड़बड़ाकर नाइट-ड्रेस पहिनने लगी। फिर पलंग पर लेट गई और रजाई ओढ़कर आँखें मूँद लीं। कुछ ही देर बाद उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी का कोमल हाथ उसके मस्तक और गालों पर फिर रहा हो। वह हाथ इतनी ममता से भरा था कि शीघ्र ही उसे नींद आ गई।

उधर रंतिनाथ के कमरे में अग्नि बुझती जा रही थी; पाँच ही मिनट में आग बुझ गई। जब कमरा ठंडा हो गया तो रंतिनाथ भी जाग्रत हुआ। उसने देखा तो घड़ी में सवा तीन बज रहे थे।

बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे नींद नहीं आई। अपना विचित्र अनुभव उसे सोने नहीं दे रहा था। कुछ देर तक सोचने के बाद उसने एक कागज पर 'नं० ६, ग्रीनगेज, ग्रेनविल रोड' लिखा और तब बिस्तर पर लेट गया।

रात्रि के अन्धकार में दोनो की आत्माओं का पार्थक्य विलीन होगया था और चेतन-तत्व के एकाकार हो जाने से दिशाओं और काल ने अपना अस्तित्व खो दिया था।

लन्दन के आकाश पर घने बादल छा गये और सृष्टि पर बर्फ़ का अभिषेक होने लगा। बढ़ती हुई ठंड में मिनसारे का धुँधला प्रकाश ठिठुरे गगन की अट्टालिका से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा।

इप्स्विच के आकाश पर भी घटाएँ छा गईं और सृष्टि पर बर्फ़ की पुष्प-वृष्टि होने लगी। बढ़ती हुई ठंड में उषा के काँपते हुए सुनहरे बालमृग चुपचाप आकाश की कन्दराओं से बाहर निकल रहे थे।

४ : दो पत्र

दो दिन बाद आइलीन के नाम दो पत्र आये। एक लिफ़ाफ़े पर लिखे पते के अक्षर अपरिचित थे। उसने साश्चर्य लिफ़ाफ़ा खोला: लिखा था :

'प्रिय मित्र,

'तुम्हारे जाने के बाद मैं देर तक तुम्हारे ही बारे में सोचता रहा। यह पत्र इस विश्वास के साथ लिख रहा हूँ कि तुम भी मुझे याद करती होगी। जिस पते पर यह पत्र भेज रहा हूँ वह तुम्हारा ध्यान करते हुए अकस्मात् ही सूझ गया। आशा करता हूँ कि पता सही ही होगा। जाने क्यों ऐसा लगता है कि हमारा सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर से चला आता है। विस्मृति का आवरण यदि हटा सकें तो सब-कुछ एकदम स्पष्ट हो जायेगा। कब आ रही हो?

—रंतिनाथ।'

अन्तस् का आनन्द गंगा के पावन प्रवाह की भाँति होता है। वह मन की मैली

दीवारों के कल्मष को धो देता है। सच तो यह है कि आनन्द-रूपी पंख लगते ही आत्मा वैभव-मंडित हो जाती और देश तथा काल की सीमाओं को भेदकर सच्चिदानन्द के तट पर जा पहुँचती है। पत्र पढ़ते ही आइलीन के हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगीं। उसका कल्पना-लोक पहले संकुचित हुआ, फिर शून्य रह गया और तब रतिनाथ के रूप में विस्तारित होता चला गया। उसकी आत्मा रतिनाथ के रूप में नृत्य करने लगी। वह भेदातीत हो गई।

उसका समूचा अस्तित्व, प्रत्येक रोम और अणु-अणु रतिनाथ-मय हो उठा। एकात्म-बोध इतना उत्कट था कि प्रयत्न करके भी वह उसका निरोध न कर सकी और रतिनाथ के ध्यान में लवलीन हो गई।

हृदय का आलोक शरीर के अणु-अणु में व्याप्त हो गया और मन की भावनाएँ तरंगित होकर नृत्य करने लगीं। उसके प्रत्येक ज्ञान-तन्तु में आराधना का तांडव आरम्भ हुआ और वह भक्तिभाव से रतिनाथ की अर्चना में समाधिस्थ हो गई।

उसके ओठों पर वासन्ती उषा की लाली छा गई और गालों पर शिशिर के सूर्य की रक्तिमा छलक उठी।

उसने एक-एक अक्षर को पीते हुए पत्र पढ़ा। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और उसके प्रत्येक शब्द में लीन हो गई। समाधि की-सी अवस्था में उसने पत्र को छाती से लगाया। उसके हृदय की गति बढ़ गई और तन्तु-जाल में खिंचाव होने लगा।

'कब आ रही हो?' यह एक ही वाक्य रह-रहकर उसके हृदय में गूँजने लगा।

कुछ देर तक आँखें मूँदे वह रतिनाथ का ध्यान करती रही और तब उसने दूसरे पत्र की ओर देखा।

लिफाफे के ऊपर के अक्षर परिचित थे। वह पत्र उसके पति का था। उसने लिफाफा खोला और खिन्न मन, बिना किसी उल्लास के पढ़ने लगी। लिखा था—

'मेरी हृदय-साम्राज्ञी,

'तुम्हें पत्र लिखते हुए मेरा दिल धड़क रहा है। इन्हें स्याही के अक्षर मत समझना, यह मेरे हृदय की धड़कनें हैं। तुम्हारा अन्तिम पत्र रसपूर्ण ही नहीं, व्हिस्की की घूँट से भी अधिक मादक था। मैं तो रात-दिन तुम्हारे लिए तड़पता रहता हूँ।

कब आओगी ? तुम जल्दी-से-जल्दी आ जाओ ताकि हम साथ-साथ ही शिकार खेलने जा सकें। यहाँ के जंगल शिकार से भरे पड़े हैं और तुम्हारे लिए शेर अथवा चीते की खाल का कोट बनवाने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है। तुम्हारे बिना गोल्फ की गेंद दिखाई नहीं देती, व्हिस्की पानी-जैसी और पुडिंग कड़वा लगता है। दूर, सुदूर बर्फ़ की चोटियों पर तुम्हें ढूँढ़ता हूँ, लेकिन वहाँ भी तुम नहीं मिलतीं। वहाँ ऑरकेस्ट्रा के स्वरों में तुम्हारा मधुर मादक स्वर गूँज रहा होगा, फिर भी मैं नहीं सुन पाता। आ जाओ प्रिये ! और अपनी उपस्थिति से शून्य सृष्टि को सजीवन कर दो ! लिखो कि तुम कब, किस स्टीमर से रवाना हो रही हो !

—तुम्हारा सेवक।'

पत्र पढ़कर उसने लापरवाही से एक ओर रख दिया, बल्कि फेंक दिया। तब उसने पुनः रंतिनाथ का पत्र उठाया और उसे फिर पढ़ा—जी भरकर पढ़ा। पढ़-कर उसने उस पत्र को जोर से छाती के साथ भींच लिया, इतने जोर से कि वह मुड़-मुड़ाकर हृदयाकार हो गया।

आइलीन के हृदय में रंतिनाथ से मिलने की, मिलने की ही नहीं उससे भेंटने की, उसके साथ एकरूप होने की बलवती लालसा जाग्रत हुई। उसके रोम-रोम में रति की सारंगी के स्वर गूँजने लगे।

फिर वह चकित-सी सोचती रही कि रंतिनाथ को उसका पता कहाँ से मिल गया ! ध्यानावस्थित होकर दूर के अपरिचित स्थानों का पता मालूम किया जा सकता है, इसे स्वीकार करने को उसका मस्तिष्क किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुआ।

सहसा उसने एक निश्चय किया। निश्चय को प्रेरित करनेवाले विचार की गति बिजली की गति से भी तीव्र थी। दूसरे ही क्षण उसने टेलिफ़ोन उठाकर रंति-नाथ को तार किया कि मैं शाम की गाड़ी से लन्दन आ रही हूँ।

मन में उठ रहे भावावेश का अधिक एकाग्रता से अनुभव करने के लिए उसने सिगरेट जलाई। सिगरेट फूँकते हुए वह पुनः-पुनः रंतिनाथ के शब्द-माधुर्य का पान करने लगी। उसके हृदय में किसी अपरिचित पक्षी के मधुर स्वर गूँजने लगे; सिगरेट का धुआँ उसे सुदूर के कल्पना-लोक में खींच ले गया। वहाँ उसने अकेले रंतिनाथ को देखा।

भोजनादि से निवृत्त होकर वह स्टेशन पहुँची। गाड़ी आने में देर थी, इस-

लिए पासवाले काफे में जाकर उसने कॉफी पी। ठंड बेहद थी और बर्फ गिर रही थी। मितभाषी अँग्रेजों के गालों पर लाली ऐसी लग रही थी मानो अँग्रेज जाति के उत्साह की पताकाएँ फहरा रही हों।

आखिर ट्रेन आई और जब वह चल दी तो उसने सन्तोष की साँस ली। उसे मिनट घंटों-जैसे और घंटे वर्षों-जैसे मालूम हो रहे थे। आँखें मूँदकर उसने रंतिनाथ का ध्यान किया और उसके विचारों में खो गई। तल्लीनावस्था में उसने रंतिनाथ को हँसते-हँसते अपनी ओर आते देखा। उसके गले में भूरे रंग का गुलूबन्द और सिर पर नीले रंग का हेट था। चलते-चलते वह आइलीन के बिलकुल समीप आ गया और उसके कन्धों पर हाथ रख दिये। उसकी आँखों में जुगनू चमक रहे थे और प्रेम जगमगा रहा था। दोनो की देह के अणु-परमाणु इस तरह क्रीड़ा कर रहे थे मानो युग-युग के साथी हों। आइलीन के नेत्रों में छलक रहे अमृत-रस को आकण्ठ पानकर रंतिनाथ की आँखें छलक गईं और वह उसकी मधुरिमा में इतना विभोर हो गया कि आसपास से गुजरते हुए यात्रियों के अस्तित्व तक का भान उसे न रहा। फिर आइलीन के गाल रंतिनाथ के गालों से सट गये और उसी समय इंजिन की सीटी जोर से बज उठी।

वह एकदम चौंक पड़ी और आँखें खोलकर देखा तो गाड़ी विक्टोरिया स्टेशन के प्लेटफार्म पर खिसक रही थी। खिसकते-खिसकते गाड़ी रुक गई। बेग लेकर वह नीचे उतरी और इधर-उधर नज़र दौड़ाई तो देखा कि गहरे नीले रंग का हेट पहने और गले में भूरे रंग का गुलूबन्द बाँधे हँसता-हँसता रंतिनाथ तेज़ी से उसकी ओर आ रहा था। आइलीन का हृदय धड़कने लगा और शरीर रंतिनाथ की बाँहों में समाने को व्यग्र हो उठा। वह निकट आया—एकदम निकट और आइलीन के दोनो हाथ पकड़कर उसे ध्यान से देखने लगा। उसके हाथ आइलीन के हाथों को सहलाते हुए क्रमशः ऊपर बढ़ते-बढ़ते कन्धों पर आकर अटक गये। आइलीन का शरीर प्रकम्पित हुआ, छाती फैल गई और उसने अपनी दीर्घ साँस को दबाते हुए रंतिनाथ के शरीर का स्पर्श किया।

रंतिनाथ के हाथ आइलीन की पीठ को आवेष्टित कर वहीं रुक गये और वह चेहरे पर दृष्टि जमाकर उसे देखता रहा। आकाश में बिजली चमककर पर्वत को विदीर्ण कर देती है वैसा ही तेज रंतिनाथ के नेत्रों में आलोकित हो रहा था। दोनो

के नेत्र नेत्रों से, ललाट ललाट से, कपोल कपोलों से, कान कानों से और नाक नाक से मिल-भेंटकर कुशल-क्षेम पूछने लगे।

दोनो से कोई कुछ न बोला। दोनो धीरे-धीरे और चुपचाप चलने लगे। स्टेशन के बाहर आकर वे एक टैक्सी में बैठे और उनकी टैक्सी रसल स्क्वैअर की ओर दौड़ने लगी।

रंतिनाथ की कड़ी उँगलियों को आइलीन ने अपने हाथ में ले लिया। उन उँगलियों की वाणी अमर थी। उसके नेत्रों के आलोक को वह तृषातुरा चकोरी की भाँति पीने लगी। उन नेत्रों में जीवन का अमर तत्व ज्योतित हो रहा था। ठंड में ठिठुरते हुए उसने रंतिनाथ की गोद का आसरा लिया। उस गोद में अमर उष्मा थी। दोनो की वाणी मौन हो गई थी और हृदय में जीवन का अमृत घुल रहा था।

कुछ ही देर में टैक्सी घर के पास आकर खड़ी हो गई और दोनो उतर पड़े। उतरकर एक-दूसरे को ताकते वे देर तक यों ही खड़े रहे, यहाँ तक कि टैक्सी-ड्राइवर को उकताकर कहना पड़ा—अपनी धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूँ, पर मुझे जाना है।

तब रंतिनाथ ने पैसे चुकाये। और रात्रि के गहन एकान्त अन्धकार में दोनो स्नेहामृत का पान करते हुए, सर्दी की अवहेलना करके कितनी ही देर फुटपाथ पर खड़े-खड़े एक-दूसरे को देखते रहे।

५ : रहस्यमय व्यक्ति

और तब वे ऊपर आये। दोनो के हृदय अर्थ-गाम्भीर्य से उफन रहे थे, सम्भवतः इसी लिए उनका वाणी-व्यापार रुक गया था।

रंतिनाथ ने पनीर का डिब्बा खोलकर टोस्ट तैयार किया और आइलीन ने कॉफी बनाई। किसी को भोजन की इच्छा नहीं थी, इसलिए दोनो पनीर, टोस्ट और कॉफी से सन्तुष्ट हो गये।

सिगरेट सुलगाकर जब दोनो आराम से बैठ गये तो आइलीन रंतिनाथ की ओर टक लगाकर देखने लगी। उस दृष्टि में अनेक प्रश्न भरे थे।

'क्यों?' रंतिनाथ ने पूछा।

'कौन हो तुम?'

'लेखन का धन्धा और पुरानी किताबें बेचकर गुजर-बसर करनेवाला एक गरीब आदमी हूँ। जहाँ तक याद है मैंने तुमसे यह बात कही भी थी।'

'ठीक है, लेकिन ग़रीब आदमी नहीं हो।'

'जिसे प्राप्त करना है वह जब तक पूरी तरह प्राप्त नहीं हो जाता तब तक तो ग़रीब ही हूँ।'

'मेरी समझ में तो शायद ही कोई पुरुष तुम्हारे जितना सम्पन्न हो।'

'तुम्हें ऐसा लगता है?'

'मेरा तो ऐसा ही अनुभव है।'

'दुनिया में स्वानुभव ही यथार्थ वस्तु है।'

'जादूगर तो कई देखे हैं, लेकिन तुम्हारे-जैसा जादूगर पहले कभी नहीं देखा। तुम और मैं....' इतना कहकर वह रुक गई।

'दूर होकर भी समीप।' रंतिनाथ ने उसकी अधूरी बात को पूरा किया।

'और समीप होकर भी दूर; क्योंकि मैं तुम्हें पहिचानती नहीं और पहिचानने की मुझमें शक्ति भी नहीं, जब तक कि तुम पर्दा नहीं हटा लेते।'

आइलीन के शब्द वह सुनता और अपनी आँखों से उत्तर देता रहा। उन आँखों में सूर्य का प्रकाश और समुद्र की गहराई दोनो साथ-साथ दिखाई दे रहे थे। पुष्य नक्षत्र के बृहस्पति की भाँति उसका मुखमंडल ज्ञान की गम्भीरता से भरपूर था।

'वह गतिमान है, वह स्थिर है, वह दूर है, वह निकट है। वह सबके अन्तर में है और बाहर भी।'

इतना कहकर रंतिनाथ ने स्नेहपूर्वक आइलीन के सुन्दर कपोलों को अपने हाथ से स्पर्श किया। उसके शब्दों की मधुरता से मुग्ध वह बैठी रही और रंतिनाथ का कोमल स्पर्श उसे आनन्द निद्रा के हिंडोले पर झुलाने लगा।

कुछ देर के बाद उसने सचेत होकर पूछा—कौन हो तुम?

'तुम्हारे हृदय की प्रतिध्वनि।'

'कौन-सा अमृत भरा है तुम्हारे शब्दों में?'

'तुम्हारे हृदय-घट का।'

'मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। केवल इतना जानती हूँ कि मुझे

तुम्हारी लौ लगी है। मोह कहना चाहो तो कह सकते हो। मैं विवाहिता हूँ; अँग्रेज हूँ। यह संसार मुझे एक ओर खींच रहा है, और तुम दूसरी ओर।'

रंतिनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। आइलीन आगे बोली—मैं तुम्हें भूल नहीं पाती। यह भी समझ में नहीं आता कि तुम मुझे आकर्षित कर रहे हो या मैं तुम्हें। तुम्हारी मोहिनी कहो या लौ कहो, लेकिन सच कहती हूँ कि तुम अवश्य कोई जादूगर हो। और जादूगर नहीं हो तो नहीं जानती कि कौन हो! पर इतना तो सत्य है कि तुमने मुझे मन-प्राण से जीत लिया है।

वह चुप हो गई।

'मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध एक ही जन्म के नहीं, अनेक जन्म-जन्मान्तरों के होते हैं। नहीं तो तुम और मैं नवम्बर के कुहरे में सहसा क्यों टकरा जाते? धुँधलके से ही प्रकाश की उत्पत्ति होती है।'

'लेकिन यह प्रकाश तो कदाचित् मेरा सर्वनाश ही कर देगा। मैं विवाहिता हूँ; मेरा पति मुझ पर अनुरक्त है। मैं सदैव उसके प्रति निष्ठावान रही हूँ। निश्चय ही वह निष्ठा सांसारिक है। मेरा वह जीवन मुझे अप्रिय तो नहीं था, लेकिन तुमसे मिलने के बाद बिलकुल फ़ीका मालूम हो रहा है। लगता है जैसे मैं एकदम बदल गई हूँ। तुम्हारे सम्पर्क ने मेरे सभी व्यावहारिक आदर्शों को विनष्ट कर दिया है। मैं अपने पति को भूल गई, घर को भी भूल गई और इप्स्विच छोड़, व्यग्र होकर तुम्हारे पास दौड़ी आई हूँ। मैं एक भली औरत नहीं रही, मेरे बुरे, दुराचारिणी बनने में कोई कसर नहीं रह गई। और इतना सब होते हुए भी मुझे दुःख की अपेक्षा सुख का ही अधिक अनुभव होता है।'

इतना कहकर वह रंतिनाथ से लिपट गई। उसका कोमल शरीर प्रकम्पित हो उठा। और रंतिनाथ ने अपने मृदु स्पर्श से उसे शान्त किया। जब उसने ऊपर देखा तो स्वाति बिन्दुओं-जैसे स्वच्छ अश्रु उसके इन्द्रनील नेत्रों में मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

'आइलीन, तुम एक भली स्त्री हो, महान नारी हो। फिर यह शंका-कुशंका किस लिए?' इतना कहकर रंतिनाथ उसके सुनहरे बालों में उँगलियाँ चलाने लगा।

'तुम सुन्दर ही नहीं पवित्र भी हो।'

उधर घड़ी ने रात के ग्यारह बजाये।

रंतिनाथ ने उसके लिए बिस्तर बिछाया और बोला—अब तुम सो जाओ; मैं सवेरे तुमसे मिलने आऊँगा।

क्षण-भर तो आइलीन हतबुद्धि की भाँति बैठी रही। जिसके लिए वह घर छोड़कर इतनी दूर दौड़ी आई थी वह व्यक्ति उसे अकेले छोड़कर जाने की बात कर रहा था!

'तुम यहीं सो रहो, मैं होटल में चली जाऊँगी।'

आइलीन के शब्दों में वेदना थी।

'मैं सोता नहीं हूँ।'

'क्या मतलब?'

'मैं सारी रात जागता रहता हूँ।'

'तो फिर यहीं जागते बैठे रहो।'

'नहीं, बारह बजे मुझे एक जगह मिलने जाना है।'

'मिलने जाना है!' आइलिन ने घबराकर कहा।

'हाँ।'

'और वह भी सारी रात के लिए?'

'हाँ।'

'ओह, मैं समझी।' आइलीन के शब्दों में असन्तोष और निराशा थी।

रंतिनाथ निकट आया और उसके कन्धे पर अपना हाथ रख दिया।

'मैं एक मूर्ख और बेवकूफ औरत हूँ। किस लिए, हाय, किस लिए मैं एक अपरिचित व्यक्ति के पास दौड़ी आई? किस लिए मैंने उसके सुख में बाधा डाली?'

इतना कहकर वह रो पड़ी। रंतिनाथ ने उसे थपककर सान्त्वना देने का प्रयत्न किया—तुम क्यों इतना अकुला रही हो?

'मैं शर्म से गड़ी जा रही हूँ, मुझे संकोच हो रहा है, मैं अपने को धिक्कार रही हूँ। कृपा करके मुझे स्टेशन तक पहुँचा दो।'

'न-न, तुम शरमाओ मत, संकोच मत करो, और न अपने हृदय में धिक्कार को ही स्थान दो। अगर तुम्हारी इच्छा हो और जाग सको तो जरूर मेरे साथ चलो।'

यह सुनकर आइलीन बड़ी प्रसन्न हुई, साथ ही उसे आश्चर्य भी हुआ। उसे

वह रहस्यपूर्ण व्यक्ति और भी रहस्यमय प्रतीत होने लगा। वह एकटक उसकी ओर देखने लगी।

'मुझे खेद है कि मैंने आपको समझने में भूल की। सचमुच आप रात-भर जागते हैं तो या तो पागल होंगे या रहस्यपूर्ण। मुझे तो लगता है कि आप दोनो ही हैं।' इतना कहकर वह धीरे-धीरे हँसने लगी

रंतिनाथ भी हँसा और बोला—क्या तुम स्वयं पागल नहीं हो, जो इप्स्विच से एक अनजान परदेशी के घर दौड़ी आई ?

'नहीं कदापि नहीं ! सोच-विचारकर, अपनी इच्छा से आई होती तो अवश्य पागल कही जा सकती थी; लेकिन मैं तो तुम्हारे आकर्षण से, तुम्हारी इच्छाशक्ति के बल पर, बेबस होकर खिंची चली आई हूँ।'

'अगर मेरी इच्छा का आदर करती हो तो अब सो जाओ; जागने से तबियत बिगड़ जायेगी।'

'नहीं, मैं तो तुम्हारे साथ चलूँगी। लेकिन यदि किसी स्त्री के लिए जा रहे हो तो खुशी से जाओ; तब मैं तुम्हारे प्रेमाभिनय की प्रेक्षक नहीं बनना चाहती।'

उसके इन स्नेह-भरे मधुर शब्दों से रंतिनाथ के हृदय में कोमलता का संचार हुआ। किन्तु उसने आत्म-संयम से आवेग को शान्त किया और मन के भाव को आइलीन पर प्रकट नहीं होने दिया। आइलीन को प्रसन्न और तुष्ट करने के लिए उसने उसके कन्धे का धीरे से स्पर्श किया और बोला—तो ठीक है, तैयार हो जाओ; थोड़ी ही देर में चलना होगा।

'लेकिन जाना कहाँ है ?'

'एक जगह।'

'कितने रहस्यमय हो ?'

'साथ लें जा रहा हूँ तब भी ?

'लेकिन यह तो बतलाओ कि कहाँ ले जा रहे हो ?'

'बताया तो है कि एक जगह।'

रंतिनाथ को स्नेह की एक धौल जमाकर आइलीन कपड़े सँवारने लगी; और पाँचेक मिनट में तैयार होकर दोनो निकल पड़े।

उधर घड़ी ने बारह बजाये।

६ : अँधेरी रात में

डरावनी अँधेरी रात जैसे काटे खा रही थी। उसी घुप अँधेरे में चलते हुए दोनो रसल स्क्वैअर के छोर पर आये और वहाँ से टैक्सी में बैठे।

'नाइट्स् ब्रिज चलो।' रंतिनाथ ने कहा।

टैक्सी पूरी रफ्तार से दौड़ने लगी। ठंड कड़ाके की थी और दोनो एक-दूसरे से सटे चुप बैठे थे।

नाइट्स् ब्रिज आ गया। रंतिनाथ ने एक गली के मुहाने पर टैक्सी रुकवाई।

'गुड नाइट!' ड्राइवर ने पैसे जेब में डालते हुए कहा।

'गुड नाइट।' रंतिनाथ ने प्रत्युत्तर दिया और आइलीन को साथ लेकर गली में आगे बढ़ा।

'कहाँ लिये जा रहे हो रहस्य पुरुष?'

'रहस्यपूर्ण स्थान पर।'

पाँचेक मिनट चलकर दोनो ने गली पार की और दूसरे रास्ते पर निकल आये।

चारों ओर घनान्धकार था। आइलीन रंतिनाथ के हाथ-में-हाथ दिये विस्मय-विमुग्ध चली जा रही थी। कुछ दूर चलने के बाद रंतिनाथ एक मकान के आगे रुक गया और उसने दरवाजे पर लगा हुआ घंटी का बटन दबाया। एक अँग्रेज नौकरानी ने दरवाज़ा खोलकर रंतिनाथ को नमस्कार किया।

मकान आलीशान था। ऊपर जाने की विशाल सीढ़ी पर लाल मखमल बिछा हुआ था। बिजली की रोशनी में आइलीन ने देखा कि मकान किसी साधारण हैसियतवाले आदमी का नहीं, किसी सम्पन्न लार्ड का होना चाहिए। बरामदे में ईरानी गालीचा और दीवारों पर सुन्दर चित्र शोभा पा रहे थे। विभिन्न भाव-भंगिमाओं-वाली यूनानी मूर्तियाँ यहाँ-वहाँ सजी हुई थीं। लैंडिंग के सामने भी कलापूर्ण चित्र और रंग-बिरंगे फूलों के गमले सजे हुए थे।

रंतिनाथ आइलीन के साथ धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा। सीढ़ी समाप्त होते ही वे एक विशाल हॉल के द्वार पर जा पहुँचे जो हरे रंग के प्रकाश से आलोकित हो रहा था।

आठ-दस युवतियाँ तथा प्रौढ़ाएँ और चार-पाँच पुरुष सोफों पर बैठे सिगरेट पीते हुए बातें कर रहे थे।

ज्योंही रंतिनाथ ने हॉल में प्रवेश किया सब खड़े हो गये और संभ्रमपूर्वक उसका स्वागत किया। लगभग पैंतालीस वर्ष की एक अँग्रेज प्रौढ़ा आगे बढ़ी। उसका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और शालीन था—गदराया हुआ सुडौल शरीर और लम्बगोल सुन्दर मुखाकृति। कनपटियों के ऊपरवाले कुछ बाल रुपहरे हो गये थे, जिससे उसका व्यक्तित्व और भी महनीय लगने लगा था। उसके भूरे रंग के स्कर्ट और कोट की काट पेरिस के अद्यतन फैशन के अनुरूप थी। गले में पीले रंग का गुलूबन्द लिपटा था। उसका चाल-ढाल और व्यवहार आत्मविश्वास से पूर्ण था। जब वह रंतिनाथ के समीप पहुँची तो दोनो के चेहरों पर स्नेह की लाली उभर आई और दोनो ने उमंगपूर्वक हाथ मिलाया। एक क्षण दोनो के हाथ इस तरह मिले रहे मानो स्नेह का मर्म खोज रहे हों, और उनके नेत्रों का परिरम्भण! वह तो मानो विरह की पिपासा का शमन कर रहा था! वह दृश्य था तो कुछ ही क्षणों का, लेकिन आइलीन को ऐसा लगा मानो दीर्घ घटिकाएँ बीत गई हों। उस प्रौढ़ा के मुँह पर ऐसा भाव था मानो वह तृषातुरा किसी शान्त सरोवर के किनारे पहुँच गई हो।

'मार्था, तुम आ गई, कितना अच्छा किया!'

'मैंने पेरिस में तुम्हारे पत्र की बड़ी प्रतीक्षा की, लेकिन तुम क्यों लिखने लगे? आखिर मैं ही दौड़ी आई। मजे में तो हो न?'

रंतिनाथ टक लगाये उसकी ओर देखता रहा। मार्था के मुख पर के भावों को समझना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। उसके चेहरे पर [illegible] केवल भक्ति और अभिलाषा और उमंग ही नहीं, सभी कुछ मिला-जुला और साथ ही परितृप्ति भी थी।

'बड़ा अच्छा किया जो दौड़ी आई! मैं वहाँ नहीं दौड़ा आया, क्योंकि तुम्हारे साथ ही जो था।'

रंतिनाथ के अर्थपूर्ण शब्दों में मधुर रस छलक उठा। मार्था की आँखों में मादक शान्ति व्याप्त हो गई; उसका हाथ रंतिनाथ के हाथ का स्पर्श कर रहा था। आँखों ने कुछ कहा, हृदय में कुछ गूँजा, और भावों का सागर लहराने लगा।

रंतिनाथ ने आइलीन और मार्था का परिचय कराया। दोनों ने हाथ मिलाये। आँखों से आँखें कुछ मिलीं और मिलते ही पृथक् हो गईं।

एक बड़ी मेज़ के सामने रखी हुई कुर्सी पर मार्था ने रंतिनाथ को बिठाया। उसके बैठते ही सारी मण्डली बैठ गई और मार्था ने बोलना शुरू किया :

'मित्रो ! मौन प्रेम की वाणी है और हमारे यह प्रिय मित्र मौन का हृदय हैं। जो वस्तु अमूल्य है वह हमें बिना मूल्य प्राप्त हुई है। यह समझना भूल होगा कि मुफ़्त मिलनेवाली चीज़ की कोई कीमत नहीं होती। मूल्य तो उसका भी होता है, लेकिन हम उसके मूल्य को जानते नहीं। मुझे अधिक कुछ कहना नहीं है। मैं तो सुनने के ही लिए आई हूँ। पिछले तीन सप्ताह के बाद आज हम लोग पहली बार मिल रहे हैं। आप सबकी ओर से मैं अपने मित्र से प्रार्थना करती हूँ कि वह अपने मौन का त्याग करें।'

यह कहकर मार्था बैठ गई। सारी मण्डली रंतिनाथ के शब्द सुनने के लिए सोत्सुक उसकी ओर देखने लगी। कुछ देर वह निश्चल बैठा रहा। तब मार्था ने मधुरता से उसकी ओर देखा और वह मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ खड़ा हुआ।

उसने कहा—मित्रो ! मुझे मौन का हृदय कहकर मुझसे मौन तोड़ने की प्रार्थना की गई है; लेकिन मैं मौन का हृदय नहीं। मौन का हृदय तो परमात्मा है, जो कभी बोलता नहीं; और यदि बोलता भी है तो उसकी वाणी मेरी वाणी की भाँति मानव-ग्राह्य नहीं होती। सच बात तो यह है कि हम अपने मन की तरंगें शान्त कर सकें तभी सच्चा मौन उत्पन्न होता है। न बोलना ही मौन नहीं होता; मौन वही है जिसको मन से पालन किया जाये। ऐसा ही मुनि बनने का मेरा प्रयत्न है। वैखरी (वाणी) अनुपयोगी हो जाये और ज्ञेय का ज्ञान करके हम हृदय-प्रदेश में विचरण कर सकें। मैं जानता हूँ कि वह प्रदेश विकट है, अपरिचित है; लेकिन जो वहाँ से आये हैं उन पर हमें विश्वास करना होगा। वास्तव में तो वहाँ जाकर कोई लौटता नहीं; क्योंकि वहाँ पहुँचने के पश्चात् इधर का यह संसार केवल छाया और छलना प्रतीत होने लगता है। छाया से कोई नहीं कहता कि तू छाया है। जिसे इस दुनिया से प्रेम हो उसके लिए उस अगोचर सृष्टि में जाने की इच्छा करना योग्य नहीं। पहले इस दुनिया से पूरी तरह तृप्त हो जाओ; जब इसकी अपूर्णता चुभने लगे, इसके व्यवहार शुष्क प्रतीत होने लगें तभी उस अगोचर सृष्टि

का विचार करना चाहिए। ऐसा कभी मानकर मत चलो कि इन्द्रियों और मन से जिसका उपभोग किया जाता है ऐसा यह संसार मिथ्या है। मैं भी इस संसार को मिथ्या नहीं कहता। जीवन-तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है; कुछ भी मिथ्या नहीं है। इन्द्रियाँ और मन जब किसी वस्तु पर केन्द्रित होते हैं तब उसके अतिरिक्त सभी वस्तुएँ उतने समय के लिए मिथ्या हो जाती हैं। ज्ञान और अज्ञान का अस्तित्व अनुभूति की मर्यादा में ही निहित है। अगोचर सृष्टि भी गोचर सृष्टि की ही भाँति किसी विशिष्ट अनुभूति के उपरान्त लुप्त हो जाती है। यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है कि जीवन-तत्त्व के विकास में एक भूमिका सच्ची और दूसरी झूठी, एक सत्य और दूसरी असत्य, एक इष्ट और दूसरी अनिष्ट होती है। पाँच इन्द्रियाँ मिथ्या नहीं हैं, मन भी मिथ्या नहीं है। मिथ्या तो हैं अपने राग-द्वेष, अपने पूर्वग्रह और अपना अहंकार। सारी कठिनाई यही है कि ज्ञान का द्वार हम जान-बूझकर बन्द कर देते हैं। मित्रो! अब मुझे अपनी वाणी का द्वार बन्द कर लेना चाहिए। इस स्थूल वाणी का कोई ठिकाना नहीं। यह स्थूल वाणी अप्रत्याशित एवं अकल्पित विचारों को उत्पन्न करे, इससे तो अच्छा है कि मौन के विशाल आकाश में बिन्दुरूप बनकर विलुप्त हो जाये। इस कामना के साथ मैं आप सबकी मैत्री की याचना करता हूँ।'

जब वह बैठ गया तब उसके मुखमण्डल पर निर्जन वन जैसी अगाध शान्ति व्याप्त थी। श्रोताओं के उत्साहप्रद उद्‌गारों को शायद वह सुन नहीं रहा था। अगोचर सृष्टि के ध्यान में लीन हो गया हो, इस भाँति वह खुले हुए फिर भी बन्द नेत्रों से बैठा रहा। उसके श्वासोच्छ्वासों का क्रम स्थिर हो गया था और दोनो स्त्रियाँ उसकी ओर टक लगाये देख रही थीं।

आइलीन और मार्था साथ ही बैठी थीं। मार्था और मण्डली के दूसरे सदस्य ध्यान में एकाग्र रहने का प्रयत्न कर रहे थे। घड़ी में दो बजे। आइलीन को रतिनाथ के आसपास प्रकाश का एक अद्‌भुत मंडल उभरता दिखाई दिया और देखते-देखते वह उस प्रकाश में लीन हो गई। उसके नेत्र मुँद गये। एक मार्था को छोड़ वहाँ उपस्थित सारी मण्डली की यही दशा हुई।

मार्था धीरे से उठी और रतिनाथ के समीप आई। पास आकर उसने रतिनाथ का हाथ पकड़ा और उसकी तर्जनी के नीचे अपना अँगूठा घिसने लगी। बिजली की गति से रतिनाथ ने आँखें खोल दीं और वह मार्था के भावपूर्ण चेहरे

को देखने लगा। मार्था की आँखों में निष्ठा का आलोक था। रंतिनाथ ने अनुभव किया कि वह उससे कुछ कहना चाहती है।

तभी मार्था बोली—मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं; पासवाले कमरे में चलो।

रंतिनाथ उठा। दोनो अन्दर के कमरे में आये।

'मैं बहुत आनन्द में हूँ; मेरा शरीर सुरीली सारंगी के जैसा हो गया है। तुम्हारे ध्यान में मैं अपने को पहिचानने लगी हूँ। आँखों से सुनती हूँ और कानों से देखती हूँ; जीभ से सूँघती हूँ और नाक से स्वाद लेती हूँ; लेकिन एक बात अवश्य स्वीकार करूँगी कि मेरे ध्यान का विषय तुम हो; तुम न हो तो मैं सुख का अनुभव नहीं कर सकती।'

रंतिनाथ ने मार्था के मुलायम रेशमी बालों को सहलाया। मार्था ने अपना मस्तक रंतिनाथ के मस्तक से सटा दिया। उसकी कनपटियों पर शिराएँ काँप रही थीं।

'मार्था, तुम विचार करो कि मैं कौन हूँ। मैं तुम्हारा आधार हूँ या तुम स्वयं अपना आधार हो?'

'इतनी निष्ठा तो अभी मुझमें जाग्रत नहीं हुई है। मैं तो तुम्हीं को अपना आधार मानती हूँ।'

'कोई हर्ज नहीं, मानती रहो; लेकिन यह भी तो सोचो कि तुम्हारा आधार किस पर आधारित है? अगर मुझी को आधार मानती रही तो तुम्हारी साधना अधूरी रह जायेगी। देह में विलीन मत होओ, देह को अपने में विलीन करो!'

'देह के द्वारा ही आत्मा का अनुभव करती हूँ, रंतिनाथ!'

'तो फिर देह को आत्मा के आधार के रूप में देखो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध—सभी में आत्मशक्ति की अलौकिकता का दर्शन करो।'

'लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि मैं देहधारी स्त्री हूँ और तुम देहधारी पुरुष। देह आत्मा पर आधारित है अथवा आत्मा देह पर—इस विवाद में पड़कर मैं सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि सत्य तो अनुभव-गम्य ही होता है।'

इतना कहकर वह रंतिनाथ की आँखों में कुछ खोजने लगी।

'मार्था, देह सत्य, पर देह का राग मिथ्या होता है। राग सदैव द्वेष का कारण बनता है। मैं देह का विरोधी नहीं, देह के राग का विरोधी हूँ। भोग का विरोधी

नहीं, भोग की लालसा का विरोधी हूँ; क्योंकि जहाँ राग है वहीं लालसा है, जहाँ विवशता है वहीं परतन्त्रता है—प्रभुता नहीं, जीवनमुक्ति नहीं, मात्र बन्धन, और बन्धन हैं। तुम नारी हो यह मैं जानता हूँ। और यह भी जानता हूँ कि तुम केवल नारी नहीं, जीवन-रस से छलकती हुई गागर भी हो। तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में हिमालय की मनोहर सन्ध्या भरी हुई है; तुम्हारे एक-एक स्पर्श से मेरे अन्दर आत्म-राग प्रसारित हुआ है; जन्म-जन्मान्तरों की भोग-रात्रि में से योग की उषा का आगमन हुआ है। रात्रि में भी मैं देख सकता हूँ, क्योंकि मेरे नेत्र उनींदे नहीं, क्योंकि मेरे अन्तर में उषा की लालिमा फैली हुई है। विशिष्ट इन्द्रियों का अभिलाषी मैं, विशिष्ट मानव बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। पुराने वस्त्रों का संग्रह कर रखा है, लेकिन अब वे मुझे प्रिय नहीं। तुम भी आज नहीं तो कल, पुरानी दुनिया को छोड़ जाओगी।' यह कहकर उसने मार्था के अंगों में स्नेह की उष्मा भर दी।

दोनो जब बाहर आये तब भी सारी मंडली ज्यों-की-त्यों ध्यानमग्न बैठी थी। रंतिनाथ का संकेत पाकर मार्था ने कहा—मित्रो! यहाँ का समय हुआ; वहाँ से लौटकर आभारी करें।

धीरे-धीरे सबने आँखें खोलीं, लेकिन आइलीन तो बेचारी घोर निद्रा में पड़ी थी। सोती हुई आइलीन के पास जाकर रंतिनाथ ने सिर के नीचे तकिया रख दिया। सारी मंडली बिखर गई। केवल रंतिनाथ और मार्था बैठे बातें करते रहे।

'यह महिला कौन है?'

'मैं नहीं जानता। कुछ दिनों पहले हम लोग कुहरे में टकरा गये थे। इस जगत् में कौन किसको पहिचानता है! सब यों ही टकराते और पृथक् होते रहते हैं। जब तक आत्मा सोयी रहती है, कुछ भी जाग्रत नहीं होता। संसार तो सोने-वालों का विश्रामस्थल है। कभी कोई जागता है, चौंककर देखता और पुनः आँखें मूँदकर सो जाता है।'

'लेकिन कौन है यह युवती? तुम्हें अपने पूर्वजन्म की स्मृति न हो, यह मानने को मैं तैयार नहीं।'

रंतिनाथ चुप रहा। मार्था ने भी अधिक जिज्ञासा नहीं की। घड़ी में तीन बज रहे थे। रंतिनाथ आइलीन के पास आ खड़ा हुआ और उसके कोमल हाथ को अपने हाथ से सहलाने लगा।

'आइलीन !' उसके शब्दों में मधुरता का सागर हिलोरें ले रहा था। आइलीन ने आँखें खोल दीं।

'नींद तो खूब आई न ?'

हाथ पकड़कर रंतिनाथ ने उसे उठाया।

'चलेंगे ?' आइलीन ने प्रसन्न मुद्रा में पूछा। उसकी आँखों में आनन्द था।

'मार्था, आज इन्हें यहीं आराम करने दो। कल सवेरे हम मिलेंगे।'

अन्तिम शब्द उसने आइलीन की ओर देखकर कहे।

'तो तुम भी यहीं क्यों न सो रहो ?' और मार्था ने हाथ पकड़कर रोक लिया।

तीनों की नींद उड़ गई थी, फिर भी किसी की बोलने, बात करने की इच्छा नहीं थी। दोनो स्त्रियों के मध्य बैठा रंतिनाथ अँगीठी की आग को देखता हुआ आनन्दित हो रहा था। कड़कती ठंड में दोनो नारियों को अपनी भुजाओं में भर-कर वह उपनिषद् के मंत्र बोलने लगा और उन्हीं में तल्लीन हो गया :

'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं-रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥'

बार-बार वह इसी मंत्र को गुनगुनाता रहा।

'इसका अर्थ क्या है ?' मार्था ने पूछा।

रंतिनाथ ने अर्थ नहीं बतलाया, सिर्फ मंत्र गुनगुनाता रहा। फिर पहले आइ-लीन और तब मार्था की ओर बारी-बारी से देखने के पश्चात् उसने कहा :

'जो क्षणभंगुर है उसमें से मैं अमर वस्तु को प्राप्त करता हूँ; अमर वस्तु के लिए मैं क्षणभंगुर का सेवन करता हूँ।'

आइलीन हँसने लगी।

'यह तुम क्या कह रहे हो ?' उसने पूछा।

रंतिनाथ ने उसकी ओर देखा और उसके गालों पर हाथ फेरकर बोला—नारी ही अग्नि है। उसका शरीर वेदी है। वेदी क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर में अमरता है। नारी ही अग्नि है। यह विश्व अग्नि की ज्वाला है। मैं अग्नि की ज्वाला हूँ। यह विश्व नारी है। यह विश्व शक्ति है। यह विश्व अग्नि है। अग्नि ही नारी है।

अँगीठी की अग्नि इस मंत्र को सुनते-सुनते बुझ चली। रंतिनाथ की दोनो भुजाओं से लिपटी हुई अग्निज्वालाएँ भी निद्रा के अर्घ्य में ढुलक गईं। 'नारी ही अग्नि है'—इस सूत्र का उच्चारण करता हुआ रंतिनाथ अपने नाद-ब्रह्म में लीन होकर मौन हो गया। प्रातःकाल की वेला में तीनों की आत्मा एक-दूसरे की उष्मा में निद्राधीन हो गईं। इधर रंतिनाथ की अनुभूतियों के रंगमंच पर अभिनव चैतन्य की यवनिका गिरी और उधर मार्था तथा आइलीन की अनुभूतियों की रंगभूमि पर स्वप्निल रंगों का पटाक्षेप हुआ। प्रभात का पंछी बोला, किन्तु किसी ने नहीं सुना। अँगीठी की भस्माच्छादित अग्नि भस्मावशेष दशा में पुनर्भव की कामना करती हुई राख हो गई।

७ : विलासिनी

मार्था एक लखपती लार्ड की विधवा थी। उसका पिता भी बड़ा जमीदार था। केण्ट में उसके परिवार की अच्छी-खासी प्रतिष्ठा थी। लेकिन प्रथम महायुद्ध के बाद यह पुराना परिवार कर्जों के दिनोंदिन बढ़ते हुए बोझों से दबता गया और मार्था के पिता पर खूब कर्ज हो गया। इकलौती सन्तान होने के कारण मार्था का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार में हुआ था। उसके पिता को शिकार का बड़ा शौक था। अपने इस व्यसन की पूर्ति के लिए वह कोड़ियों चुने हुए कुत्ते और पानीदार घोड़े रखता था। उसके पास सैकड़ों एकड़ जमीन थी, जिस पर कई किसान काम करते थे। मार्था की मा भी अपने पति की ही भाँति शाहखर्च थी। दोनो पति-पत्नी बड़ी शानशौकत से रहते और अकसर जलसों तथा शिकार-पार्टियों का आयोजन करते रहते थे। उनकी आलीशान इमारत के नीचे एक बड़ा तहखाना था जिसमें पचास-पचास सौ-सौ वर्ष पुरानी शराब सहेजकर रखी जाती थी।

मार्था बड़ी खूबसूरत और कुशल घुड़सवार भी थी। कभी-कभी पिता-पुत्री नौकरों के और कुत्तों के साथ केण्ट के मैदानों में सियार और लोमड़ी आदि का शिकार करने के लिए निकल पड़ते थे। ऐसी शिकार-पार्टियों में अनेक मेहमान शामिल होते थे, जिनमें लार्ड-वंश के दो-तीन ऐसे नौजवान भी थे जो मार्था पर मन-प्राण से अनुरक्त थे।

हेराल्ड ऐसा ही एक युवक था। वह घर का सम्पन्न और शक्ल-सूरत में दिल-

नौटा था, या कहना चाहिए कि मार्था को दिखनौटा लगता था। हेराल्ड और मार्था केण्ट, ससेक्स और सरे के इलाकों में कभी घोड़ों पर तो कभी पैदल ही घूमने निकल जाते और मार्ग से दूर किसी इक्की-दुक्की 'इन' में खा-पीकर आराम करते थे। 'इन' के निराले कमरों में दोनो के गर्म या ठंडे चुम्बन होते, गालों से गाल सटाये जाते, छेड़-छाड़ होती, मस्ती चढ़ती और तब दोनो घर लौट आते। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा और हेराल्ड मार्था के दरबार में अपनी अर्जी पेश करता रहा। अन्त में एक दिन मार्था ने हेराल्ड की अर्जी को स्वीकार कर लिया। दोनो चर्च में गये और पति-पत्नी बनकर बाहर निकले।

विवाह के बाद हेराल्ड का सितारा बुलन्द हुआ। अर्जेण्टाइना से अनाज के आयात में उसे हजारों पौंड का लाभ हुआ। उन्हीं दिनों मार्था का पिता कर्ज में डूब गया और जागीर गिरवीं रखने की नौबत आ गई। हालत यहाँ तक बिगड़ी कि जब मा-बाप की मृत्यु हुई तो उनकी अन्तिम-क्रिया का सारा खर्च मार्था को ही करना पड़ा। मार्था का पति कभी-कभी उसके मा-बाप की ग़रीबी का मज़ाक भी उड़ाता था।

हेराल्ड के मन पैसा ही परमेश्वर था। पैसा कमाने के लिए वह दिन-रात दौड़-धूप करता और कई बार अमेरिका भी जाता। व्यापार की धुन में दूसरी सभी बातों के प्रति वह निर्लेप और उदासीन होता गया।

अपने पति के स्वभाव के विपरीत मार्था राग-रंग की शौकीन थी। हेराल्ड जितना ही नीरस और निर्लेप होता गया मार्था उतना ही राग-रंग में डूबती गई। अब उसे आश्चर्य होता कि उसने ऐसे नीरस हृदयहीन व्यापारी से कैसे विवाह कर लिया! उसे विश्वास हो गया कि हेराल्ड के साथ उसका विवाह सम्बन्ध सिर्फ घर-बार और धन-दौलत का बीमा था, जिसके प्रीमियम में [illegible] ना शरीर दे रही थी।

धन की वृद्धि के साथ हेरॉल्ड का सिर गंजा हो गया और [illegible] चढ़ने लगी। अन्त में उसे मधुमेह हो गया और रक्तचाप बढ़ने [illegible] जोर हो गया और दमे ने हमला कर दिया। जिस वर्ष उसे तीन-चा[illegible] मुनाफा हुआ, उसी वर्ष एक दिन बैंक में रुपया जमा करते समय [illegible] और जीवन-लीला समाप्त हो गई।

अब मार्था उस अपार सम्पत्ति की स्वामिनी बनी। उसकी समझ में नहीं आता था कि इतने धन का किस प्रकार उपयोग करे। जब विधवा हुई तो मार्था की उम्र बत्तीस वर्ष की थी, और जवानी का रस छलका पड़ रहा था।

सम्पत्ति तो अपार थी, पर उसके कोई सन्तान नहीं थी। लन्दन के क्लबों में वह ताश खेलती, समुद्र-किनारे के विलास-गृहों में जाकर आमोद-प्रमोद करती, जूआ खेलती और रोज हजार-पाँच सौ पौंड का वारा-न्यारा कर वह हाथ खोलकर पैसा खर्च करती। पैसे को पानी की तरह बहाने में उसे सुख मिलता और इसी लिए वह मान बैठी थी कि सच्चा आनन्द पैसे में ही है।

नौजवान उसके आसपास मँडराते रहते थे। पैसे के भूखे उन जन्तुओं को कभी वह खुश करती तो कभी दुतकार देती। ऐसे जन्तुओं की लन्दन शहर में कमी नहीं थी। बरसात के पतिंगे जिस प्रकार दीया जलते ही उस पर मँडराने लगते हैं उसी प्रकार पार्क लेन, कर्जन स्ट्रीट, बर्कले स्ट्रीट या वेस्ट एण्ड की किसी भी स्ट्रीट की आमोद-प्रमोद और राग-रंगवाली पार्टी में जब मार्था पहुँचती तो वे पतिंगे उसके चारों ओर मँडराने लगते थे। उनका राग-रंग और आमोद-प्रमोद पतिंगों की ही भाँति क्षणजीवी होता था। मार्था के भोग-विलास का कोई उद्देश्य नहीं था। उसके राग-रंग में जीवन की खोज नहीं, अन्धकार की ठोकरें थीं; आनन्द का आविष्कार नहीं, दैहिक क्रीड़ा का निरा उत्पात था। इस प्रकार मार्था पैसे को पानी की तरह बहाकर काफे, आमोदगृहों और क्लबों के अँधेरे जीवन को और भी अन्धकारमय बना रही थी। दो वर्ष बीत गये; पैसा भी भागने लगा। भोग के अतिरेक से उसके अंग शिथिल हो चले। विलास के अन्धकार में उसका अन्तर्देवता कभी-कभी पूछ बैठता—यह सब किस लिए?

जब यह आवाज़ उसे सुनाई देती तो वह एक क्षण विचारमग्न हो जाती थी। आमोद-प्रमोद, शराब की चुस्कियाँ और जवानों का उपभोग उसने नहीं छोड़ा, परन्तु अपने अन्तर्देवता का प्रश्न सुनते ही वह कह उठती थी—आमोद और प्रमोद के लिए।

'आनन्द किसका?'

'मेरा।'

'कौन है तू?'

इस प्रश्न का उत्तर वह नहीं दे पाती थी। खोजने पर भी उसे प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता था। तब वह शराब की प्याली गटकाकर, सिगरेटें फूँककर भोग-विलास में प्रवृत्त हो जाती। पर यह प्रश्न उसका पीछा न छोड़ता था। उस प्रश्न को भूलने के लिए वह तरह-तरह की शराबें पीती, नाचती-नचाती, हँसती-हँसाती, आनन्दोप-भोग के नये-नये साधन जुटाने के लिए ठेठ अमेरिका तक का चक्कर लगा आती थी। आनन्द की खोज में घूमते-घूमते उसका जीवन लट्टू बन गया था। मार्था रही ही नहीं थी, रह गई थी एक चकरघिन्नी, जो स्वेच्छा से किसी युवक के जाल में लिपटती और छुम्म्म्म् करती हुई नाचने लगती। नाचते-नाचते चकरघिन्नी का रंग उड़ने और कीली घिसने लगी। पैसा ही तो उसकी कीली थी।

बेसल, रोडनी, जानी, जिमी, एडी, टेडी, फेडी—सभी जालों द्वारा वह चकरघिन्नी घूमती थी। उसे नचानेवाले अँग्रेज थे, वेस्ट इण्डियन थे और हब्शी भी थे। मार्था की मित्रमंडली विश्वव्यापी थी। उनमें चीन और जापान के प्रतिनिधि भी थे, क्योंकि हो और पो भी उसकी त्रिज्या में आ जाते थे।

८ : दो रँगीले

बेसल एक ही रँगीला था। उसकी जिन्दगी का रंगीन प्रवाह उद्दाम वेग से प्रवाहित हो रहा था। पिता ने अपार धन कमाया था, जिसका उपभोग वह दो की जगह दस हाथों से करने लगा। हाथ बढ़ते गये, पैसा कम होता गया। चार वर्ष पहले जब मार्था से उसकी पहली मुलाकात हुई तो तंगदस्ती शुरू हो चुकी थी। डर्बी की एक घुड़दौड़ में अचानक दोनो की मुलाकात हुई। मार्था की मदभरी आँखों ने बेसल की आँखों को निमंत्रण दिया, और बेसल की आँखें तो किसी के निमंत्रण की प्रतीक्षा कर ही रही थीं।

दोनो ने साथ लंच किया, साथ शराब की प्यालियाँ खाली कीं और चार घण्टे एक साथ बिताये। उसके बाद दोनो रोज मिलने-जुलने और हँसने-खेलने लगे। कभी-कभी दोनो आपस में लड़ते-झगड़ते और शरीर का आदान-प्रदान भी करते थे। रोडनी के साथ भी मार्था की दोस्ती थी, लेकिन उस दोस्ती में बेसल की दोस्ती-जैसी सनसनी और रोमांच नहीं था। रोडनी से हलका-हलका प्यार होता, लेकिन उसमें बेसल के जैसी गहमा-गहमी और गरमा-गरमी नहीं थी।

औद्योगिक युग की वह उद्योगी नारी मार्था अपनी जिन्दगी के कारखाने की दो पालियाँ चला रही थी। एक पाली की गति मन्द और दूसरी पाली की गति वेगवान और शोर-शराबे से भरी हुई थी।

बेसल मौज, शौक और भोग-विलास में जितना ही बढ़ता गया उसका आर्थिक क्षेत्र उतना ही सिकुड़ता गया। यहाँ तक कि उसके बैंक-बैलेन्स की पसलियाँ दिखने लगीं। शुरू-शुरू में वह मार्था से कभी 'लोन' नहीं लेता था। जब तक उसके बैंक के खाते में थोड़ी-बहुत जान रही वह अपने को बादशाह मानता रहा; लेकिन जब वह जान निकलने लगी तो उसे अपना 'अंकल' याद आया। चाचा उसे समय-समय पर इस भरोसे पैसा देता रहता था कि भतीजा लन्दन में अश्व-विद्या सीख रहा है। बेसल होशियार था; घोड़ों का शौकीन था। वह अपने चाचा से कहता था कि मुझे अश्व-विद्या-विशारद हो तो जाने दो, कमाकर रुपयों से घर भर दूँगा।

'ठीक है बेटा, घुड़दौड़ के हजारों सावरेन तू अपने ही पास रखना; लेकिन मेरे सावरेनों को अधिक न दौड़ाये तो अच्छा!' चाचा यह कहता हुआ उदारतापूर्वक सौ पौंड उसे दे भी देता था।

उन सौ पौंड का उपयोग बेसल अपने ही ढंग से करता था।

यों तो वह चतुर था। अपनी अश्व-विद्या के ज्ञान का वह पैसा कमाने में उपयोग करता था। घुड़दौड़ के एक साप्ताहिक में लेख भी लिखता था और अच्छे-बुरे घोड़े चाहे जिसके सिर मढ़कर खूब मुनाफा भी कमाता था। लेकिन खर्च का जबरदस्त पलड़ा उसकी आमदनी को चैन से सोने नहीं देता था। एकाध महीने में यह घोड़ा-नवाब फिर से बिगड़ा रईस बन जाता और तब उसे अपना चाचा याद आता।

'चाचा, तुम क्यों मुझे इतने प्यारे लगते हो?' एक दिन दरवाजे में घुसते ही उसने चाचा से पूछा।

चाचा ने तुरन्त मनीबेग निकाला और सिर्फ इतना ही पूछा—कितने चाहिए?

'सौ।'

और सौ पौंड देकर चाचा ने भतीजे से कहा—बेटा, हर महीने तुझे यह स्नेह-यात्रा करने की आवश्यकता नहीं; कभी-कभी मिलते रहते से भी काम चल सकता है।

भतीजे ने सौ पौंड जेब में डाले, ऊपर से चाचा की व्हिस्की का घूँट भरा और जाते-जाते कहता गया कि अगले माह तो उसे आना ही होगा।

ऐसे फक्कड़ रँगीले के साथ जब से मार्था की दोस्ती हुई उसकी भी जेब खाली होने लगी। चाचा के घर की स्नेह-यात्राएँ जब बेसल ने कम कर दीं तो वह समझ गया कि भतीजा निश्चय ही अश्व-विद्या-विशारद हो गया है।

मार्था उसकी मदद करती रहती थी। इनाम अथवा भेंट के लिए बेसल हमेशा 'उधार' शब्द का उपयोग करता था। मार्था उसे 'उधार' देती लेकिन विचारों की बही में उसके नाम पर उतना ही जमा करके जमा-नामे की खतौनी बराबर कर निश्चिन्त हो जाती थी।

'मुझे तुम्हारा बहुत पैसा देना है मार्था!' कभी-कभी बेसल अफ़सोस के स्वर में मार्था से कहता।

'कोई बात नहीं; जाओ, उनके एवज में मेरे लिए एक अच्छा-सा हेट लेते आना।' मार्था हँसकर कहती।

हेट आता जरूर, लेकिन उसके लिए मार्था से फिर 'उधार' पैसे लिये जाते। मार्था खूब हँसती।

रोडनी भी धनी मा-बाप का बेटा था। आमोद-प्रमोद और भोग-विलास से वह विमुख नहीं था, लेकिन बेसल जितनी लगन उसमें नहीं थी। देश-विदेशों के सम्बन्ध में तथा गूढ़ विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली एक प्रकाशन संस्था का वह मैनेजिंग डायरेक्टर बन गया था और कुर्सी पर बैठे-बैठे कागज़-पत्रों पर दस्तख़त करने के सिवा उसे दूसरा कोई खास काम नहीं था। संस्था को तो चलाने-वाले चलाते थे। वह रसिक था, हँसमुख था और क्लबों-होटलों में घूमता रहता था।

कुछ वर्ष पहले मार्था से अचानक उसकी भेंट हुई थी। डोवर से केले जाने-वाले एक स्टीमर पर दोनो यात्रा कर रहे थे। मार्था डेक पर खड़ी थी कि हवा के तेज़ झोंके से उसका हेट उड़ा और सरसराता हुआ दूर जाने लगा। रोडनी हेट के पीछे दौड़ा और एक खम्भे से टकराकर नीचे गिरे हुए हेट को उठाकर ले आया।

'बड़ी तकलीफ़ की आपने!'

'इसमें तकलीफ काहे की? कहाँ जा रही हैं आप, पेरिस?'

'जी हाँ ।'

'कहीं भटक तो नहीं जायेंगी ?'

'जी नहीं, यह मेरा चौदहवाँ सफर है ।'

'मैं तो बिलकुल नया हूँ और भटकने का डर है; अगर आप मुझे अपने साथ ले लें तो बड़ी मेहरबानी !'

इतना कहकर उसने मार्था को सिगरेट दी । ज्योंही वह सिगरेट सुलगाने के लिए लाइटर निकालने लगा कि तेज़ हवा का एक झोंका आया और देखते-ही-देखते रोडनी का हेट इंग्लिश चैनल में यात्रा करने लगा । दोनो हँसते-हँसते उसे देखते रहे । थोड़ी देर में डूबते-उतराते रहने के बाद उस हेट को एक लहर निगल गई ।

'देखा, आपसे मुलाकात न हुई होती तो मैं पेरिस में इसी तरह कहीं खो जाता । मुझे अपना हेट ही समझें ।'

तभी दोनो में दोस्ती हुई जो निरन्तर बढ़ती गई ।

६ : पुरानी पुस्तक

एक दिन रोडनी शाम को अपने दफ़्तर में बैठा कागजों पर दस्तख़त कर रहा था, इतने में एक आदमी ने प्रवेश किया ।

'कहिए क्या काम है आपको ?' सिर उठाये बिना, दस्तख़त घसीटते हुए रोडनी ने पूछा ।

'मुझे यह पुरानी पुस्तक बेचना है ।' आगन्तुक ने धीरे से कहा ।

रोडनी ने सिर उठाकर देखा तो गेहुँए रंग का एक युवक उसके सामने खड़ा था । चेहरे-मुहरे से वह स्वस्थ और गम्भीर प्रकृति का लगता था ।

'तशरीफ़ रखिए, ज़रा देखूँ कौन-सी पुस्तक है ?'

और पुस्तक लेकर रोडनी पृष्ठ उलटने लगा । दो-चार मिनट हुए होंगे कि मार्था आ पहुँची ।

'माफ़ करना रोडनी, मैं एकाएक चली आई । दोपहर को बेसल मेरी कार ले गया । कह गया था कि पाँच बजे तुम्हारे आफ़िस के सामने छोड़ जायेगा । अपनी दूसरी कार मैं वहीं से सर्विस के लिए भेज रही हूँ । नहीं आया बेसल ?'

'बैठो, आता ही होगा।'

मार्था बैठ गई। बैठते-बैठते उसकी दृष्टि अपरिचित व्यक्ति पर पड़ी।

'हुँ, "अवेकनिंग ऑफ़ दि फैथ" नाम तो अच्छा है। किस विषय पर है?' कहकर रोडनी ने पुस्तक मेज़ पर रख दी।

'बौद्ध धर्म की महायान शाखा पर लिखी गई है। लेखक का नाम है अश्वघोष। मूल पुस्तक संस्कृत में थी लेकिन आज अप्राप्य है। बड़ी अद्भुत पुस्तक है।'

आगन्तुक का उच्चारण सुनकर दोनो प्रभावित हुए। उसकी भाषा संस्कृत, उच्चारण स्पष्ट, ध्वनि मधुर और आत्मविश्वास से पूर्ण थी। वाणी में संयम और गाम्भीर्य था। वह नासाग्र दृष्टि रखकर बोल रहा था। मार्था उसे देखती रही। उसने लक्ष्य किया कि आगन्तुक के कपड़े सादे और सस्ते थे; टाई पुराने ढंग की और पोशाक की काट भी पुराने फैशन की थी। उसकी मुखाकृति सौम्य और आकर्षक थी। शरीर सुदृढ़ था। उसकी ठुड्डी निर्भयता एवं दृढ़ मनोबल की तथा नासिका निस्पृहता की सूचक थी। वह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने सामने बैठे रोडनी की ओर देख रहा था। मार्था की ओर उसने देखा तक नहीं।

'बड़े खेद की बात है कि आपको ऐसी अद्भुत पुस्तक बेचनी पड़ रही है।' रोडनी ने कहा।

मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ वह व्यक्ति रोडनी के शब्द सुनता रहा, फिर बोला—यह तो पुस्तक का एक 'रैक' से दूसरे 'रैक' में जाना हुआ—पुस्तक का वास्तविक अधिकारी तो उसे पढ़ने और समझनेवाला है, रैक में रखनेवाला नहीं।

उत्तर सुनकर रोडनी और मार्था को आश्चर्य के साथ आनन्द भी हुआ। उन्हें वह व्यक्ति उस पुस्तक की ही भाँति अद्भुत प्रतीत हुआ।

'क्या मैं आपकी पुस्तक देख सकती हूँ?' मार्था ने पूछा।

अब उस व्यक्ति ने मार्था की ओर देखा और कहा—अवश्य!

मार्था पुस्तक लेकर पन्ने पलटने लगी। उसमें दो-तीन चित्र भी थे।

'आप इसे कितने में बेचना चाहते हैं?' पन्ने पलटते हुए वह बोली।

'मैं जितना भी माँग लूँ अधिक है और आप जितना भी दे दें कम है।'

उत्तर सुनकर मार्था चकित रह गई। उसने पुस्तक मेज़ पर रख दी और उस व्यक्ति की ओर ताकने लगी। वह व्यक्ति उसे बड़ा ही विचित्र और असाधारण लगा।

'ठीक है, मैं अभी अपने मैनेजर को बुलाता हूँ; उन्हें ऐसे मामलों की अधिक जानकारी रहती है।' इतना कहकर रोडनी ने मैनेजर को बुलाया।

'मेक, ज़रा देखो तो यह पुस्तक कैसी है?'

मैनेजर ने पुस्तक को उलट-पलटकर देखा और बोला—पुस्तक तो बहुत अच्छी है; क्या कीमत लेंगे?

'आप क्या देंगे?'

'माल की कीमत तो उसका मालिक ही बता सकता है।'

'जी हाँ, आपने दुरुस्त फ़रमाया। अपने माल की कीमत मैं जानता हूँ, लेकिन पौंड-शिलिंग-पेन्स में नहीं।'

'आपको आपत्ति न हो तो हम दोनो ज़रा बात कर लें।' इतना कहकर मैनेजर अपने सेठ को बाहर ले गया।

'आप क्या करते हैं?' मार्था ने पूछा।

'विशेष तो कुछ नहीं।'

मार्था ने पाया कि आगन्तुक अपने बारे में कुछ बताना नहीं चाहता।

'सिगरेट लेंगे?'

आगन्तुक ने सिगरेट ले ली।

'इस देश से अच्छी तरह परिचित हैं?'

'अधिक तो नहीं।'

'किस देश के निवासी हैं?'

'हिन्दुस्तान का।'

'ओह, हिन्दुस्तान! मुझे हिन्दुस्तान के बारे में जानने की बड़ी अभिलाषा है। क्या हम फिर नहीं मिल सकते?'

'मिलने में तो कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन मैं हिन्दुस्तान के बारे में विशेष कुछ जानता नहीं हूँ।'

मार्था ने उसे अपना पता दिया और बोली—कल शाम को जरूर मेरे घर आइए। खाना भी हम साथ ही खायेंगे।

'आपकी कृपा के लिए आभारी हुआ।' इतना कहकर उसने पता अपनी जेब में रख लिया।

'आप कहाँ रहते हैं?'

'पास ही एक कमरा है।'

'कहें तो अपनी मोटर भेज दूँ।'

'नहीं मुझे बस में चलना पसन्द है।'

मार्था उस निस्पृह व्यक्ति की ओर एक ऐसे भाव से देख रही थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

रोडनी और मैनेंजर लौटकर अन्दर आये।

'आपकी पुस्तक की हमें कोई खास जरूरत तो नहीं है, लेकिन जब आप आये ही हैं तो हम खरीद लेंगे।' मैनेजर ने कहा।

'जरूरत न हो तो मैं आपको तकलीफ देना नहीं चाहता।'

'नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। मैं तो कहना चाहता था कि अभी तत्काल हमारे पास उस किताब का कोई ग्राहक नहीं है। और कह नहीं सकते कि कब तक ग्राहक मिलेगा। फिर भी अगर हम इसकी पाँच गिन्नी दें तो क्या आप स्वीकार कर लेंगे?'

'जैसी आपकी मर्जी। मैंने कहा तो है कि मैं अपनी चीज़ की कीमत पौंड शिलिंग-पेन्स में नहीं आँकता।'

'रोडनी, यह पुस्तक मैं इनके पास से खरीद लूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति होगी?'

मार्था के शब्द सुनकर रोडनी और मैनेजर दोनो ही चौंक पड़े।

'तुम्हारी इच्छा हो तो तुम जरूर खरीद सकती हो।' रोडनी ने कहा।

'मैं अगर आपको पचास गिन्नी दूँ तो क्या स्वीकार करेंगे? मुझे यह पुस्तक बहुत पसन्द आई।'

मार्था के शब्द सुनकर दोनो असमंजस में पड़ गये।

'जी नहीं; अगर पुस्तक आपको पसन्द आ गई है और आप बेचने के लिए नहीं ले रही हैं तो यों ही रख सकती हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे पैसों की आवश्यकता है; और आप यदि देना ही चाहती हैं तो पाँच पौंड दे दीजिए; मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। प्रत्येक सप्ताह उस सप्ताह के खर्च-भर को कमाना, अधिक की चिन्ता न करना—मेरा ऐसा ही व्रत है।'

'तो ठीक, है; इस पुस्तक के बदले मैं आपको एक वर्ष तक प्रति सप्ताह पाँच पौंड देती रहूँगी।'

'जैसी आपकी इच्छा।' इतना कहकर वह खड़ा हो गया।

'यह लीजिए, इस सप्ताह के पाँच पौंड; और आगे प्रति सप्ताह आपको मेरे घर आकर पाँच पौंड ले जाने होंगे।'

पैसे लेकर वह व्यक्ति जिस प्रसन्न भाव से आया था उसी प्रसन्न भाव से लौट गया।

रोडनी और मैनेजर चुपचाप खड़े देखते रहे।

१० : विलासिनी के यहाँ

मार्था का मकान बर्कले स्क्वैअर में था। उसके आलीशान दीवानखाने में ईरान के ऐसे चुनिन्दा कालीन बिछे हुए थे मानो ईरानी बगीचे ही खिल रहे हों! सत्रहवें लुई के समय का तड़क-भड़कवाला फर्नीचर और चीनी तथा जापानी बरतनों की भरमार भी थी। जीते-जागते दिखाई देनेवाले दो मरे हुए शेर दीवानखाने के दोकोनों में खड़े-खड़े घूर रहे थे और छत से बिल्लौरी काँच का झूमर लटक रहा था। सेंटरपीस पर दो-तीन तसवीरें थीं और दीवारों पर रेब्राण्ट तथा माइकेल एंजेलो की कला-कृतियों के अलावा टर्नर की कृतियाँ भी शोभा पा रही थीं। मेहमानों को लुभाने के लिए सेंटरपीस पर शराब की बोतलें और प्यालियाँ सजी हुई थीं। मार्था सोफे में पड़ी थी और एक पुस्तक के पन्ने उलटते हुए सिगरेट पी रही थी। पुस्तक वही कलवाली थी। घड़ी अपनी गति से चल रही थी, फिर भी हर पाँच मिनट के बाद मार्था की दृष्टि उसकी ओर उठ जाती थी। साढ़े सात हुए; परन्तु अभी तक उस आदमी का कोई पता नहीं था। मार्था ने सोचा कि वह मनस्वी पुरुष कहीं उलझ गया है। उसने शराब की घूँट पीकर रेडियो चला दिया। पौने आठ बज गये। उसने दूसरी सिगरेट जलाई। और जब घड़ी ने टन-टन करके आठ बजा दिये तो उसने आशा ही छोड़ दी। पाँचेक मिनट यों ही बीत गये; तभी नौकरानी एक तार लेकर आई। मार्था ने लिफाफा खोलकर पढ़ा। लिखा था :

'सख्त अफसोस है। यहाँ रुक जाने के कारण देर हो गई। अब सात के बदले नौ बजे पहुँच सकूँगा। खाने के लिए इन्तज़ार न करें।'

तार आक्सफोर्ड से भेजा गया था। मार्था की आशा फिर अंकुरित हुई। उसने

सन्तोष का अनुभव किया। बड़ी देर तक विचारों में मग्न रहने के बाद जो उसने घड़ी की ओर देखा तो नौ बज रहे थे। उसकी आशा अधिक बलवती हो उठी। साढ़े नौ बज गये। उसकी उत्कंठा बढ़ी और आशा अधीर होकर हृदय में नाचने लगी। जब दरवाजे की घंटी टनटना उठी तो आशा पूरे वेग से नृत्य कर रही थी।

थका-हारा वह दरवाजे के पास आया। मार्था का आनन्द भी हृदय-द्वार पर आ खड़ा हुआ।

'आइए, आइए!'

'विलम्ब के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ; तार तो मिला ही होगा।'

'हाँ-हाँ; कोई हर्ज नहीं। लेकिन आप भूखे मालूम होते हो। पहले थोड़ी शराब लीजिए, फिर खाना खायेंगे।'

'जी नहीं, मैं शराब नहीं पीता।'

मार्था ने अपनी प्याली भरी और उसे अपने समीप बिठाया।

'मैं तो समझी कि कहीं उलझ गये हो।'

'जी नहीं; तीन-चार पुस्तकें बेचने गया था। वहीं देर हो गई। पहली गाड़ी निकल गई, दूसरी ट्रेन पकड़कर आया। आपने माफ़ तो कर दिया न?'

'सो तो करना ही होगा। आप-जैसे मस्त-मौला आदमी को माफ़ किये बगैर चारा भी क्या है?'

मार्था की आँखों ने उसे आवेष्टित कर लिया। उसके नेत्रों में आसक्ति की ज्वाला थी। आगन्तुक ने भी अपनी मृदु दृष्टि मार्था की ओर लगा दी। कुछ देर तक दोनो की दृष्टियों का तारा-मैत्रक चलता रहा।

'आपका नाम?'

'रतिनाथ।'

'मैं तो केवल नाथ कहूँगी; छोटा भी है और प्यारा भी।'

'लेकिन मेरी भाषा में नाथ का अर्थ स्वामी होता है, इसलिए नाथ न कहें तो अच्छा।'

'यह तो मेरी मरज़ी की बात है। अगर काबिल हुए तो मैं सच में नाथ भी बना लूँगी।'

रतिनाथ के नेत्र-तारकों का स्थिर प्रकाश मार्था की हृदय-भूमि पर फैलता गया।

वे नेत्र आकाश की गहन नीहारिकाओं के समान थे। क्षण-भर के लिए जन्मान्तरों की अगम्य और शब्दहीन गाथा विस्तृत होती हुई मनःसृष्टि में व्याप्त हो गई। सच्चिदानन्द चिन्मय रूप स्थूल की भूमिका पर उतराता रहा। दोनो के शरीर का भिन्न अस्तित्व विलीन हो गया। हाथ अपने-आप कर्षित हुए और अंगों की उष्मा को अलौकिक वाणी प्राप्त हो गई।

समय की सत्ता विलीन होने के पश्चात् पुनः जाग्रत हुई; उसकी जागृति का भान उन्हें घड़ी की टनटनाहट से हुआ। जाग्रत होने पर उन्होंने पाया कि दोनो एक-दूसरे से सटकर बैठे थे और खाने की बात सर्वथा भूल ही गये थे।

दस बजे दोनो खाना खाने बैठे।

'आपकी पुस्तक देख रही थी।'

'पसन्द आई?'

'कुछ भी समझ में नहीं आया।'

'पसन्द नहीं आई?'

'गूढ़ वस्तु और गूढ़ व्यक्ति मुझे अच्छे लगते हैं।'

इतना कहकर उसने रंतिनाथ की प्लेट में एक गरमागरम खाद्य परोसकर स्वयं भी लिया। रंतिनाथ परोसे गये खाद्य पर चटनी डालता हुआ मार्था के मुख पर के भावों को देखने लगा।

'आप भूखी क्यों बैठी रहीं?'

'मुझे आपके साथ जो खाना था।'

मार्था के इन शब्दों को सुनकर रंतिनाथ ने खाना शुरू किया। उसकी दृष्टि बार-बार मार्था पर स्थिर हो जाती थी।

'ऑक्सफोर्ड में कितनी पुस्तकें बेचीं?' यह कहते हुए मार्था रंतिनाथ की प्याली में शराब उड़ेलने लगी।

'नहीं जी, मैं शराब नहीं पीता।' रंतिनाथ ने शराब की प्याली पर हाथ रख दिया और बोला, 'यही चार-पाँच बेची ।'

'कम क़ीमत में तो नहीं बेच आये?'

'कम और ज्यादा के बारे में मेरी समझ ही कुछ अलग तरह की है। आवश्यकता के अनुसार पैसा लेनेवाला उस चिन्ता से मुक्त रहता है। मनुष्य की आव-

श्यकताएँ यदि उसके बस में हों तो कम और अधिक का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।'

मार्था को बात तो पसन्द आई; लेकिन उसमें जो फिलॉसफी निहित थी उसके प्रति कोई श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई। बोली—पैसे के बिना साँस भी नहीं ली जा सकती। सुख का एक भी साधन बिना पैसे के प्राप्त नहीं होता।

मार्था के इन शब्दों का उत्तर रंतिनाथ ने नहीं, उसकी मन्द मुस्कराहट ने दिया। इतने में पुडिंग आ गया और मार्था ने उसे बहुत-सा परोस दिया।

'मेरी भूख और पाचन-शक्ति के बारे में आपका अभिप्राय बहुत अच्छा है।'

'अच्छे अभिप्राय के योग्य आपने खाया तो नहीं। इतने से अच्छा अभिप्राय नहीं बन सकता; आपको और लेना पड़ेगा।'

रंतिनाथ पुडिंग पर हाथ साफ करने लगा। पुडिंग सोच सकता तो पता नहीं उसके बारे में क्या सोचता, परन्तु मार्था को विश्वास हो गया कि वह भूखा था।

'अच्छा लगा?'

'बहुत अच्छा!'

'सुख का अनुभव हुआ या दुःख का?'

'सुख का।' इतना कहकर वह हँसा और बोला, 'पैसे के बिना इतनी बढ़िया क्रीम और एसेन्सवाला पुडिंग नहीं बन सकता, और पैसे के बिना सुख का अनुभव भी नहीं होता, यह सिद्धान्त आपने मुझे समझा दिया। लाइए और दीजिए।'

मार्था ने हँसकर उसे दूसरी बार पुडिंग दिया।

'इस पुडिंग के कितने पैसे मेरे पेट में गये और उन पैसों से कितना खून बनेगा—यही विचार मुझे रह-रहकर आ रहे हैं। आप इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाल सकें तो कृपा हो।'

'इन व्यर्थ के विचारों को छोड़कर आप निश्चिन्त खाते चलिए।'

'यह कैसे हो सकता है? सुख का आधार पैसा है, इस सिद्धान्त को आप इस पुडिंग के द्वारा मेरे गले उतार रही हैं, फिर मैं निश्चिन्त कैसे हो जाऊँ?'

'अच्छी बात है; तो आप मेरे शिष्य बन जाइए। सुख का और भी अधिक अनुभव होगा। क्या और पुडिंग दूँ?'

'जी नहीं, धन्यवाद; अब तो वह दुःख का ही कारण होगा, फिर उसमें चाहे जितने पैसे लगे हों।'

रंतिनाथ के अन्तिम शब्दों का अभिप्राय समझ में आते ही मार्था मुस्करा उठी और दोनो मन्द-मन्द हँसने लगे।

भोजन समाप्त करके दोनो दीवानखाने में आये। मार्था ने रंतिनाथ को सिग-रेट दी और खुद भी सुलगाई। फिर दोनो अँगीठी के पास सोफों पर बैठ गये।

'आप बड़े गूढ़ व्यक्ति हैं। क्या अपनी कहानी नहीं सुनायेंगे।'

'सुनाने लायक तो कुछ है नहीं।' इतना कहकर रंतिनाथ ने सिगरेट का एक कश खींचा।

उसके नेत्र अँगीठी पर स्थिर, वहाँ न जाने क्या देख रहे थे; उसके ओठ किसी अलौकिक आनन्द में मस्त कुछ झुक गये थे। मार्था ने देखा कि उसके चेहरे पर राग का कोई चिह्न नहीं था, थी मात्र विराग की छाया।

'आपने तो मौन धारण कर लिया। पर मैं न जाने क्यों आपकी कहानी सुनने की अपनी इच्छा को रोक नहीं पाती।'

बिना कोई उत्तर दिये उसने मार्था का हाथ पकड़ लिया। उसके स्पर्श की मधुर गरमाहट ने मार्था के हृदय को आनन्द विभोर कर दिया।

'कहाँ तक सुनोगी? कितने जन्म की कहानियाँ सुनोगी? कई बार मिले और कई बार बिछुड़े होंगे।'

शब्द स्पष्ट परन्तु उनका अर्थ धूमिल था। मार्था उसका हाथ सहलाती रही और हाथ एक-दूसरे को अपनी कहानी सुनाते रहे।

रात गये मार्था उसे घर छोड़ आई। रंतिनाथ मोटर से उतरने लगा तो उसने केवल इतना कहा—कल शाम को सात बजे लेने आऊँगी। नया पुडिंग बनेगा।

११ : लौ लगी

उस रात मार्था सो न सकी। एक सर्वथा अननुभूत व्यग्रता उसे आकुल किये रही। रंतिनाथ का चेहरा उसके हृदय से क्षण-भर के लिए भी दूर नहीं हुआ। उसके शब्दों की ध्वनि मार्था के कानों में गूँजती रही, और उसकी आँखों का प्रकाश मार्था की रात को आलोकित करता रहा। रात के दो बजे उसने बत्ती जलाई और वह पुस्तक देखने लगी। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर उसे रंतिनाथ का चेहरा दिखाई दिया—उसका वही पुराना जर्जर सूट, पुराने ढंग की टाई, सस्ती कमीज और घिसे

हुए जूते। रंतिनाथ के नख-शिख को याद करती हुई मार्था आकर्षण के उलझे हुए धागों को सुलझाने लगी। उन पुरानी-धुरानी, जर्जर वस्तुओं में अनुराग की कौन-सी ग्रन्थि थी, इसका वह विश्लेषण करने लगी। विश्लेषण करते-करते रंतिनाथ की प्रत्येक वस्तु उसे प्रिय हो उठी। उसे बेसल और रोडनी की भी याद आई। उनके पास 'सेविल रो' के शानदार सूट, सुल्के की भड़कीली टाइयाँ, बौण्ड स्ट्रीट की सुन्दर कमीजें और लोटस के चमचमाते जूते थे—फिर भी उसे उनकी कोई वस्तु प्रिय नहीं लगी। वैसे बेसल और रोडनी उसके अप्रिय नहीं थे, फिर भी इस समय न जाने क्यों अचेतन, अपरिचित, अनागन्तुक और अनित्य लग रहे थे, जब कि रंतिनाथ चेतन, परिचित और नित्य का प्रतीत हो रहा था। रंतिनाथ का ध्यान आते ही उसने अपने हृदय में गरमाहट का अनुभव किया और उसकी पुस्तक को उसने अपनी छाती से लगा लिया। अभी हृदय की मिलन-रात्रि में आत्मा क्रीड़ा कर रही थी कि इधर पृथ्वी पर सवेरा हो गया। [illegible] प्रभात के नीले उदर में समा गई और मार्था की चमकीली आँखों पर पलकों की बदलियाँ झुक आईं।

मार्था का प्रातःकालीन स्वप्न बड़ा ही मधुर था। रंतिनाथ का कपोल उसके कपोल का स्पर्श कर रहा था। सूरज की द्युति पृथ्वी के कपोलों का उग्रता से स्पर्श कर रही थी; परन्तु स्वप्नावस्था में सोयी हुई मेदिनी-जैसी मार्था के कपोल का स्पर्श तो चन्द्रमा के हृदय-जैसा रंतिनाथ का शीतल कपोल ही कर रहा था। आनन्द की उस लहर में उसका हृदय तरंगित होने लगा; मानसरोवर की शीतल तरंगों-जैसी सुखदायी ऊर्मियाँ उठीं और उसके अंगों में शान्ति का संचार होने लगा।

जब वह जागी तो ऐसा लग रहा था मानो जाग्रतावस्था समाप्त हो गई है। उसने चारों ओर रंतिनाथ को ढूँढ़ा, लेकिन वह वहाँ कहाँ? वहाँ तो उसकी पुस्तक पड़ी हुई दिखाई दी। वह उठी, हाथ-मुँह धोया और नाश्ता मँगाया। ग्रेप-फ्रूट, अंडे, चाय और टोस्ट आ गये। उसे ग्रेप-फ्रूट में भी रंतिनाथ की ही शकल दिखाई दे रही थी। उसने ग्रेप-फ्रूट में चीनी मिलाई; वह चीनी नहीं उसके हृदय का मधुर-रस ही था और तब मनोयोगपूर्वक ग्रेप-फ्रूट को गले में उतारने लगी।

नौ बजे रोडनी आ पहुँचा और बोला—'मार्था, तूने उस किताब में नाहक इतने पैसे बिगाड़े। वह तो पाँच गिन्नी में देने को राजी ही था। और मैं तुझसे मुनाफा तो कमाता नहीं। अच्छा, अब जरा चाय तो पिलाओ।

इतना कहकर वह कुर्सी खींचकर बैठ गया। मार्था ने उसे चाय का एक प्याला बनाकर दिया। रोडनी टोस्ट पर मार्मलेड चुपड़कर खाने लगा।

'तुम आज इतनी जल्दी कैसे ?'

'मुझे तुमसे एक बहुत जरूरी बात कहनी है।'

'बोलो।' चाय की चुस्कियाँ लेते हुए मार्था ने कहा।

रोडनी मार्था की ओर टक लगाये देख रहा था। उसने कहा—मैं तुम्हें चाहता हूँ मार्था ! और तुमसे विवाह का प्रस्ताव करता हूँ यदि तुम मुझे उस योग्य समझो।

रोडनी के शब्द गम्भीर और याचना से परिपूर्ण थे। मार्था ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह इधर-उधर देखती रही, मानो कुछ सुना ही न हो। रोडनी विह्वल बैठा रहा; उसका धैर्य समाप्त हो चला था। उसने मार्था का हाथ पकड़ा, परन्तु मार्था ने धीरे से अपना हाथ खींच लिया।

'मैं तो तुमसे कई बार कह चुकी हूँ कि मेरी इच्छा नहीं है।'

रोडनी को बड़ी निराशा हुई। उसके चेहरे की रंगत उड़ गई। चाय का घूँट लेकर वह बोला—मुझे अफ़सोस है कि मैंने तुमसे पूछा।

'तुम भी मूर्खों-जैसी बातें करते हो। अरे, ऐसे विचार तो आते ही रहते हैं, इसमें अफ़सोस काहे का ?'

रोडनी रुआँसा हो गया; उसकी आँखों में शायद आँसू भर आये थे। मार्था अपना हाथ उसके हाथ पर रखकर सहलाने लगी।

'अरे, ऐसी भावुकता किस काम की ? यों भी हम क्या बुरे हैं ! बड़े अच्छे मित्र तो हैं।'

'मैं जानता हूँ मार्था ! लेकिन मैं आशावादी हूँ और रहूँगा।'

विषयान्तर के उद्देश्य से मार्था ने उससे रेडियो चलाने के लिए कहा। रोडनी ने रेडियो का स्विच घुमाया। बी० बी० सी० से धीमा संगीत आ रहा था। सिग-रेट पीते हुए दोनो इधर-उधर की बातें करने लगे और इसी में दस बज गये।

'रोडनी, क्या आज दफ़्तर नहीं जाना है ?'

'जाना क्यों नहीं है ? लो, यह चला। शाम को तो मिलोगी न ? डोर्चेस्टर में खाना खायेंगे; काबारे भी बढ़िया है।'

मार्था ने नकार में सिर हिलाया तो रोडनी को बड़ी निराशा हुई।

'तुम्हारा कोई दूसरा एंगेजमेंट तो नहीं?'

'नहीं, कोई खास तो नहीं।'

इतना कहकर मार्था खिड़की के बाहर देखने लगी। उसकी आँखों में आशा और उमंग की अस्पष्ट रेखाएँ उभर रही थीं। वह रंतिनाथ का विचार करने लगी। रंतिनाथ भी ऐसे ही उड़ाऊ जवाब देता था।

रोडनी ने देखा कि मार्था कुछ कहना नहीं चाहती, तो उसने बात बदल दी।

'मार्था, एक बात कहना तो भूल ही गया। बेसल बिलकुल मुफ़लिस हो गया है। उसके चाचा ने खूब डाँट-फटकार सुनाई और अब पैसा देना भी बन्द कर दिया।'

'वह साहूकार ही कब था? उससे कहना कि मेरी मोटर दे जाये, नहीं तो मुझ-सा बुरा कोई न होगा। मैं दो-तीन बार फोन कर चुकी हूँ, लेकिन हजरत हों तो जवाब मिले।'

'आज मैंने उसे लंच के लिए बुलाया है। तुम भी आ जाओ। दफ़्तर से हम सब साथ ही चलेंगे।'

'आ सकी तो आ जाऊँगी; तुम एक बजे फोन करना।'

रोडनी उत्साहित होता हुआ चला गया। जब वह आँखों से ओझल हो गया तो मार्था ने अँगड़ाई ली और उस पुस्तक की ओर देखा। उसे ऐसा लगा मानो रंतिनाथ पुस्तक के आवरण पर बैठा हँस रहा था।

घड़ी अविराम गति से आगे बढ़ रही थी। मार्था उठी और दैनिक-कार्यों में लग गई।

१२ : मनमौजी त्रिपुटी

हॉबर्न से रोडनी जब श्मीट के जर्मन रेस्तराँ की ओर चला तो पौन बज रहा था। टॉटनहाम कोर्ट रोड पहुँचते-पहुँचते एक हो गया। तेज़ी से क़दम बढ़ाता हुआ वह रेस्तराँ की ओर जा रहा था। लन्दन भूखा हो गया था और क्षुधा शान्त करने के लिए इधर-उधर भाग रहा था। सारे रेस्तराँ खचाखच भर गये थे।

श्मीट में घुसते समय वह सोच रहा था कि बेसल और मार्था आ गये होंगे; लेकिन अन्दर जाने पर मालूम हुआ कि वे लोग अभी पहुँचे नहीं थे। रोडनी ने एक कोनेवाली मेज़ पर अड्डा जमाया। वहाँ सब लोग काले रंगवाली जर्मन बीअर

पी रहे थे और उनके वार्त्तालाप से मालूम होता था कि अधिकांश लोग जर्मन भाषा बोल रहे थे। रोडनी सिगरेट सुलगाकर बेसल और मार्था की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देर में सारा रेस्तराँ खचाखच भर गया और दिलरुबा के सुरीले स्वर वातावरण में गूँजने लगे। उस मधुर संगीत ने सब लोगों की मनःसृष्टि को आन्दोलित कर दिया और फेनिल बीअर भी अपनी उत्तेजना दिखाने लगा। सब लोग सांसारिक विषमताओं को भूलकर आनन्द की भूमि से समानता की सृष्टि में विचरने लगे। उस संगीत और बीअर के प्रभाव से सुन्दरियों को पुरुष अधिक आकर्षक और पुरुषों को सुन्दरियाँ विशेष लुभावनी प्रतीत होने लगीं। कइयों के नेत्रों में अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और कइयों की मुखाकृतियाँ मानो आनन्द-समाधि में लीन हो गईं।

करीब दस मिनट बाद बेसल आया।

'अफसोस है, कि देर हो गई।'

'रोज की तरह।'

'मार्था अभी नहीं आई।'

'आई तो नहीं; पर आयेगी जरूर।'

'रोडनी, चाचा कम्बख्त टस-से-मस नहीं होता। अब पैसा मिलना मुश्किल है।'

'नौकरी-धन्धा क्यों नहीं करता? सच्चा चाचा वही है।'

'कैसी बात करता है रोडनी! यह जीव नौकरी करेगा? हरगिज नहीं। अच्छा बता, तू कुछ दे सकता है?'

'एक पेनी भी नहीं।'

'तुममें दया, स्नेह, उदारता कुछ भी नहीं। इन वृत्तियों को अपने में उत्पन्न करके तुझे महान बनना चाहिए, रोडनी!'

'मैं अकिंचन ही भला। बता, दूसरी खबर क्या है?'

'कुछ भी नहीं। माँगनेवालों के तकाजों का सुरीला संगीत निरन्तर चल रहा है। तू क्या सलाह देता है, मार्था को इशारा कर देखूँ?'

'हर्ज ही क्या है! काम-धन्धा तो तू करना चाहता नहीं, इसलिए करने को इशारे ही रह जाते हैं। वह भी करके देख ले।'

इतने में मार्था भी आ पहुँची।

'आओ मार्था, तुम्हारे बिना प्यासे बैठे हैं।'

यह कहकर रोडनी ने तीन बीअर मँगवाईं।

'बेसल, तू कब लौटा?'

'आज ही।'

'चाचा ने धता बता दी।' रोडनी ने कहा।

'हूँ, चाचाओं का भरोसा ही क्या!' हँसकर मार्था ने कहा।

'बिलकुल सच कहा मार्था तुमने! मैं तो अब किसी दूसरे चाचा की खोज में हूँ। तुम्हीं ढूँढ़ दो।'

'काम कर, काम।'

'मैं भी इससे यही कह रहा था मार्था!'

'यह चाचा तो मुझे बिलकुल पसन्द नहीं।'

'न हो पसन्द, पर मेरी कार कहाँ है?'

बेसल ने मार्था को कोई उत्तर नहीं दिया और बीअर पीने लगा।

'मेरी कार कहाँ है?' मार्था ने धीरे-से लेकिन एक-एक शब्द पर जोर देते हुए पुनः पूछा।

'आ जायेगी।'

'आ जायेगी का क्या मतलब?'

'मतलब यही कि आ जायेगी।' बेसल ने बीअर की घूँट लेकर कहा। रोडनी मार्था की ओर देखने लगा।

'मार्था, तुम यह क्यों भूलती हो कि बेसल का जिस तरह चाचा है उसी तरह भतीजे भी होंगे?'

'बात क्या है बेसल! सच-सच बता?'

'बात तो कुछ भी नहीं है मार्था! थोड़े-से पैसे उधार दो। यह रोडनी तो क्रूर, हत्यारा, संगदिल है। तुम बड़ी कोमल, सरल, सहृदय और समझदार हो!'

'रोडनी, यह तो बहुत बुरी बात है! तुम्हें इसको पैसा देना चाहिए।'

खाना पूरा हो रहा था और बीअर भी ख़त्म हो चुकी थी।

'आज शाम को मैं तुम्हारे पास आऊँगा मार्था, मिलोगी न?' बेसल ने पूछा।

'एक आदमी मुलाकात के लिए आनेवाला है।'

'कितने बजे फुरसत होगी?'

'शाम को तो नहीं मिल सकती।'

वेसल चुप हो गया। कुतूहल तो रोडनी को भी हुआ, लेकिन दोनो में से किसी की हिम्मत उससे कुछ पूछने की न हुई। वेसल देख तो रहा था मार्था की आँखों में पर उसके भावों को पकड़ नहीं पा रहा था। फिर यह सोचकर कि रोडनी के साथ तो कहीं नहीं जा रही है उसने रोडनी की ओर भी एक तिर्यक् दृष्टि डाली।

'तो वेसल, आज शाम हम दोनो क्लब में ही गप्पें क्यों न मारें? रोडनी ने प्रस्ताव किया।

अब वेसल को विश्वास हो गया कि मार्था की शाम की मुलाकात रोडनी से नहीं किसी और से है। उसका कुतूहल बढ़ने लगा। वह हमेशा से यही मानता आया था कि मार्था पर जितनी उसकी पकड़ है उतनी किसी और की नहीं; और वह यह भी सोचता था कि उसने मार्था का पति बनने जितनी प्रीति प्राप्त कर ली है। रोडनी की भी ऐसी ही मान्यता थी, किन्तु आज सुबह की घटना के बाद उसने आशा छोड़ दी थी।

'तो फिर मुझसे कब मिल सकोगी?'

'कल सुबह आना।'

करीब ढाई बजे तीनों उठे और रेस्तराँ से बाहर निकले।

'मुझे ज़रा जल्दी जाना है, माफ करना। वेसल, आज शाम को क्लब में....'

इतना कहकर रोडनी चला गया। मार्था अपनी मोटर की ओर बढ़ी।

'तुम कहाँ जा रही हो मार्था?' वेसल ने पूछा।

'घर।'

'मैं भी चलूँ?'

'तेरी मरजी; लेकिन साढ़े चार बजे मुझे हेअर-ड्रेसर के यहाँ जाना है।'

'एकाध घण्टा बातें करेंगे।'

बेसल मार्था के साथ मोटर में बैठ गया। मार्था गाड़ी चला रही थी। तीन बजे दोनो घर पहुँचे। डाकिया चार-पाँच पत्र डाल गया था; मार्था उन्हें देखने लगी। वे सब शेअरों के डिविडेंड-वारंट थे।

'मार्था, अपनी रोल्स-रॉइस मुझे दे दो।'

बेसल के शब्द सुनकर मार्था चौंकी; उसने पूछा—किस लिए ?

'मैं दो हजार पौंड का कर्जदार हो गया हूँ। माँगनेवाला एक स्पेनियार्ड है। कार मेरी है, ऐसा कहकर मैंने उसे सौंप दी है। तुम गाड़ी की रकम मेरे नाम डाल दो, नहीं तो....'

'नहीं तो....'

'दो हजार पौंड दे दो। अगर तुम पैसा नहीं दोगी तो वह मोटर मुझसे ले लेगा। जब उसे यह मालूम होगा कि मोटर मेरी नहीं है तो मुझ पर फौजदारी का केस चलायेगा और धोखा-धड़ी के मामले में मुझे पाँच साल की सजा हो जायेगी। हालत यहाँ तक आ पहुँची है, और अब मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।'

थोड़ी देर तक मार्था कुछ न बोली; फिर उसने मुँह खोला—बेसल, तुम्हें कर्ज लेने का अधिकार तो जरूर है; लेकिन किसी की चीज को अपनी बताकर कर्ज लेने का अधिकार तो किसी को नहीं हो सकता ?

'बात तो तुम्हारी सोलहो आने सच है।'

'इतना कह देने से मामला तय नहीं हो जाता! तू बड़ा ही लफंगा और चालबाज है! मेरे पास से पैसा निकलवाने के लिए तूने जान-बूझकर यह सब किया है। सीधी तरह से शायद मैं तुझे दो हजार पौंड नहीं देती, इसलिए मेरी कार को अपनी बताकर तूने उसे गिरो रख दिया है और अब जान-बूझकर फौजदारी का भय सिर पर ओढ़ मुझसे दो हजार पौंड ऐंठना चाहता है।'

'मार्था, तुम्हें मुझ पर इतना अविश्वास ?'

'हाँ, तूने उस स्पेनियार्ड को तो ठगा ही, अब मुझे भी ठगना चाहता है। मेरी समझ में तो तुझे जेल ही जाना चाहिए।'

'मार्था, तुम मुझे इतना नीच समझती हो ?'

'बिलकुल। तुम हद दर्जे के लबाड़ और झूठे हो। अपने ऐश-आराम के लिए ठग-विद्या को तुमने अपना पेशा बना लिया है।' इतना कहकर वह घृणा से बेसल की ओर देखने लगी। बेसल का चेहरा उतर गया था।

'लेकिन इसमें तेरा अकेले का दोष नहीं, मैं भी उतनी ही दोषी हूँ। जब तक मेरे पास पैसा है, मैं कानून की गिरफ्त से बची रहूँगी। वैसे मैं जानती हूँ कि आराम और विलास का नशा एक दिन मुझे भी गुनाहों के डरावने मुँह में धकेल देगा।'

'तो जैसा तुम कहो, करूँ।'

'यह सब खुशामदें रहने दे। लम्पटता की ओट में मैं एक धूर्त की रक्षा नहीं करूँगी। तूने कई बार मेरे नाम पर इधर-उधर से पैसे लेकर खाये हैं, मेरे शेअरों की खरीद-बेच में भी ग़बन किया है; तूने लोन के नाम पर मुझसे पैसा खींचा है और अब यह नया जाल रचकर मुझे लूटना चाहता है! लेकिन जा, इस सबके लिए मैं तुझे माफ़ करती हूँ।'

'तुम कितनी उदार हो मार्था!'

'वह तो हूँ ही, लेकिन मैं धूर्तों और मुफ़्तख़ोरों के चक्कर में नहीं आना चाहती। वेसल, मुझे तुझसे या अपनी कार से अब कोई दिलचस्पी नहीं रही। वह कार मैं तेरे नाम लिखे देती हूँ, लेकिन तेरा या कार का मुँह भी नहीं देखना चाहती!'

'मैं क्या कह सकता हूँ मार्था! मैंने अपराध किये हैं और तुम्हें माफ़ करना ही होगा।'

'जा माफ़ कर दिया, लेकिन अब भूलकर भी तेरी सोहबत नहीं करूँगी।'

'पर मैं तो तुम्हें चाहता हूँ मार्था! मैं सुधरने की कोशिश करूँगा। तुम मेरे प्रेम को पहिचानो।'

'तू अवश्य अपने ढंग से चाहता होगा; लेकिन तुम सबकी अपेक्षा मैं अपनी आत्मा को अधिक अच्छी तरह पहिचानती हूँ। व्यभिचार के नशे में मैं अपनी आत्मा को नहीं भूल सकती। फिर तुझे मेरी नहीं मेरे पैसों की जरूरत है। मैं यह भी जानती हूँ कि तू मुझसे विवाह करना और विवाह के बाद मेरा पैसा उड़ाकर मुझे भिखारिन बना देना चाहता है; लेकिन तेरी यह मुराद पूरी नहीं हो सकती।'

वेसल का चेहरा एकदम उतर गया। वह समझ गया कि मार्था भोग-विलास और व्यभिचार का मूल्य चुकाती थी, लेकिन मूर्ख कदापि नहीं थी। वह अपना-सा मुँह लेकर बैठा रहा। मार्था के चेहरे पर क्रोध और विराग की स्पष्ट छाया थी। तभी उसे रतिनाथ की याद हो आई और उसके हृदय ने अपूर्व शान्ति का अनुभव किया। उसे उस व्यक्ति की लगन, निस्पृहता एवं गम्भीरता का स्मरण हो आया और लगा कि जीवन में पहली बार वह किसी पुरुष से इतनी गहन आत्मीयता का अनुभव कर रही है।

'तुम्हारे दिल से ही जब मैं उतर चुका हूँ, तो तुम्हारी कार लेकर क्या करूँगा!

नहीं चाहिए मुझे तुम्हारी गाड़ी। जैसा मेरा भाग्य। मैं अपना रास्ता निकाल लूँगा।'

बेसल के शब्दों का मार्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उलटे वह कुपित ही हुई, परन्तु किसी प्रकार मन पर संयम करके बोली—मैं जानती हूँ कि तुझे कार की नहीं, दो हजार पौंड की जरूरत है।

बेसल को लगा कि मार्था कुछ पिघल रही है। उसे आशा बँधी कि हो सकता है पाँसा सीधा गिर जाये। मार्था के निकट जाकर उसने उसका हाथ पकड़ने का प्रयत्न किया। लेकिन मार्था ने उसे घृणापूर्वक झटक दिया।

'मार्था, तुम मुझसे सख्त नाराज हो। लेकिन जो हो चुका है उसे भूल जाओ। मैं अभी जाकर तुम्हारी कार लिये आता हूँ, और इत्मीनान रखो कि ये दो हजार भी जल्दी ही चुका दूँगा।'

'तो जा, कार लेकर आ।'

'लेकिन जब तक तुम चेक नहीं दोगी, वह कार छोड़ेगा नहीं।'

बेसल के शब्दों को वह शान्त होकर सुनती और मुस्कराती रही।

'जा, कार ले आ, और जिसे चेक देना है उसे भी साथ लेता आ।'

बेसल कुछ सकपकाया, सहमा और चला गया। तिरस्कारयुक्त हँसी के साथ मार्था उसे देखती रही।

आध घण्टे के बाद वह लौट आया।

'मार्था, तुम्हारी कार तुम्हारे ड्राइवर को सौंप दी है। उस आदमी ने मेरी बात मान ली। तुम मुझे दो हजार का चेक दे दो, ताकि उसका पैसा चुका दूँ।'

'कहाँ है वह आदमी?'

'अपने गराज में बैठा है।'

'चल, मैं तेरे साथ चलती हूँ।'

'ऐसी भी क्या जल्दी है; तुम मुझे चेक बाद में दे देना; मैं शाम को उसे दे आऊँगा।'

'नहीं, मैं अभी चलती हूँ। तेरे बारे में वह आदमी क्या सोचेगा? तू उसकी निगाहों में झूठा साबित होगा।'

'अरे, तो वह वहाँ बैठा थोड़े होगा। शायद चला भी गया हो। उसने कहा था कि शाम तक चेक....'

'नहीं, मैं उसे अपने हाथ से चेक देना चाहती हूँ। चल !'

बेसल समझ गया कि मार्था ने उसकी चालाकी पकड़ ली है। उसने एकदम पाँसा पलट दिया। बोला—अच्छा, मैं फोन करके पूछता हूँ, वह है या नहीं।

और वह फोन के निकट गया। मार्था भी उसके पीछे-पीछे फोन तक आई। डायल पर आँखें गड़ाये वह खड़ी रही और घूमते हुए डायल का नम्बर अच्छी तरह याद कर लिया।

'हलो! कौन, मेक्स ? पेड्रो है ?' इतना कहकर पाँच-दस सेकण्ड तक रिसीवर पकड़े वह खड़ा रहा और फिर रख दिया।

'नहीं है, शाम को आयेगा।'

मार्था उसकी चालाकी को समझ गई। उसने रिसीवर उठाकर वही नम्बर घुमाया।

'कौन मेक्स ? पेड्रो है ?' वह भी उसी प्रकार बोली। लेकिन नम्बर किसी और का ही था। उधर से जवाब मिला, 'यहाँ मेक्स या पेड्रो नाम का कोई व्यक्ति नहीं।'—

बेसल सकते में पड़ गया। मार्था तिरस्कारपूर्वक हँसने लगी।

'बेसल, शायद मैंने गलत नम्बर डायल किया। कौन-सा नम्बर है ?'

बेसल के काटो तो खून नहीं। क्या जवाब देता !

मार्था ने पुनः पूछा—कौन-सा नम्बर है ?

बेसल रोनी सूरत बनाये, सिर पकड़कर नीचे बैठ गया। मार्था ने चेकबुक निकाली और दो सौ पौंड का एक चेक लिखकर उसकी ओर बढ़ा दिया।

'ले, यह है मेरी दोस्ती की आखिरी किश्त।'

बेसल के चेहरे पर झाड़ू फिर गई। मार्था ने मजबूती से उसका हाथ पकड़कर चेक उसकी जेब में रख दिया और उसे खड़ा करके दरवाजे की ओर ढकेला।

'आदाब-अर्ज !' मार्था ने कहा।

'ले....कि....न....!'

'अब भूलकर भी इस दरवाजे का रुख न करना।'

'ले....कि....न....!'

मार्था ने उसे बाहर ठेलकर धड़ाम से दरवाजा बन्द कर दिया।

१३ : रहस्य पुरुष के यहाँ

बेसल को घर से निकालकर मार्था हेअर-ड्रेसर के यहाँ गई। उसका मन रंतिनाथ से मिलने को व्यग्र हो रहा था। सात बजने की प्रतीक्षा में उसे एक-एक मिनट घण्टे-जैसा लग रहा था। पिकडिली पहुँचकर वह हेअर-ड्रेसर की दूकान में घुसी और आँखें बन्द करके कुर्सी पर जा बैठी।

सिर धुलवाकर जब वह खड़ी हुई तो साढ़े छह बज रहे थे। उसका हृदय रंति-नाथ के लिए अधीर हो रहा था। पैसे चुकाकर उसने सिगरेट सुलगाई और बाहर निकलकर अपनी मोटर की ओर बढ़ी।

रात का अन्धकार धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतरने लगा था और साथ-साथ लन्दन के विलास-प्रेमी भी सड़कों पर निकलने लगे थे।

जब वह पासवाली स्ट्रीट में पार्क की हुई अपनी मोटर के निकट पहुँची तो रोडनी आराम से मोटर में बैठा सिगरेट फूँक रहा था।

'तुम कहाँ से ?'

'मुझे मालूम हुआ कि तुम इधर आई हो, इसलिए चला आया। तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

'अभी तो मुझे काम है; फिर कभी मिलना।'

'अच्छी बात है; लेकिन मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह रास्ते में ही कह लूँगा। तुम मुझे रास्ते में उतार देना।'

'कहाँ जाना है तुम्हें ?'

'जहाँ तुम कहो।'

'पागलपन मत करो रोडनी, आज मैं तुमसे नहीं मिल सकती। तुम्हें रीजेण्ट स्ट्रीट पर छोड़ दूँगी।'

मार्था ने मोटर स्टार्ट की। शाम के समय लन्दन की सड़कों पर भीड़ बढ़ जाने के कारण मोटर चींटी की चाल चल रही थी।

'मार्था, मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ।' इसका मार्था ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'सुबहवाला प्रस्ताव पुनः तुम्हारे सामने पेश करता हूँ।'

इस बार भी मार्था कुछ न बोली।

'तुम्हारे बिना मुझे अपना जीवन सूना लगता है।'

रीजेण्ट स्ट्रीट का मोड़ आ गया था। मार्था बोली—चलो, उतर जाओ यहाँ।

टूटा हुआ दिल लेकर रोडनी उतर गया।

'कल सवेरे मिलोगी ?'

'नहीं।'

'शाम को ?'

'नहीं।'

'तो फिर कब ?'

'मैं तुम्हें फोन करूँगी।'

'मार्था, तुम इतनी कठोर....'

मार्था ने मोटर चला दी। उसका मन रंतिनाथ में रम रहा था और दूसरे सब उसे खोखली प्रतिध्वनि-जैसे लगने लगे थे।

ठीक सात बजे वह रंतिनाथ के घर पहुँची। उसने घंटी बजाई, लेकिन दरवाजा न खुला। दो मिनट बाद फिर बटन दबाया और राह देखने लगी, लेकिन किसी ने दरवाजा नहीं खोला। कुछ देर खड़े रहने के बाद उसने तीसरी बार काफी देर तक बटन दबाये रखा। अन्दर घंटी बजने की आवाज भी उसे सुनाई दी, फिर भी कोई नहीं आया। मार्था का हृदय निराशा से भर गया। वह सीढ़ियाँ उतर ही रही थी कि नीचे से एक औरत आती दिखाई दी।

'ठहरिए !' वह बोली।

'मुझे मिस्टर नाथ से मिलना था; लेकिन शायद वह अन्दर नहीं हैं।'

'नहीं, वह तो अन्दर ही हैं।'

इतना कहकर उस औरत ने दरवाजा खोला और मार्था उसके पीछे-पीछे अन्दर आई। उस पुराने कमरे में एक खस्ताहाल सोफे पर रंतिनाथ आँखें बन्द किये बैठा था। उन दोनों के आने का उसे जरा भी पता नहीं चला। वह औरत बूढ़ी थी। उसने मार्था को एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। रंतिनाथ ध्यान में लीन था।

'आपका नाम ?' उस औरत ने पूछा।

'मार्था।'

'मेरा नाम बारबरा है।'

कुछ देर दोनो चुप वैठी रहीं।

'इस तरह यह कितनी देर बैठे रहेंगे ?' मार्था ने पूछा।

'कुछ कह नहीं सकती।'

'क्या आपको भी मिलने का समय दिया है ?'

'जी नहीं; मैं तो इनके कमरे की देख-भाल करती और खाना भी बना देती हूँ।'

इतना कह बारबरा चुप हो गई। फिर बोली, 'नीचे मेरी फल की दूकान है।'

'इन्हें कब से जानती हैं ?'

'यहाँ रहने आये तभी से। बड़े मस्त आदमी हैं। कोई इच्छा नहीं, कोई झंझट नहीं। कभी-कभी तो घण्टों इसी तरह पड़े रहते हैं।'

मार्था ने घड़ी देखी तो साढ़े सात हो गये थे।

'मैं इन्हें उठाऊँ ?'

'नहीं; मैं ही अभी उठा दूँगी।'

इतना कहकर बारबरा दूध गरम करने चली गई और दस मिनट में दूध लेकर लौट आई। उसने रंतिनाथ को हिलाया।

मानो किसी दूसरी दुनिया से उतर रहा हो इस प्रकार रंतिनाथ होश में आ गया।

'लो, यह दूध पी लो।'

रंतिनाथ ने दूध का गिलास हाथ में लिया और मार्था तथा बारबरा की ओर बारी-बारी से देखने लगा। दो मिनट तक वह मौन रहा। तब उसने मार्था से कहा—कौन था तुम्हारे साथ मोटर में ?

सुनकर मार्था सन्नाटे में आ गई।

'एक मित्र।' उसने कहा।

'वही मेरी पुस्तकवाला ?'

'जी हाँ।'

मार्था के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था।

'कितना अद्भुत ! कितना विस्मयजनक !' बारबरा की ओर देखकर उसने कहा।

'आश्चर्यजनक बातें तो कितनी ही हैं; कोई कहाँ तक गिनाये।' बारबरा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

'तुमने कैसे जाना ?' मार्था ने पूछा ।

उत्तर दिये बिना रंतिनाथ ने गिलास का दूध पी लिया ।

'मैं अभी तैयार हो लेता हूँ ।' इतना कहकर वह खड़ा हुआ । अन्दर जाकर हाथ-मुँह धोया और कोट-पेण्ट पहिनकर बाहर निकल आया । मार्था ने देखा कि उसके चेहरे पर मन्द मुस्कराहट थी । वह बोला, 'आपका खूब समय लिया, क्यों ?'

'कोई बात नहीं, चलिए ।'

'बारबरा, तुम कब तक प्रतीक्षा करती रहोगी ? लाओ, चाभी मुझे दे दो ।'

बारबरा से चाभी लेकर उसने जेब में रख ली और मार्था के साथ चल पड़ा।

'ऐसे दरिद्र और जर्जर मकान में आना तुम्हें अच्छा लगता है ?' सीढ़ी उतरते हुए उसने मार्था से पूछा ।

मार्था ने उत्तर में उसका हाथ पकड़ लिया और दोनो नीचे उतर आये। पास-वाली दूकान में जाकर रंतिनाथ ने चाकलेट का एक पैकेट खरीदा और मार्था को चाकलेट दी । मार्था कोमल भाव से उसकी ओर देखती रही ।

जब दोनो मार्था के मकान पर पहुँचे तो आठ बज रहे थे ।

१४ : उल्लास की तन्द्रा

घर में आकर बैठते ही मार्था ने व्हिस्की की प्याली भरी और रंतिनाथ की ओर बढ़ा दी; लेकिन उसने विनयपूर्वक मना कर दिया ।

'ओह, भूली । आपको शराब पसन्द नहीं है । कभी नहीं पीते ?'

'कोई विधि-निषेध नहीं, परन्तु मुझे पसन्द नहीं । आप पी सकती हैं ।'

'नहीं, अब मैं भी नहीं पीयूँगी । तुम्हें जो चीज पसन्द नहीं उसे मैं तुम्हारी उपस्थिति में छुऊँगी भी नहीं ।'

रंतिनाथ मुस्कराया, फिर उसकी ओर देखकर बोला—तुम्हें शराब पसन्द है ?

'पसन्द तो जरूर है ।'

'तो फिर क्यों नहीं पीती ?'

'लेकिन तुम उससे भी ज्यादा पसन्द हो ।'

'इसे छोड़ो; और जब तक तुम्हें यह विश्वास नहीं हो जाता कि चीज बुरी है तब तक तुम पी सकती हो ।'

'बुरी है, यह विश्वास कभी नहीं हुआ। तुम करा दो।'

'पहली बात तो यह कि शराब से ज्ञान-तन्तुओं की एकाग्रता में बाधा पड़ती है और मूढ़ता आती है। और सुख ज्ञान-तन्तुओं की एकाग्रता में है, मूढ़ता में नहीं।'

मार्था सुन रही थी; उसे शंका हुई। उसने कहा—शराब से सुख का अनुभव होता है, इस बात का विरोध मैं कैसे कर सकती हूँ?

'सुख का अनुभव नहीं, दुःख का विस्मरण कहो।'

'दुःख का विस्मरण भी कोई मामूली बात है?'

'मामूली बात तो नहीं, परन्तु दुःख का विस्मरण क्षणिक होता है, जब कि सुख का अनुभव शाश्वत है। दुःख के विस्मरण को सुख नहीं कहा जा सकता।'

मार्था उसकी ओर एकटक देख रही थी। रंतिनाथ की आँखों में मानो सायंकालीन आकाश का सुरम्य रंग तैर रहा था। उस अलौकिक रंग ने मार्था के हृदय को रँग दिया। वह उससे सटकर बैठ गई और हाथ पकड़कर बोली—बतलाओ कि तुम कौन हो?

'कौन हूँ मैं, इसे तो, मार्था, न कहनेवाला जानता है और न सुननेवाला ही।'

मार्था के कोमल हाथ में उसे स्नेह की मृदुता का आभास हुआ; उसकी नीली आँखों में हृदयगत भव्यता के दर्शन हुए। वह उसके हाथ को सहलाता रहा। सहसा मार्था का हृदय राजहंस की भाँति नाच उठा और नाड़ी-चक्रों में एक अद्भुत स्फूर्ति का संचार हुआ। उसके कोमल अवयव अनायास ही रंतिनाथ की ओर उमड़ने लगे और दूसरे ही क्षण उसका सौम्य मुखमण्डल इस तरह उसकी छाती से लग गया, मानो आकाश में चन्द्रलेखा उदित हुई हो। रंतिनाथ का स्नेहसिक्त कर मार्था के कपोल पर फिर रहा था। उस कपोल के अणु-परमाणु में चैतन्य की निर्झरिणी वह निकली और वह उल्लास की तन्द्रा में डूबने लगी। चुम्बन नहीं हुए, दोनो के ओठों का द्वैत मिट गया; आलिंगित नहीं हुए, दोनो की पृथकता का विलोप हो गया; स्थूल शरीरों का अस्तित्व ही विलीन हो गया और चैतन्य की महागंगा दोनो में प्रवाहित होने लगी। मार्था का रोम-रोम सजीव हो गया; वह बदल गई। तादात्म्य के महासागर में क्रीड़ा करते हुए दोनो के नेत्र चटुल मीन बनकर नाचने लगे। गिरा नयन नयन भई वाणी-जैसी स्थिति दोनो की हो गई थी।

अद्वैत की इस महारात्रि में नाड़ी-चक्रों की रासलीला का अनहद नाद रोम-

रोम में ध्वनित होता हुआ हृदय की गहन गुहाओं में गूँजने लगा। प्रतिध्वनि की वह गूँज मानो अन्धकार को चीर रही थी। बीच-बीच में प्रकाश की दिव्य आभा झलमला उठती थी।

रंतिनाथ के शरीर से लिपटी हुई मार्था विश्वोत्तीर्ण भूमिका में विचरण कर रही थी। रंतिनाथ एकाग्रचित्त उसे देख रहा था। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि जो उसके शरीर से लिपटी हुई है वह मार्था है या महामाया। अन्त में वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि जो लिपटी है वह मार्था नहीं, महामाया ही है।

मार्था जब उल्लास की महान तन्द्रा से जाग्रत हुई तो रंतिनाथ का हाथ उसके मस्तक पर फिर रहा था। घड़ी बता रही थी कि उनके भोजन का समय बीत चुका है। दोनो चुपचाप जाकर शान्तिपूर्वक खाने की मेज पर बैठ गये। एक के बाद एक तरह-तरह के खाद्यान्न आने लगे, लेकिन रंतिनाथ का ध्यान खाने में नहीं था।

'तुम क्यों कुछ खाते नहीं ?'

'मैं तो इसी तरह खाता हूँ।'

'तुम्हारे लिए मैंने अपने हाथ से पुडिंग बनाया है।'

'तब तो जरूर खूब खाऊँगा।' इतना कहकर उसने मार्था की ओर देखा। वह हँसी, अत्यन्त मीठी हँसी।

रंतिनाथ ने तीन-चार बार पुडिंग लिया और खा गया।

'पसन्द आया ?'

'इस पुडिंग में मैं तुम्हारी कोमल उँगलियाँ, उँगलियों के अन्दर के ज्ञान-तन्तु और तन्तुओं के भीतर का स्नेह—सब कुछ खा गया।'

यह सुनकर मार्था आनन्दमग्न हो गई। उसने रंतिनाथ का हाथ पकड़ा और दोनो टक लगाये एक-दूसरे को देखने लगे।

घड़ी ने दस बजाये। सिगरेट पीते हुए दोनो एक-दूसरे के मौन की उष्मा में बैठे थे कि उसी समय दरवाजे की घंटी टनटना उठी। तत्काल बाद ही रोडनी ने प्रवेश किया और रंतिनाथ को देखते ही सहम गया।

'माफ करना मार्था, मैं बिना कहे चला आया।'

'आओ।' ठंडे स्वर में मार्था ने कहा।

रोडनी आकर बैठ गया। रंतिनाथ को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसकी समझ

में नहीं आया कि वह काला आदमी यहाँ क्यों था।

'रोडनी, इनसे तो तुम मिल चुके हो। वही हैं जो उस दिन तुम्हारे आफिस में आये थे।'

'हाँ, जानता हूँ। मजे में तो हैं आप?' रोडनी के स्वर में निरा शिष्टाचार था। रंतिनाथ ने हाथ मिलाया।

रंतिनाथ के यहाँ मिलने की तो रोडनी ने कल्पना भी नहीं की थी। उसके मस्तिष्क में अनेक विचार उठने लगे। क्या इसी कलूटे के लिए मार्था ने शाम की मुलाकात ठुकरा दी थी? यह कहाँ से आ मरा?

'मैं व्हिस्की लूँ तो कोई हर्ज तो नहीं?' उसने मार्था से पूछा।

'यह रही।' मार्था के स्वर में बर्फ की शीतलता थी।

'मुझे मालूम होता तो इस तरह कभी न आता।' व्हिस्की पीते-पीते रोडनी बोला।

'मैंने तुमसे कह तो दिया था।' मार्था ने और भी ठंडे और विरागपूर्ण स्वर में कहा। रोडनी डरा कि मार्था कहीं बिगड़ न जाये। उसने जबर्दस्ती मुस्कराकर शिष्टाचार की दो-एक बातें करके अपनी बेढंगी स्थिति को सँभालने का प्रयत्न किया।

'आप क्या कोई दूसरी पुस्तकें लाये हैं?' रोडनी ने रंतिनाथ से प्रश्न किया।

'जी नहीं।'

'मार्था, तुमने वह पुस्तक पढ़ी?' उसने मार्था से पूछा।

'देखो रोडनी, इस समय मैं किसी भी पुस्तक के बारे में चर्चा करने को प्रस्तुत नहीं हूँ।'

मार्था के उत्तर से ध्वनित हो रहा था कि रोडनी की उपस्थिति उसे स्वीकार नहीं। रंतिनाथ ने रास्ता निकाला।

'अच्छा, तो अब मुझे इजाजत दीजिए! आपको इनसे काम होगा।' उसने कहा।

मार्था रंतिनाथ की ओर उमंगपूर्वक देखती हुई बोली, 'नहीं-नहीं, आप बैठिए! आपसे काम है।' और फिर उसने रोडनी से पूछा, 'क्यों रोडनी, तुम्हें मुझसे कोई काम है?'

'खास तो कुछ नहीं; कल बेसल मिला था वह....'

'मुझे बेसल से कोई मतलब नहीं। भाड़ में जाये वह ! और अगर तुमने मेरे आगे बेसल का नाम लिया तो तुमसे भी नफरत हो जायेगी !' मार्था की भौंहें तन गई थीं।

'मैं आशा करता हूँ कि तुम मुझसे नाराज नहीं होओगी। जाने दो, उस बात को ही छोड़ दें। अच्छा, तो मैं जाऊँ ?'

'तुम्हें रोका किसने है ?'

रोडनी सिटपिटाकर चल दिया और मार्था ने सन्तोष की साँस ली।

'परेशान हो गई हूँ इन सबसे !'

'कुछ दिनों तक एकान्त सेवन करो।'

'मैं इन सबसे दूर चली जाना चाहती हूँ।'

'यहाँ रहते हुए भी दूर जा सकती हो।'

'रंतिनाथ, तुम्हें देखकर मुझे परम शान्ति का अनुभव होता है, इसका कारण कहीं यह तो नहीं है कि तुम मुझसे बहुत दूर हो ?'

रंतिनाथ का चेहरा गम्भीर हो गया।

'मार्था, सभी ऊपरी परिचय क्षणजीवी होते हैं। ऐसे सम्बन्ध वर्षों पुराने होते हुए भी उनसे आनन्द का यथार्थ अनुभव नहीं होता।'

'तुम्हारी यह बात मेरी तो कुछ समझ में नहीं आई। जरा समझाकर कहो।'

'समय आने पर अपने-आप समझ जाओगी।'

'आज तुम अपने घर में आँखें बन्द किये शून्यमनस्क क्यों बैठे थे ?'

'बाह्य जगत् से आभ्यन्तर जगत् में जाने के लिए।'

'तुमने यह कैसे जाना कि रोडनी मेरे साथ मोटर में था ?'

'मैंने देखा था।'

'यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता।'

'समझने की शक्ति आने पर सब-कुछ अपने-आप समझ जाओगी। हम अपनी स्थूल, बाह्य इन्द्रियों को पार करके सूक्ष्म इन्द्रियों को प्राप्त करेंगे। सारा मानव-समुदाय इसी मार्ग पर चलेगा !'

मार्था एकाग्रचित्त रंतिनाथ के शब्द सुनती और उसके चेहरे पर छायी गम्भीरता को साश्चर्य देखती रही।

'क्या तुम्हारे कहने का यही अभिप्राय है कि मैं इन चर्मचक्षुओं से जो कुछ देखती हूँ वह सब तुम्हें आँखें बन्द करने पर भी ठीक वैसा ही दिखाई पड़ता है ?'

'तुम दो आँखों से क्या देखती हो यह मैं कैसे जान सकता हूँ। मेरा तो केवल यह कहना है कि मुझे दिखाई देता है। अगर इन्द्रियों की शक्ति का मूल उद्गम जान सको तो इन्द्रियातीत हुआ जा सकता है।'

'इन्द्रियातीत भी हुआ जा सकता है ?'

'क्यों नहीं ? इन्द्रियों की सीमा को ठीक उसी तरह पार किया जा सकता है, जिस प्रकार लन्दन की सीमा को।'

'उसे आभास ही क्यों न माना जाये ?'

'आभास किसका ? इन्द्रियों के ही तो द्वारा उस आभास की प्रतीति होती है। इसलिए वह आभास है। परन्तु आभास तो इन्द्रियों का—इन्द्रियजन्य ही हुआ न, या किसी और का ?'

मार्था के ध्यान में बात अस्पष्ट रूप से उतर रही थी; फिर भी उसके मस्तिष्क में ऊहापोह तो होता ही रहा।

'लेकिन क्या यह आनन्द मिथ्या है जिसका अनुभव हम अपने शरीर से करते हैं ?'

'नहीं, जब तक शरीर है हम उसे मिथ्या कैसे मान सकते हैं ? लेकिन वह आनन्द शरीर में है, देहजन्य है, ऐसी भ्रान्ति यदि दूर नहीं की गई तो शरीर के निर्बल होने पर आनन्द की अनुभूति भी निर्बल हो जायेगी। वास्तव में आनन्द का उद्रेक शरीर में नहीं, मन में होता है; और मन शरीर के सम्पर्क में रहता है, उसका अंग नहीं होता। जब मन शरीर से अतीत हो जाता है तो विश्वरूप बन जाता है, चैतन्य में विलीन हो जाता है, आनन्द का महासागर उमड़ पड़ता है।'

रंतिनाथ के शब्दों का प्रशान्त सागर मार्था के हृदय को आनन्दमग्न कर रहा था। उसे जीवन-तत्त्व की कुछ-कुछ झाँकी मिल रही थी। रंतिनाथ आगे बोला :

'ऐसे अनित्य, अनश्वर आनन्द का जो उपभोग करता है, उसे ये क्षणजीवी आनन्द क्या रुचिकर हो सकते हैं ? शरीर ज्ञान का साधन है; भोग भी ज्ञान का साधन है। जो लोग साधन को ही सर्वस्व मान बैठते हैं अथवा जो बिना समझे साधनों का तिरस्कार करते हैं—वे दोनो अज्ञानी हैं। विषयलोलुप भी अज्ञानी हैं

और विषयों पर नाक-भौं सिकोड़नेवाले भी।'

इतना कहकर वह चुप हो गया। उसके नेत्र अर्द्धोन्मीलित हुए और श्वास की गति एकदम मन्द पड़ गई। उसकी प्रशान्तावस्था को देखती हुई मार्था एकान्त भाव से उसी के विचारों में निमग्न हो गई। कौन है यह अद्‌भुत व्यक्ति? कैसा रहा है इसका भूतकाल? इसका आन्तरिक जीवन कैसे-कैसे रंगों से रँगा हुआ है? इसके हृदय की रचना किस प्रकार की है? कौन है इसके आत्मीय? किस भूमिका पर विचर रहे हैं इसका मन? इस समय इसकी दृष्टि किन पदार्थों और वस्तुओं का अवलोकन कर रही है? मेरे बारे में इसके मन में किस प्रकार की भावना होगी? यह विवाहित है या कुँवारा? इसके कुटुम्ब में कितने प्राणी हैं? इसका मन क्या सतत निर्मोही रह सकता है? अभिलाषाएँ क्या इसके भी मन में उत्पन्न होती हैं? क्रोध आता है? यह काम, क्रोध, लोभ और मोह के बुदबुदोंवाला संसार इसे कैसा लगता है? मेरा और इसका सम्बन्ध किस हेतु से, किस सत्ता के द्वारा नियोजित हुआ है? इसके सान्निध्य में मेरा मन इतना प्रसन्न क्यों हो उठता है?

रंतिनाथ करीब पौन घण्टे तक ध्यानावस्थित रहा और मार्था उसके बारे में सोचती रही।

'मार्था, मुझे प्यास लगी है।'

मार्था उठी और पानी ले आई।

'अब क्या विचार है मार्था?'

'चलो, किसी लम्बी ड्राइव पर चलें। बताओ, कहाँ चला जाये?'

'ब्राइटन की ओर चलो। हहराते हुए समुद्र से पूछेंगे कि तू किस लिए गरज रहा है? दुःखी है इसलिए या सुखी है इसलिए?'

रात के दस बजे मार्था और रंतिनाथ को लेकर एक कार ब्राइटन की ओर दौड़ी जा रही थी। आकाश के विस्तृत प्रांगण में चन्द्रमा अकेला सो रहा था। मार्था ने अधबीच में गाड़ी रोक दी। शीतल वायु के झोंके आ रहे थे।

'चन्द्रमा आकाश में ही क्यों घूमा करता है?' मार्था ने पूछा।

'इसी लिए कि आकाश को अकेलेपन का बोध न हो।' रंतिनाथ ने उत्तर दिया।

मार्था ने रंतिनाथ के गले में हाथ डालकर उसकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा।

वास्तव में तुम्हें मुझसे नहीं मेरे पैसों से प्रेम है।'

'मार्था, इतनी बेरहम मत बनो। मुझे ताज्जुब है कि तुम ऐसी लगती बातें कहना कब से सीख गई ? कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं तुम्हें सच में चाहता हूँ।'

'अगर मुझे पहिचानकर भी तुम चाहते होते तो कोई बात थी। बताओ तो मुझे पहिचाना भी है ?'

'क्या कहती हो ? मैंने तुम्हें पहिचाना भी नहीं ?'

'आया बड़ा पहिचाननेवाला। चाय पी, चाय। अब कभी मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव मत करना।. मैं विवाह नहीं करना चाहती, आजाद रहना चाहती हूँ और यदि....विवाह किया भी तो तेरे साथ तो हरगिज नहीं करूँगी।'

रोडनी का मुँह जरा-सा निकल आया। चाय की सारी घूँट कड़वी हो गई।

'जैसी तुम्हारी इच्छा ! लेकिन मैं तो तुम्हें प्रेम करता और तुम्हारा मित्र बना रहूँगा।'

'मित्रता ! रोडनी, जान-पहिचान के बिना मित्रता कैसी। ये सब बाहरी और ऊपरी सम्बन्ध हैं; इसे मित्रता नहीं कहा जाता। और चाय लो।'

'तुम्हारा दिमाग़ उस कलूटे की सोहबत में खराब होता जा रहा है। वह कलूटा तुम्हारे घर आ कैसे गया ?'

'कलूटा बड़ा भला आदमी है, महान भी है। और सच तो यह है कि मैं उसे चाहती हूँ। तुम्हारे आफिस में मिलने के दिन से ही मुझे उससे प्रेम हो गया है। और कुछ सुनना चाहते हो ?'

मार्था और रोडनी एक-दूसरे को घूरने लगे।

'उस कलूटे, कंगले, दर-दर के भिखारी से तुम प्रेम करती हो मार्था ? तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं फिर गया है !'

'तुम अपनी गोरी रंगत को शहद लगाकर चाटते रहो। मुझे तो वह कलूटा ही प्यारा है। क्या आज दफ़्तर नहीं जाओगे ?'

'मार्था, अभी तक मैं बेसल को ही अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता था। बेसल की बात जुदी है; लेकिन इस कलूटे से मैं कभी हार नहीं मानूँगा।'

'अब तो समझ में आया कि गोरे होकर भी तुमसे कुछ न हो सका ! सारा गोरापन धरा रह गया !'

दाँत पीसकर 'हत्तेरे कलूटे की' कहता हुआ रोडनी बैठा रहा।

'जाओ, अब समय बर्बाद मत करो। तुम्हारे आफिस का टाइम हो चुका है। और मुझे और उस कलूटे को हमेशा के लिए भूल जाओ।'

रोडनी चला गया। मार्था रंतिनाथ के घर जाने की तैयारी करने लगी। रंतिनाथ के साथ उसने तय किया था कि वह रोज तीन से पाँच बजे तक उसके लेख टाइप करेगी। फिर दोनो चाय पीकर घूमने निकल जायेंगे और बस्ती से दूर किसी एकान्त जगह जाकर बैठेंगे। सात-आठ बजे लौटकर साथ ही खाना खायेंगे और नौ बजे पृथक होंगे।

रंतिनाथ लेख लिखता था, लेकिन छपाता नहीं था। वे लेख न तो निबन्ध की कोटि के होते थे न कहानी, न डायरी होते थे न कविता और न जीवन-चरित्र। वह तो इन साहित्यिक विधाओं के सम्मिश्रण से बना हुआ एक नये ही ढंग का रचना-प्रकार था, जिसमें रंतिनाथ एक पूरी पुस्तक लिख रहा था।

मार्था तैयार होकर जाने ही वाली थी कि बेसल आ पहुँचा। मार्था उसकी ओर अनिच्छापूर्वक देखती हुई बोली—किस लिए आया है?

'मुझे तुमसे काम है मार्था!'

'जो कहना हो जल्दी कह!'

'जरा बैठने तो दे।'

'बैठ जा।'

बेसल ने बैठते ही सिगरेट जलाई।

'मार्था, मुझे सख्त अफसोस है कि मैंने तुमसे झूठ कहा! मैं बड़ी तंगदस्ती में था।'

'वह बात मैं भूल चुकी हूँ।'

'लेकिन मेहरबानी करना और कहीं मुझी को मत भूल जाना।'

'जल्दी बता, तुझे काम क्या है?'

'तुम तो इस तरह बोल रही हो मानो एकदम बदल गई हो। भूल आदमी से ही होती है और वह क्षमा का पात्र भी होता है। इतनी भी क्या नाराजी।'

बेसल को जाल बिछाते देख मार्था ने चिढ़कर कहा—आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?

'यही कि यदि मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य हुआ तो मुझे छोड़ मत देना।'

मार्था ने घूरकर बेसल की ओर देखा और कहा—न तो मैं तुझे पहचानती हूँ और न तू मुझे। ऊपरी सम्बन्धों को मित्रता का नाम देकर हमने एक-दूसरे को ठगा ही है। मुझमें और तुझमें न किसी तरह की समानता है और न मेरी तेरे में कोई दिलचस्पी ही है।

'मुझ पर दया करो मार्था! मेरी भूलों को सुधारो, मेरे जीवन का दीप बनो! मैं प्रार्थना करता हूँ कि....' वह रुक गया।

'बोल-बोल, रुक क्यों गया?'

'तुम मुझे माफ कर दो, मेरी मित्रता को ठुकराओ मत! सहायक बनी हो तो सदा के लिए बनी रहो। मैं तुम्हें जीवन-भर नहीं भूलूँगा।'

'यानी तुझे हमेशा पैसे देती रहूँ यही न?' कहकर मार्था तिरस्कारपूर्वक हँस दी।

'नहीं, नहीं। मैं अपना काम चला लूँगा, मुझे तुम्हारा पैसा नहीं चाहिए। तुम्हारे दो सौ पौंड भी मैं तुम्हें दस दिन के अन्दर लौटा दूँगा। मैं तो यह कहता हूँ कि तुम मेरा जीवन बदलो, मुझे रास्ता दिखाओ, मेरी सच्ची स्वामिनी बनो!'

उसके शब्दों का आशय समझकर मार्था बोली—मुझसे विवाह करने के लिए तुम सब क्यों इतने बेचैन हो रहे हो?

'क्योंकि तुम अद्भुत हो, तुम्हारा व्यक्तित्व प्रभावशाली है, तुम्हारी शान-शौकत, ठाट-बाट निराले हैं और सबसे बड़ी खासियत तो यह है कि तुम्हारा हृदय विशाल है, रस का सागर है और इस बेसल के जीवन का आधार है।'

इतना कहकर उसने मार्था के कन्धे पकड़ लिये और उसे चूमने का प्रयत्न किया। मार्था ने एकदम मुँह फेर लिया और उससे हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगी; लेकिन बेसल ने उसे भुजाओं में कस लिया और उसकी सुकोमल गरदन पर चुम्बनों की झड़ी लगा दी।

'तुम मेरे जीवन का आधार हो, तुम मेरे प्राणों का प्राण हो, तुम....'

'मतलब समझे बिना शब्दों का उपयोग क्यों करता है बेसल? मुझे तेरे चुम्बन, तेरा प्यार, तेरी भुजाओं का बन्धन, तेरे शब्द—सब बर्फ की तरह ठंडे और अर्थ-हीन लगते हैं। मुझे तुझसे अरुचि हो गई है। तू यहाँ से चला जा और अब कभी बिना पूछे घर में पैर रखा तो मुझसे बुरा कोई न होगा। निकल जा यहाँ से।'

इतना कहकर उसने झटके से अपने को बाहुपाश से छुड़ाया और क्रोध तथा

घृणा से काँपती हुई दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो गई।

'निकल बाहर!' डपटकर उसने कहा।

बेसल धीरे-धीरे दरवाजे के पास आया और मार्था का गाल सुहलाकर हँसने लगा।

'किसी और को ढूँढ़ लिया है क्यों? शायद मुझसे अधिक गरमागरम है। अच्छी बात है, मौज करो! कोई यादगार तो दो जानेमन....' कहकर उसने मार्था की हीरे की अँगूठी की ओर संकेत किया।

'दुष्ट! मुझे तेरे ऊपर दया आती है। ले जा और यहाँ से मुँह काला कर! तेरी दुष्ट दृष्टि इस पर पड़ी है तो अब मैं इसे नहीं रखूँगी।'

यह कहकर मार्था ने अँगूठी निकालकर फेंक दी और जोर से दरवाजा बन्द कर लिया।

अन्दर आकर वह धम्-से सोफे पर गिर गई और फूट-फूटकर रोने लगी। अपने भूतकाल का स्मरण करके वह काँप उठी। बेसल के स्पर्श से उसे ग्लानि हुई और रंतिनाथ आँखों के आगे आ खड़ा हुआ। उसका हृदय भर आया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। जब वह रो रही थी तभी रंतिनाथ ने अचानक प्रवेश किया। उसे देखते ही मार्था दौड़कर उसके लिपट गई।

'तुम कहाँ से नाथ?' रोते-रोते वह बोली।

'रोती क्यों हो?'

मार्था ने कोई उत्तर नहीं दिया। तीन-चार सिसकियाँ भरकर उसने रंतिनाथ की छाती पर अपना सिर रख दिया।

'मैं अकेली हूँ, नाथ, बिलकुल अकेली! मुझे अपने साथ ही रखो। इस समय कैसे चले आये?'

'ऑक्सफोर्ड जा रहा हूँ; सोचा तुमसे कह दूँ जिसमें तुम्हें व्यर्थ चक्कर न लगाना पड़े। वहाँ चार-पाँच दिन रहने का विचार है।'

'मैं भी साथ चलूँगी; अकेली रहना नहीं चाहती।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

कुछ ही देर में दोनो ऑक्सफोर्ड के लिए रवाना हुए। मार्था बड़ी प्रसन्न थी।

१६ : मंडली जमने लगी

जैसे-जैसे दिन बीतते गये मार्था और रंतिनाथ का सम्बन्ध दृढ़तर होता गया। मार्था अपने जीवन में सादगी को अपनाती जा रही थी। बर्कले स्क्वैअर वाली विशाल अट्टालिका उसने किराये पर उठा दी और स्वयं नाइट्स् ब्रिज के निकट एक सस्ते मकान में रहने चली आई। अपव्यय के रुकते ही पैसा पुनः धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

'यह धन मेरा है, इस ममत्व को छोड़ दो। भले ही वह संचित होता रहे। समय आने पर तुम अच्छी तरह उसका उपयोग कर सकोगी। पैसे के बिना भी काम चलाया जा सकता है, ऐसा विश्वास मन में उत्पन्न करो।'

इस प्रकार रंतिनाथ उसे बार-बार समझाता रहता था। वह स्वयं भी कई दिन दूध, रोटी, मूँगफली और चाय पर ही गुजार देता था। इसमें मार्था भी उसका साथ देने लगी।

उसके पास दो मोटरें थीं; उसने उनमें से एक मोटर बेच दी।

'इन आभूषणों से तुम्हारी शोभा है या तुमसे इन आभूषणों की?' एक दिन रंतिनाथ ने मार्था से पूछा। मार्था स्नेहपूर्वक सुनती रही।

'गहना एक बोझ है और बोझ उठानेवाले को स्वतन्त्रता कम ही मिलती है। गहनों में तड़क-भड़क तो होती है, लेकिन सौन्दर्य कदापि नहीं होता। गहने बेच-कर नकद पैसा कर लो और उस पैसे को पड़ा रहने दो।'

मार्था ने रंतिनाथ की सूचनानुसार गहने बेच डाले और जो पैसा मिला उसे सरकारी लोन में लगा दिया।

'सौन्दर्य निर्भर करता है रक्त के संचरण और शरीर के स्वास्थ्य पर; लिप-स्टिक, रुज अथवा पाउडर पर नहीं।'

और मार्था ने दूसरे ही दिन से लिपस्टिक और पाउडर लगाना छोड़ दिया।

'आत्मा की पहिचान एकान्त में होती है और हृदय की आवाज़ मौन रहने पर सुनाई देती है।'

मार्था प्रतिदिन दो घण्टे एकान्त में बिताने और एक घण्टे तक मौन रहने लगी।

'परमेश्वर एक था, वही स्त्री और पुरुष के रूप में विभक्त हुआ। पुरुष और

स्त्री की विलगता संसार और दोनो की एकता मोक्ष है।'

मार्था रंतिनाथ के साथ ही रहने और सायुज्य की साधना करने लगी। वह सहचार ईश्वर से मिलने के लिए था, उससे विलग होने के लिए नहीं।

धीरे-धीरे मार्था में शान्ति, तृप्ति और दीप्ति का आविर्भाव हुआ। उसके मुँह पर प्रसन्नता दमकने लगी। रंतिनाथ उसकी प्रीति का आधार बना और साथ ही आत्मरति का प्रकाश भी।

उसके साथ वह हँसने, खेलने और सात्विक आनन्द का उपभोग करने लगी। वह उसके लिए भोजन बनाती, उसके मोजे और रूमाल धो देती, जूतों पर पालिश करती, बिस्तर बिछाती, और कपड़ों पर ब्रश करती। उसकी टाई बाँधती और खोलती भी थी। उसके लेखों को टाइप करती और उसे पुस्तकें पढ़कर सुनाती भी थी, क्योंकि रंतिनाथ पढ़ने के मामले में बड़ा आलसी था। वह उससे बातें करती, गप्पें मारती और मोटर में घुमाने ले जाती। तात्पर्य यह कि वह सदैव उसकी सेवा में तत्पर रहने लगी।

मार्था के और भी कई मित्र रंतिनाथ के सम्पर्क में आये और उसका सम्मान करने लगे। यहाँ तक कि रोडनी भी इस 'कलूटे' को श्रद्धा-भाव से देखने लगा। धीरे-धीरे रंतिनाथ के आसपास एक अच्छी-खासी मंडली जमा हो गई। एक मंडल की स्थापना हुई और रंतिनाथ के विचार ब्रिटेन के समाज में प्रचारित होने लगे। मार्था उस मंडल की मुख्य संचालिका बनी और उसके नाइट्स् ब्रिजवाले मकान में प्रति सप्ताह मंडल की बैठक होने लगी।

बैठकों के लिए अर्द्धरात्रि का समय निर्धारित किया गया था और रंतिनाथ किसी-किसी को एकान्त में जीवन-तत्व के सूक्ष्म रहस्यों को समझता था।

रंतिनाथ का बाह्य जीवन तो पूर्ववत ही बना रहा, क्योंकि उपदेशक या गुरु बनने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं थी। वही कमरा, वही व्यवसाय और वैसा ही रहन-सहन—सब-कुछ पूर्ववत ही था। पुस्तकें बेचकर और कभी-कभी गुमनाम से कोई गूढ़ रहस्यात्मक पुस्तक छपवाकर वह अपनी गुजर-बसर कर लेता था। कभी किसी से आर्थिक सहायता न लेने की उसकी प्रतिज्ञा निभे जा रही थी। फटे कपड़े पहिनता, पैसों की अधिक तंगी होने पर कभी-कभी सिर्फ मूँगफली खाकर ही चला लेता, लेकिन किसी की भेंट स्वीकार नहीं करता था। बहुत वर्ष पहले जब वह भयं-

कर अर्थ-संकट में था तो उसने अखबार बेचे थे; और ईस्टबोर्न, ब्राइटन, बोर्नमथ आदि समुद्र किनारे के कस्बों तथा लन्दन शहर में घूमकर बूट-पालिश भी कर चुका था। दो-तीन बार तो उसे अपना ओवरकोट भी गिरवी रखकर काम चलाना पड़ा था।

वह कौन है और कहाँ का रहनेवाला है, यह उसने कभी किसी को नहीं बतलाया। वह किसी से अधिक बातचीत भी नहीं करता था। कभी-कभी तो वह घण्टों अकेला बैठा विचारों में डूबा रहता था। लन्दन में कई वर्षों तक रहने पर भी उसका कोई मित्र नहीं था। तीन-चार दुकानदार और कुछ अखबार बेचनेवाले जरूर उसे पहिचानते और उसे धुन का पक्का या विचित्र आदमी कहकर सम्बोधित करते थे। फल बेचनेवाली बारबरा-उससे बहुत स्नेह करती थी। लन्दन में भटकनेवाली दो-चार वेश्याएँ भी उसे मस्तमौला के रूप में जानती थीं; लेकिन वेश्याओं के साथ उसका परिचय उनके व्यवसाय को लेकर नहीं, जूता साफ करनेवाले मजदूर के रूप में ही था। कई बार उसने आधी रात के समय कुछ भूखी और कंगाल वेश्याओं के बूट मुफ्त ही पालिश नहीं किये, उन्हें अपनी गिरह से चाय-रोटी भी खिलाई थी। जब कभी वे वेश्याएँ मिल जातीं तो स्नेह से उसकी ओर देखती हुई कहती थीं—तू सुन्दर है, हट्टा-कट्टा है, फिर इतनी मुफलिसी में दिन क्यों बिताता है ? हमारा दलाल क्यों नहीं बन जाता, खूब पैसे मिलेंगे।

'पैसों को मैं क्या करूँगा ? मेरा खर्च ही कितना है ? और तुम्हारा दलाली से तो यही धन्धा अच्छा।' कहकर वह बूट साफ करने लगता।

'बिलकुल बुद्धू है !' वेश्याएँ कहतीं।

'ज्यादा अक्लमन्द होकर भी क्या करूँगा ?' रतिनाथ हँसकर उन्हीं से पूछता। वेश्याएँ उसे चक्रम समझकर सिर पर गोल-गोल उँगली घुमाती हुई चली जाती थीं।

अपने उन दिनों की बात जब वह हँस-हँसकर मार्था को सुनाता तो वह उत्सुक होकर पूछती—तुम कभी किसी स्त्री की ओर आकर्षित हुए हो ?

'मैं तो सभी स्त्रियों की ओर आकर्षित होता हूँ।'

'ऐसा उड़ता जवाब मत दो, साफ-साफ बताओ।'

'सच ही कह रहा हूँ मार्था !'

'तो सच बताओ, तुमने कितनी स्त्रियों के साथ रमण किया है ?'

'रमण क्या होता है इसे मैं जानता नहीं और न मैंने कभी गिनती की है।'

'तुम शौकीन तो हो ही।'

'तुम्हें दिखता है तो हूँगा ही।

रंतिनाथ एक पुस्तक लिख रहा था जिसे उसने अब तक मार्था को नहीं दिखाया था।

'कौन-सी पुस्तक है यह ? लाओ, टाइप कर दूँ।'

'अभी नहीं।'

'लाओ, मुझे दो, मैं पढ़ना चाहती हूँ।'

'दूँगा, लेकिन फिर कभी।'

'इसमें ऐसा क्या है जो छिपाते हो ?'

'समय आने पर मालूम हो जायेगा।'

यह उत्तर सुनकर वह चुप हो जाती थी, लेकिन उसकी जिज्ञासा कम नहीं होती थी। रोज लिखने के बाद उस पांडुलिपि को अपने हाथ से पेटी में रखकर रंतिनाथ ताला लगा देता था।

मंडल बढ़ता गया। मार्था उस मंडल का प्राण थी और रंतिनाथ आत्मा।

रंतिनाथ के लेख यूरोप के गूढ़ मंडलों में पढ़े जाते और उन पर चर्चाएँ भी होती थीं। यूरोप के कई शहरों में ऐसे मंडलों की स्थापना हुई और मार्था, रोडनी, जेकब, बारबरा आदि वहाँ प्रचार के लिए जाने लगे। रंतिनाथ स्वयं कभी नहीं जाता था। पेरिस, बर्लिन, वियना, मैड्रिड, ब्रुसेल्स, रोम, हेग, स्टॉकहोम इत्यादि शहरों के गूढ़ मंडलों के सदस्य समय-समय पर रंतिनाथ से मिलने के लिए लन्दन आते रहते थे। कोई आवश्यक सन्देश होता तो मार्था स्वयं उन स्थानों पर जाती और रंतिनाथ के कहे हुए गूढ़ शब्दों को अपने मुँह से कहकर सुनाती थी। कई बातें ऐसी होती थीं जिन्हें वह स्वयं भी नहीं समझ पाती थी, लेकिन जो सदस्य काफी आगे बढ़े हुए होते थे वे सरलता से उसके शब्दों का मर्म समझ लेते थे।

ऐसा ही एक सन्देश रंतिनाथ ने पेरिस के गूढ़ मंडलों को भेजा था, जिसे पहुँचाकर मार्था हाल में ही वहाँ से लौटी थी। संदेश क्या था, इसकी मार्था को भी पूरी जानकारी नहीं थी। सन्देश पहुँचा देने के बाद जब वह रंतिनाथ के पत्र की प्रतीक्षा करते-करते थक गई तो लौट आई।

'न जाने क्यों ?'

इतना कहकर वह चुप हो गई और उसका चेहरा लटक गया।

'जाना चाहिए।'

'लेकिन आपने ही तो कहा था कि युद्ध होगा। और यदि युद्ध हुआ तो मेरे पति को उसमें सम्मिलित होना पड़ेगा और [illegible]। इस सबकी अपेक्षा तो न जाना ही अच्छा।'

टोस्ट चबाता हुआ रंतिनाथ उसे देखता रहा। आइलीन ने उसके प्याले में काफी उड़ेली।

'आइलीन, इस तरह मत सोचो, चली जाओ।'

आइलीन रंतिनाथ का आशय समझ न सकी। वह उसकी ओर देखती रही। फिर बोली—तो तुम मुझे दूर करना चाहते हो, क्यों ?

रंतिनाथ ने उत्तर दिये बिना काफी का घूँट लिया।

'मुझे भी सेवा करना आता है। यद्यपि हो सकता है कि मार्था की भाँति अच्छी तरह न कर सकूँ।'

उसके शब्दों का तीक्ष्ण व्यंग्य रंतिनाथ से छिपा न रह सका। वह बोला—क्या इसी लिए नहीं जाना चाहतीं ?

और रंतिनाथ खड़ा होकर आइलीन के सिर पर हाथ फेरने लगा।

आइलीन की आँखों में ओस-बिन्दु-जैसे दो-चार आँसू झलमला उठे।

'तो न जाओ।' उसने सान्त्वना दी।

आइलीन रो पड़ी।

'जाने के सिवा चारा ही क्या है! मेरे पति ने पत्रों और तारों की झड़ी लगा दी है। हे भगवान! मैंने विवाह ही क्यों किया!' रोते-रोते उसने कहा।

'तुम व्यर्थ रोती हो आइलीन! मनुष्यों के सम्बन्ध निर्मित होते हैं। तुम्हें जाना चाहिए। हमारी मित्रता तो फिर भी बनी रहेगी।'

'लेकिन मैं तुमसे दूर नहीं रह सकती; तुम्हारे बिना मेरा जीवन सूना हो जायेगा।'

'प्रेम उत्तम वस्तु है और राग अधम। राग मनुष्य को पराधीन और दुःखी करता है। तुम राग के वश न होओ आइलीन!'

'मैं तो तुम्हारे वश में हूँ और किसी के वश में नहीं।' ऐसा कहकर उसने

रतिनाथ का हाथ पकड़ लिया।

'नहीं, तुम राग के वश में हो।' आइलीन का हाथ सहलाते हुए रतिनाथ कहा।

'नार्था किसके वश में है?'

'पहले वह भी राग के वश में थी, उत्कट रूप से थी; अब प्रेम के वश में रही है।'

'हो सकता है; तुम्हारे मन तो उसकी आत्मा मुझसे ऊँची होगी ही।'

'नहीं, नहीं; आत्मा तो सभी समान हैं। तुम अभी युवती हो। राग यौवन प्रकृति है, विकृति नहीं। फिर राग अनुभव का द्वार भी है और अनुभव के बि आत्मज्ञान कदापि नहीं होता।'

'यदि राग के सम्बन्ध में आपका यही मन्तव्य है तो मुझे प्रकृति के विरु जूझने को न कहें।'

'प्रकृति के विरुद्ध जूझने को कहाँ कहता हूँ; कहता हूँ सिर्फ नियोजन करने लिए।'

'रतिनाथ, यह कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता। मैं शरीर, मन और आत्म को एक-दूसरे से पृथक् नहीं मानती। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—तुम्हें अर्थात् तुम्हा शरीर, मन और आत्मा तीनों को।'

'करो, जरूर करो; जब तक थक नहीं जाओ तब तक करो। मैं तो प्रौढ़ हूँ, दू वर्ष बाद वृद्ध हो जाऊँगा; मेरा शरीर प्यार करने योग्य नहीं रहेगा। उस समय तो तुम्हें अपनी फिलासफी बदलनी पड़ेगी या दूसरा कोई शरीर ढूँढ़ना होगा। प्या करो, जरूर करो; लेकिन जो वस्तु स्थिर है, स्थायी है, शाश्वत है उसे प्यार करो अन्यथा मत करो।'

रतिनाथ के नेत्रों की स्थिर ज्योति और शब्दों की प्रभविष्णुता में वह ली होती गई। उसने उसके शब्दों को समझने का प्रयत्न किया, किन्तु समझने प भी उसका समाधान नहीं हुआ। उसके हृदय में राग की आँधी उठ रही थी; उसव नस-नस में यौवन का ज्वार थिरक रहा था। उसने रतिनाथ के गले में हाथ डाल और राग-विराग, आत्मा-परमात्मा, मन-शरीर, इन सबके पृथक्करण की चिन्त छोड़ उसे जोर से चूम लिया।

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और इससे अधिक कुछ जानना नहीं चाहती।'

और रंतिनाथ ने उसे अधिक कुछ बतलाया भी नहीं, उसके यौवन का अधिकार भी नहीं छीना, किन्तु उसकी रागान्धता को देखता रहा—किनारे पर बैठे हुए तटस्थ प्रेक्षक की भाँति।

जब वह थक गई तब पृथक् हुई और स्नेह तथा सन्तोष से कुछ मिनटों तक उसकी ओर देखती रही।

घड़ी में तीन बज रहे थे। घड़ी की सुइयों को देखकर उसके हृदय में विषाद की सुई घूमने लगी; उसे वियोग की वह्नि जलाने लगी; उसकी आँखों में निराशा की छाया उतरने लगी।

'मुझे जाने की इच्छा नहीं होती।'

'तो मत जाओ।'

रंतिनाथ के शब्द सुनकर वह असमंजस में पड़ गई।

'लेकिन मुझे जाना तो होगा ही।'

'तुम जाने और न जाने के लिए स्वतंत्र हो, जब मन में इस तरह के निश्चय का उदय होगा, तभी आनन्द के अरुणोदय का अनुभव कर सकोगी।'

'मैं जाऊँगी और देखूँगी कि तुम्हें कहाँ तक भूल सकती हूँ; देखूँगी कि मेरे सुख में कितनी न्यूनाधिकता होती है। लेकिन....'

'लेकिन क्या?' रंतिनाथ ने पूछा।

'मैं हिन्दुस्तान जाऊँ? वहाँ तुम्हारे बिना....नहीं, नहीं, मैं हिन्दुस्तान कदापि नहीं जाऊँगी।'

'लेकिन मान लो कि तुम नहीं गई और मैं ही वहाँ चला गया तब क्या करोगी?'

'तब तो मैं दौड़ी चली आऊँगी।'

'इसका यही अर्थ हुआ कि तुम अपने कार्य में स्वतंत्र नहीं हो।'

आइलीन सकपका गई। उसने आवेशपूर्वक कहा—नहीं, मैं स्वतंत्र हूँ; स्वतंत्र हूँ तुम्हें प्यार करने के लिए, तुम्हारे साथ रहने के लिए।'

'नहीं, जहाँ वृत्ति पर अंकुश नहीं है वहाँ स्वतंत्रता कभी नहीं होती—पराधीनता ही होती है।'

'लेकिन यह वृत्ति तो मेरी अपनी वस्तु है।'

'नहीं, वृत्ति तुम्हारी गुलाम नहीं, तुम्हीं वृत्ति की गुलाम हो। पराधीनता को स्वतंत्रता समझ बैठना भ्रान्ति है; और सारा मानव-समुदाय ही इस भ्रान्ति में उलझा रहता है।'

जिस तरह बिजली चमकती है उसी तरह आइलीन के हृदय में ज्ञान का आलोक हुआ और उसके प्रकाश में उसे अपनी वास्तविक स्थिति का भान हुआ। उसने पाया कि आशा और निराशा की कठोर शृङ्खलाओं में जकड़े और छटपटाते रहने पर भी वह व्यर्थ ही अपने को स्वतंत्र मान रही थी। उसे यह भी प्रतीत हुआ कि उसने आज तक इस व्यक्ति के यथार्थ स्वरूप को नहीं जाना; जो मात्र बाह्य था, उसी को सच माने बैठी रही।

'अब मैं जाती हूँ। दो-तीन दिन में बिस्तर-बोरिया बाँधकर हिन्दुस्तान जाने के लिए यहाँ आ जाऊँगी। क्या आपके खयाल में सच ही मुझे जाना चाहिए?'

'जरूर।'

'लेकिन क्या फिर कभी हम मिल पायेंगे?'

'जरूर मिलेंगे।'

'मुझे तो सन्देह है।'

'लेकिन मुझे जरा भी सन्देह नहीं।'

'कब मिलेंगे?'

'शीघ्र ही।'

'क्या मैं इतनी जल्दी लौट आऊँगी?'

'नहीं, अब हमारी भेंट हिन्दुस्तान में होगी।'

उत्तर सुनकर आइलीन का मन खुशी से नाच उठा; वह बोली—ओह, कितना अच्छा! लेकिन क्या आप निश्चित रूप से कह रहे हैं?

'बिलकुल निश्चित रूप से।'

'क्या आप रानीखेत आयेंगे?'

'कहाँ मिलेंगे यह तो नहीं कह सकता, लेकिन इतना विश्वास रखना कि मिलेंगे अवश्य।'

आइलीन के मुँह पर आनन्द की रेखाएँ उभर आईं। उसके हृदय में आशा का सूर्य उदित हुआ। जाते समय उसके मुँह पर विषाद नहीं, प्रसन्नता थी।

'स्टेशन चलेंगे ?' उसने रंतिनाथ से पूछा।

'हाँ-हाँ, चलो।'

स्टेशन पहुँचकर दोनो ने चाय पी और आइलीन हँसते-हँसते इप्स्विच की ट्रेन में बैठ गई।

'पत्र लिखना; मैं स्टेशन पर लेने आऊँगा।'

'जरूर, और तुम्हारी कही हुई सारी बातें याद रखूँगी।'

रंतिनाथ ने अपना हाथ उसके हाथ में दिया जिसे उसने जोर से प्रेमपूर्वक दबाया। ट्रेन चल दी और दोनो ने अपने-अपने हाथ ऊपर उठाये।

१८ : अपरिचित युगल

सूर्यास्त होने में अभी देर थी, फिर भी गहरा अँधेरा छा गया था। विक्टोरिया स्टेशन से निकलकर रंतिनाथ हॉबर्न की ओर जानेवाली बस की कतार में खड़ा हो गया। लोगों की चहल-पहल देखता और अखबार बेचनेवालों की आवाजें सुनता हुआ वह बस की प्रतीक्षा कर रहा था। ठसाठस भरी हुई बसें एक के बाद एक चली आ रही थीं, लेकिन उसकी बस का अभी तक पता नहीं था। कतार बढ़ती जा रही थी।

इतने में एक टैक्सी उसके सामने से गुजरी, जिसमें एक महिला और पुरुष बैठे थे। दोनो प्रौढ़ थे और उनकी वेशभूषा सुन्दर तथा आधुनिक ढंग की थी। महिला जरी की रेशमी साड़ी पहिने थी। सिर पर जाली, हाथों में सफेद दस्ताने और मस्तक पर कुंकुम की बिन्दी थी। उसका रंग गोरा और नेत्र सुन्दर थे। होठों पर हलके रंग का लिपस्टिक और आँखों में काजल भी था। पुरुष की उम्र स्त्री के लगभग ही होगी। वह शानदार इवनिंग ड्रेस में था। उसका शरीर भी सुडौल, हृष्ट-पुष्ट और चेहरा रोबदार था।

सहसा महिला की नजर बस की कतार की ओर उठ गई और उसने रंतिनाथ को देखा। देखते ही उसका मुँह आश्चर्य के मारे खुल गया और आँखें कपाल में चढ़ गईं। अपने समीप बैठे हुए पुरुष का हाथ पकड़कर उसने ड्राइवर को हुक्म दिया—जरा रोको तो ड्राइवर।

ड्राइवर ने गाड़ी को धीमा कर सड़क के एक ओर खड़ा कर दिया।

'जरा उस कतार की ओर तो देखो, जल्दी, जल्दी !' उसने पुरुष से कहा।

पुरुष ने उस ओर देखा, लेकिन उसकी समझ में कुछ न आया।

'बीचोंबीच, देखो, ठीक बीच में।'

अब पुरुष को भी रंतिनाथ दिखाई दे गया और वह आश्चर्य से उसकी ओर देखता रह गया।

इतने में रंतिनाथ की बस आ गई और वह उसमें चढ़ गया। और बस चल दी।

'वही हैं। तुमने खूब देखा !'

'ड्राइवर, टैक्सी से उस बस का पीछा करो।' महिला ने आदेश दिया।

ड्राइवर ने गाड़ी बस के पीछे लगा दी। हाइड पार्क के कोने पर शायद बस रुके, ऐसा सोचकर उसने टैक्सी की गति धीमी कर दी, लेकिन बस भरी हुई थी इसलिए रुकी नहीं और तेजी से पार्क लेन की ओर मुड़ गई। उस बस और इस टैक्सी के बीच एक दूसरी बस आ खड़ी हुई, इसलिए ड्राइवर ने अपनी गाड़ी साइड से निकालने की कोशिश की, लेकिन उधर सामने से दो-तीन बसें और कुछ टैक्सियाँ आ रही थीं, इसलिए इसकी ग़ति एकदम धीमी हो गई।

'जल्दी ड्राइवर, जल्दी !'

मार्ग पाते ही ड्राइवर फिर टैक्सी दौड़ाने लगा। बस भी पूरी रफ्तार से भाग रही थी और दोनों के बीच का फासला भी कुछ बढ़ गया था। लेकिन स्त्री-पुरुष की नजर बस पर ही थी। हठात् मार्बल आर्च के मोड़ पर उन्हें लाल बत्ती ने रोक दिया। बस बत्ती के उस पार पहुँचकर खड़ी हो गई थी। इतने में क्रास करती हुई चार-पाँच बसों ने रंतिनाथ की बस को ओट में ले लिया; लेकिन जैसी ही हरी बत्ती हुई टैक्सी पुनः उस बस के समीप पहुँच गई।

देर हो जाने के कारण रंतिनाथ वहीं उतर गया था और मार्बल आर्च ट्यूब स्टेशन में घुस ही रहा था कि स्त्री की नजर फिर उस पर पड़ गई।

'तुम जल्दी उतरकर उसका पीछा करो।'

पुरुष उतर गया और महिला ने ड्राइवर को पास की गली में टैक्सी खड़ी करने का आदेश दिया।

हॉबर्न का टिकट लेकर रंतिनाथ एस्केलेटर पर जा खड़ा हुआ। एस्केलेटर

सर्र्र् करता हुआ उतरने लगा। उसके बाद वह पुरुष भी उतरा; लेकिन तब तक रंतिनाथ प्लेटफार्म पर पहुँच गया और गाड़ी भी आ पहुँची थी। उस पुरुष ने रंतिनाथ को डिब्बे में चढ़ते हुए देखा और दौड़ा, लेकिन इतने में गाड़ी चल दी और डिब्बा आगे निकल गया। वह किसी तरह दौड़ता हुआ दूसरे डिब्बे में बैठ सका। बाएड स्ट्रीट स्टेशन आया, लेकिन रंतिनाथ वहाँ उतरता दिखाई नहीं दिया। आक्सफोर्ड सर्कस, टाटनहाम कोर्ट रोड भी निकल गये। हॉबर्न आया और रंतिनाथ उतरा। वह पुरुष भी उतर गया और रंतिनाथ के पीछे-पीछे चलने लगा। भीड़ बहुत थी और रंतिनाथ तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा था। दोनों के बीच करीब सौ क़दम की दूरी थी। पुरुष काफी तेजी से चल रहा था। उसकी दृष्टि रंतिनाथ पर लगी हुई थी। सहसा रंतिनाथ मुड़ा और अदृश्य हो गया। उस आदमी ने कदम और भी तेज़ किये। गलियारे के बाहर आकर देखा तो रंतिनाथ एस्केलेटर पर खड़ा ऊपर आधी दूर तक पहुँच चुका था। एस्केलेटर से उतरकर वह स्टेशन के बाहर निकल गया। जब वह आदमी एस्केलेटर से ऊपर पहुँचा तो रंतिनाथ स्टेशन के बाहर रास्ता पार करके सामने की ओर बढ़ा जा रहा था। उस आदमी ने रंतिनाथ को देखकर अपनी चाल बढ़ा दी, लेकिन सौ क़दम का फ़ासला अब करीब सवा सौ कदम हो गया था और उधर रंतिनाथ भी तेज़-तेज़ चल रहा था। वह आदमी अपने पूरे वेग से रंतिनाथ का पीछा करता रहा। उसकी दृष्टि रंतिनाथ पर बराबर लगी हुई थी। जिन-जिन मोड़ों पर रंतिनाथ मुड़ता उन्हें याद रखकर वह बराबर उसका पीछा करता रहा। भीड़ बहुत थी और उस आदमी को डर था कि अगर किसी से टकरा गया तो जिसका पीछा कर रहा है वह आँखों से ओझल हो जायेगा, इसलिए वह बहुत सँभल-सँभलकर चल रहा था।

आखिर रंतिनाथ अपनी गली में घुसा और मकान के आगे जा पहुँचा। 'लैच-की' से दरवाज़ा खोल अन्दर जाकर उसने उसे पुनः बन्द कर लिया। जब वह आदमी गली के नुक्कड़ पर पहुँचा तो रंतिनाथ का दरवाज़ा बन्द हो चुका था। पीछा करनेवाले की गति यहाँ तक आकर रुक गई; वह ठिठक गया और टकटकी बाँधकर देखने लगा।

अन्त में वह हताश हो गया। अपना परिश्रम उसे व्यर्थ जाता प्रतीत हुआ। गली के बीस-पच्चीस मकानों में से वह किस मकान में गया है, इसका पता पाना

कठिन ही नहीं, असम्भव था। उसने गली देख ली, नाम नोट कर लिया और वापस मार्बल आर्च पहुँच गया।

वह महिला वहीं टैक्सी में बैठी उसकी प्रतिक्षा कर रही थी।

'क्यों, कुछ पता चला?'

'चला भी, और नहीं भी!'

'साफ-साफ बताइए; मैं तो जानने के लिए मरी जा रही हूँ।'

'मेरे तो पाँव थक गये। क्या बतलाऊँ, कितना चलना पड़ा।'

'पूरा हाल विस्तारपूर्वक बताइए।'

'हॉबर्न तक ट्रेन में गया। वह आगे-आगे और मैं उनके पीछे। ओह, कितनी तेज़ी से चलते हैं! अन्त तक बराबर सौ क़दम का फ़ासला बना रहा। फिर वह एक गली में गुम हो गये! गली का नाम-पता नोट करके मैं लौट आया।'

महिला ने एक लम्बी साँस ली और बोली—चलिए, अब होटल में चलकर विचार किया जाये। ड्राइवर, सेवॉय चलो।

ड्राइवर गाड़ी को सेवॉय की ओर ले चला। अन्धकार छा गया था। स्त्री और पुरुष अपने-अपने विचारों में मग्न चुप बैठे थे।

सेवॉय होटल के सामने आकर टैक्सी रुक गई और दरबान ने सलाम करके दरवाज़ा खोला।

'आज का मौसम बहुत खराब है, मैडम!'

'हाँ।' संक्षिप्त उत्तर देकर महिला ने होटल में प्रवेश किया। पुरुष उसके पीछे-पीछे चल रहा था।

होटल सेवॉय के लाउंज में पहुँचकर दोनो आराम से बैठ गये और पुरुष ने अपनी सिगरेट जलाई।

'कई वर्षों के बाद!' महिला ने नेत्र बन्द करके कहा।

'हाँ, कई वर्षों के बाद!' सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए पुरुष ने प्रत्युत्तर दिया।

'कभी स्वप्न में भी सोचा था कि भेंट होगी!'

'नहीं, कभी नहीं।'

'अब क्या करना चाहिए?'

'खाना खाकर उस गली में चलें। किसी से पूछ-ताछ करें और कुछ देर नुक्कड़ पर खड़े रहकर प्रतीक्षा करें ।'

'लेकिन क्या भरोसा कि वह वहाँ रहते ही हैं ! हो सकता है किसी से मिलने गये हों । मेरी समझ में तो पता लगना मुश्किल ही है ।'

इतना कहकर महिला ने एक लम्बी साँस ली ।

पुरुष ने भी सिगरेट का ठूँठा ट्रे में दबा दिया ।

'खाना खाकर वहाँ चलें तो सही, शायद पता लग भी जाये ।'

'चलिए, मुझे आशा तो नहीं है। आप भी बड़े सुस्त आदमी निकले । ऐसे समय जरा दौड़ना या आवाज़ तो लगानी ही चाहिए थी ।'

'तुम तो बिना समझे-बूझे जबान चला देती हो । और मैं बेचारे पाँवों से बैर निकालता रहा । फिर यह हिन्दुस्तान तो है नहीं कि किसी के पीछे चिल्लाते हुए भागा जाये ।'

दोनो भोजन के कमरे में पहुँचे । सुन्दर-मधुर स्वर में आरकेस्ट्रा बज रहा था और फैशन पुरबहार पर था । नये काट के फ्राकों तथा रंग-बिरंगी साड़ियों में सजी हुई युवतियाँ तथा आद्यतन इवनिंग ड्रेस में जर्क-बर्क पुरुष डान्स कर रहे थे । एक-से-एक आला दर्जे के ड्यूक, लार्ड और ज़मींदार, अमेरिका के बड़े-बड़े रईस और हिन्दुस्तान के राजा-महाराजा वहाँ जमा थे । प्रत्येक की बगल में अपनी, पराई अथवा जो कभी किसी की न हो ऐसी सुन्दरियाँ बैठी थीं । वहाँ लाखों डालरों और हजारों पौंड के सौदे हो रहे थे । शेर और चीते के शिकार तथा पोलो की विशेषताओं के वर्णन किये जा रहे थे । राजदूत और हाई-कमिश्नर भी वहाँ उपस्थित थे । सत्ता और वैभव के साथ-साथ विलास भी तरंगित हो रहा था । वेटर सफेद इस्तरीबन्द कपड़ों में इधर-उधर घूम रहे थे। स्टुआर्ड शराब को पूछते फिर रहे थे। ललिताङ्गनाएँ हँसती, मचलती, इठलाती सिगार और सिगरेट के बारे में पूछकर बल खाती हुई निकल जाती थीं । गायिका का मधुर स्वर वातावरण में गूँज रहा था। खाने की मेजों पर काँच के रंगीन गुलदस्ते सजे हुए थे और चाँदी के चम्मच, छुरी-काँटे चमचमा रहे थे । कीमती प्यालियाँ शराब की प्रतीक्षा कर रही थीं और कलात्मक झूमरों से छनकर आता हुआ बिजली का प्रकाश कमरे में बिछे ईरानी कालीन की शोभा बढ़ा रहा था ।

वहाँ आकर देखनेवाले को यही लगता कि ग़रीबी भ्रान्ति है और वैभव ही सत्य है।

उन दोनो ने खाना मँगवाया। सूप पीकर वे नाचने के लिए उठ खड़े हुए। संगीत के स्वर वातावरण में मादकता का संचार कर रहे थे। आरकेस्ट्रा के आगे खड़ी एक सुन्दरी गा रही थी :

'मय भी हूँ और जाम भी हूँ,
हुस्न भी हूँ और हसीना भी;
जज़्बए उल्फ़त भी मैं हूँ,
और उल्फ़त की तमन्ना भी।'

अन्तिम पंक्ति गाने के बाद वह अंगों को इस तरह हिलाती-डुलाती कि देखते ही थके-हारे व्यापारियों की थकावट उड़ जाती थी। राजा-नवाब वैद्य-हकीमों की भस्मों और कुश्तों के प्रभाव से उन्मत्त उस गीत में न जाने कितने अर्थों को खोज निकालते और अपने लड़खड़ाते पैरों से नाचने के लिए उठते और तत्काल ही बैठ भी जाते थे।

नृत्योपरान्त दोनो ने भोजन किया और तब उठ खड़े हुए। परिचित व्यक्ति उन्हें नमस्कार करते जाते थे और वे उन्हें। बाहर आकर महिला ने टैक्सी मँगवाई और दोनो उसमें बैठ गये।

'ड्राइवर', हॉबर्न की ओर चलो। पुरुष ने हुक्म दिया। स्ट्रैण्ड से ओल्डविग और वहाँ से किंग्सवे होकर टैक्सी दस मिनट में ही हॉबर्न आ पहुँची। पुरुष की सूचनानुसार ड्राइवर ने गाड़ी रसल स्क्वैअर की ओर मोड़कर उस गली के नुक्कड़ पर रोक दी।

'ड्राइवर, तुम खाना खाकर एक घण्टे में लौट आना।' ऐसा कहकर पुरुष ने ड्राइवर को ढाई शिलिंग दिये और ड्राइवर सलाम करके चला गया।

आध घण्टे तक दोनो गली के मुहाने की ओर दृष्टि लगाये चुपचाप बैठे रहे। उन्हें डर था कि कहीं बातों-ही-बातों में रंतिनाथ निकल न जाये। गली में सैकड़ों आदमी आ-जा रहे थे, किन्तु किसी की भी शक्ल रंतिनाथ से मिलती नहीं थी।

'मुझे एक उपाय सूझता है।'

'कौन-सा ?'

'घर-घर जाकर तलाश क्यों न किया जाये ?'

'ठीक है, आप जाइए; मैं यहाँ देखती रहूँगी।

वह टैक्सी से उतरकर गली में घुसा और एक-एक घर का दरवाज़ा खुलवा-कर पूछने लगा—आपके यहाँ मि० धर्मवीर रहते हैं ?

'जी नहीं।'

'कोई और भारतीय रहते हैं ?'

'जी हाँ, दो-तीन हैं—एक मिस्टर लाल, एक सहाय और एक रेड्डी हैं।'

हर घर जाकर वह यही प्रश्न करता और सब जगह इसी तरह के उत्तर उसे मिलते।

'आपके यहाँ मि० धर्मवीर रहते हैं ?' उसने रंतिनाथवाले मकान पर जाकर मालकिन से पूछा।

'जी नहीं।'

'और कोई भारतीय रहते हैं ?'

'एक हैं मि० नाथ।'

'तकलीफ़ के लिए माफ़ी चाहता हूँ।'

पुरुष वहाँ से आगे बढ़ा और बाकी बचे घरों में भी उसने पूछताछ की, लेकिन कोई पता न चला। वह निराश होकर लौट आया।

'क्यों, लगा कुछ पता ?'

'नहीं, धर्मवीर नाम का कोई भी व्यक्ति यहाँ नहीं रहता।'

'यही गली थी ? कहीं आप भूलते तो नहीं ?'

'नहीं, गली तो यही है, मुझे अच्छी तरह याद है।'

'तब इसका मतलब तो यह हुआ कि यहाँ किसी से मिलने आये होंगे, रहते कहीं और हैं।

'हाँ, लगता तो ऐसा ही है।'

दोनो उदास हो गये। उनकी आशा निराशा में परिवर्तित हो गई।

'परिश्रम व्यर्थ गया।'

'जैसी मा जगदम्बा की इच्छा।'

इतने में ड्राइवर लौट आया और पूछने लगा—क्यों साहब, कुछ पता चला ?

'नहीं, कुछ भी नहीं।'

'इतने बड़े लन्दन में पता चलना मुश्किल ही है सर।'

'अब लौटा जाये।' महिला के कहते ही ड्राइवर ने मोटर चला दी।

रात्रि का अन्धकार घिरता जा रहा था, जो निराशा के कारण उन्हें अधिक गहरा लग रहा था। विचारों में डूबे हुए वे दोनो मानो अँधेरे के साथ कनफुसकियाँ कर रहे थे। अकेली टैक्सी शोर करती हुई दौड़ी जा रही थी और उसकी आवाज़ ऐसी लगती थी मानो अपने-आपसे बातें कर रही हो।

'मुझे तो जोर की नींद आ रही है।'

'और मुझे भी।' पुरुष ने जम्हाई लेते हुए प्रत्युत्तर दिया।

मोटर बर्कले स्क्वैअर की ओर मुड़ी और एक मकान के आगे आकर रुक गई। यह मकान वही था—मार्थावाला।

१६ : आइलीन पुनः लन्दन में

आइलीन रास्ते-भर रंतिनाथ के बारे में सोचती रही और हिन्दुस्तान जाने की उसकी इच्छा बलवती होती गई। रंतिनाथ भी हिन्दुस्तान आयेगा, यह विचार उसे आनन्द-विभोर कर देता था; परन्तु अपने पति का खयाल आते ही उसके सारे आनन्द पर तुषारपात हो जाता था। और यह विचार कि उसकी गृहस्थी की नौका मँझधार में फँस गई है, उसे भय-विकम्पित करने लगता।

मार्था का विचार उसे एक प्रकार की उलझन में डाल देता था। परन्तु यह विचार उसके सन्तोष के लिए काफी था कि रंतिनाथ मुझसे स्नेह करता है। मार्था उसे बुरी नहीं लगती थी। उससे उसे ईर्ष्या भी नहीं थी। बल्कि इस कल्पना से उसे एक प्रकार की सान्त्वना ही मिलती थी कि मार्था मुझसे अवश्य ईर्ष्या करती होगी।

रात को वह अपने घर पहुँची और नहा-धोकर बिस्तर पर लेट गई; किन्तु नींद नहीं आई। रंतिनाथ मानो उसके सिरहाने ही बैठा था; उसके चेहरे पर आनन्द और उत्साह छलक रहा था। आइलीन उसका हाथ पकड़ने लगी, लेकिन तकिये की झालर के सिवा कुछ भी हाथ नहीं आया। उसने आँखें बन्द कर लीं। कानों में सनसनाहट-सी होने लगी। वह एकाग्र मन से सुनने का प्रयत्न करने लगी।

थोड़ी ही देर में उसे रंतिनाथ का मन्द स्वर सुनाई दिया :

'क्या कर रही हो ?'

'पड़ी हूँ।'

'सो जाओ; व्यर्थ के विचार मत करो।'

'मैं नहीं करती, आप ही आते हैं।' और कहते-कहते वह सो गई।

सवेरे जब उठी तब उसका शरीर हलका-फुलका और मन में बड़ी उमंग और प्रसन्नता थी। ऐसी प्रसन्नता का अनुभव उसने पहले कभी नहीं किया था। अत्यधिक ठंड होने पर भी उसने खिड़की खोली और प्रातःकालीन वायु उसके फेफड़ों में भरने लगी। उसने तत्काल खिड़की बन्द कर दी।

नौकरानी ने आकर आग जलाई। सोफे में पड़े-पड़े, सिगरेट सुलगाकर वह अग्नि की ओर देखने लगी। ज्योंही मन विचारों में डूबने-उतराने लगा उसने उसे भौंहों के बीच में ले जाकर स्थित कर दिया। दो-चार मिनट तक यह प्रयोग करते रहने के बाद मन स्थिर और शान्त हो गया। चित्त के शान्त होते ही अन्तर स्वाभाविक आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। वह उल्लसित हो गई। उसे रंतिनाथ के शब्द याद आ गये कि आनन्द बाह्य वस्तुओं पर अवलम्बित नहीं होता।

दो-तीन दिन तक वह हिन्दुस्तान जाने की तैयारियाँ करती रही और स्नेही जनों तथा सम्बन्धियों से मिल भी आई। जब 'टॉमस कुक' कम्पनी से जहाज पर जगह मिलने की खबर आ गई तो उसने अपने पति को तार कर दिया। स्टीमर तीन दिन बाद हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो रहा था। उसने रंतिनाथ को भी तार दे दिया कि वह कल शाम को लन्दन पहुँच रही है।

और निश्चित समय पर उसने घर छोड़ दिया। नौकरानी को वेतन के अतिरिक्त पच्चीस पौंड इनाम में दिये; कुत्ते 'टाइगर' को थपथपाकर उसकी अच्छी तरह से देख-भाल करने की सूचना नौकरानी को दी। स्टेशन पर मित्र और सम्बन्धी अच्छी संख्या में आ पहुँचे थे। उन सबसे आइलीन ने प्रेमपूर्वक विदा ली। गाड़ी चलने लगी और कई हाथ ऊपर उठ गये। प्रति क्षण पीछे छूटते हुए इप्सिच को वह एकटक देखती रही। धीरे-धीरे नगर पीछे छूट गया। कुछ देर टाइगर की याद आई, नौकरानी का उदास चेहरा आँखों के आगे नाचता रहा, अपनी मा की

लेकिन दूसरे क्षण उसके मस्तिष्क में विचार उठने लगे कि क्या वह हमेशा के लिए इंगलैण्ड की धरती और आकाश को छोड़कर नहीं चली जा रही है ? वह फिर से इन चेस्टनट, ओक और मलबरी के वृक्षों को देख सकेगी ? नवम्बर का यह लाल-लाल ऊँघता-सा सूरज क्या फिर दिखाई देगा ? यह वर्फ और कुहरा क्या फिर देखने को मिलेगा ?

गाड़ी की गति धीमी हुई, किन्तु विचारों की गति कम न हुई। लन्दन दिखने लगा। गाड़ी के प्लेटफार्म पर पहुँचते ही उसे रंतिनाथ से मिलने की बड़ी तीव्र इच्छा हो आई। गाड़ी रुक गई और वह उतरकर इधर-उधर देखने लगी, मानो रंतिनाथ को ढूँढ़ती हुई उसकी आँखें विक्टोरिया स्टेशन के विस्तार को नाप रही हों। दो-चार मिनट वह प्रतीक्षा करती रही, किन्तु रंतिनाथ उसे कहीं दिखाई नहीं दिया। वह निराश और दुःखी होकर धीरे-धीरे चलने लगी। तरह-तरह की अमंगल आशंकाएँ उसके हृदय में उठने लगीं। कहीं रंतिनाथ को तो कुछ हो नहीं गया ? कहीं वह उसे भूल तो नहीं गया ? या तार उसे नहीं मिला ? कहीं मार्था ने तो कोई कुटिल चाल नहीं चली ? अन्त में उसने निर्णय किया कि वह टैक्सी करके किसी होटल में चली जायेगी।

लेकिन ज्योंही वह स्टेशन से बाहर निकली सामने मार्था आती दिखाई दी। वह इतनी तेज़ी से आ रही थी कि उसकी साँस भर आई थी। उसने लपककर आइलीन का हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोली—मैं तो समझी कि बहुत देर हो गई है, इसलिए शायद तुमसे बिना मिले ही लौटना होगा।

आइलीन ने सन्तोष की साँस ली और प्रसन्नता से मार्था की ओर इस तरह देखने लगी मानो उसकी आँखों में रंतिनाथ को ढूँढ़ रही हो।

'बहुत प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ी तुम्हें ? बात असल में यह हुई कि बेहद भीड़ और कुहरे के कारण मेरी कार निश्चित समय पर नहीं पहुँच सकी; वैसे घर से निकली तो मैं एक घण्टा पहले हूँ।'

'आपने बड़ी तकलीफ की। मैंने रंतिनाथ को तार दे तो दिया था।'

और रंतिनाथ के समाचार सुनने के लिए वह मार्था का मुँह ताकने लगी।

'नाथ को कल एकाएक केम्ब्रिज चले जाना पड़ा। आज रात को आठ बजे लौटेंगे। तुम्हारा तार मैंने खोला और लेने चली आई।'

आइलीन ने घड़ी में देखा तो सात बज रहे थे, रंतिनाथ के आने में एक घण्टे की देर थी।

'तो हम एक घण्टा यहीं बिता दें और उनको लेकर ही चलें।' आइलीन ने कहा।

'मैं भी यही सोच रही थी; लेकिन इस खयाल से नहीं कहा कि तुम कहीं थक न गई हो। चलो, सामान क्लोक रूम में रख दें और रेस्तराँ में चलकर बैठें।'

सामान रखवाकर दोनो रेस्तराँ में जा बैठीं।

'कॉफी और टोस्ट मँगवाया जाये, जिससे कुछ ताज़गी आ सके।' मार्था ने आर्डर दिया और फिर बोली, 'तो तुम हिन्दुस्तान जा रही हो।'

'हाँ, मेरे पति का बड़ा आग्रह है।'

'युद्ध छिड़ने के आसार दिखाई दे रहे हैं। हिटलर चुप नहीं बैठेगा। और फिर तुम्हारे पति तो ठहरे मिलिटरी सर्विस में।'

वह समय दूसरे विश्व-युद्ध के पहले का था। राईनलैंड, आस्ट्रिया आदि देशों पर एक के बाद एक कब्ज़ा करता हुआ हिटलर आगे बढ़ रहा था। जबर की लाठी जोर की वाले सिद्धान्त का बोलबाला था। अँग्रेज हिटलर को बुरा-भला तो कहते थे, किन्तु खुले आम नहीं—क्लबों और पबों के कोनों में बैठकर बहुत धीरे-धीरे, और कम-से-कम शब्दों में। जर्मनों को घृणापूर्वक 'जेरी' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा था। जर्मनी सारे यूरोप पर कब्जा करना चाहता है, यह मन्तव्य आये दिन अखबारों में छपता और महायुद्ध की घड़ियाँ गिनी जा रही थीं।

'हिलटर ने हमें गालियाँ दीं!' सड़क पर अख़बार बेचनेवाले चिल्ला रहे थे।

'समझ में नहीं आता कि दुनिया किस ओर जा रही है?'

'ईश्वर ही जाने।'

'नाथ की इस बारे में क्या राय है?'

'वह तो कहते हैं कि व्यक्ति के सुधरे बिना दुनिया नहीं सुधर सकती।'

यह सुनकर आइलीन को हँसी आ गई।

'इसमें उन्होंने कौन-सी नई बात कही?

'नई तो कुछ भी नहीं। लेकिन नई बात कहना महत्त्वपूर्ण नहीं, महत्त्वपूर्ण है नई दृष्टि प्रदान करना।'

यह उत्तर सुनकर आइलीन विचारमग्न हो गई। मार्था की समझदारी के प्रति उसके मन में आदर उत्पन्न हुआ।

'उनके पास व्यक्ति को सुधारने की कोई योजना तो होगी ही ?'

'है ! वह कहते हैं कि त्याग के बिना मनुष्य का विकास नहीं होता। भोग में जितना दुःख है उसका हजारवाँ हिस्सा भी त्याग में नहीं। परन्तु भ्रान्ति में पड़ा मनुष्य हमेशा उलटी ही बात सोचता और करता है।'

आइलीन को रतिनाथ की विचारधारा पसन्द आ रही थी। बोली—आपको ऐसा नहीं लगता कि इसे स्वीकार करने में पश्चिम को सदियाँ लग जायेंगी ?

थोड़ी देर तक मार्था कुछ न बोली, केवल सोचती रही। कॉफी का प्याला खाली होने पर उसने आइलीन की ओर देखा।

'रतिनाथ का मत है कि ज्ञान अनुभव के बाद आता है। पश्चिम को भोग का पूरा अनुभव है और अब वह भोगों से थकता जा रहा है, जब कि पूर्व को यह मालूम ही नहीं कि भोग क्या है !'

इतना कहकर उसने आइलीन को सिगरेट दी और खुद भी सुलगाई। सिगरेट फूँकते-फूँकते वह आगे बोली—पूर्व के पास साम्राज्य नहीं है, आर्थिक समृद्धि नहीं है, मानसिक विकास भी अधिक नहीं है और शारीरिक शक्ति भी कम है। ऐसे पूर्व का, जो भोग को जानता ही नहीं, त्याग कैसा !

'वह क्या कहते हैं, क्या युद्ध होगा ?'

'हाँ, अभी कई युद्ध होंगे। युद्धों के अनुभव से मनुष्य-जाति सीखेगी; वह समझेगी कि भोगों की लोलुपता ही युद्धों का मूल कारण है।'

'लेकिन सीखेगी कब ?'

'इसमें तो सदियाँ लग जायेंगी। यूरोप जब त्याग में मग्न होगा तब भारत, चीन आदि देश भोग के मार्ग पर अग्रसर होंगे; वहाँ आर्थिक समृद्धि की लालसा का उन्मत्त नृत्य होने लगेगा।'

'यह तो फिर वही बात हुई। वहाँ का पलड़ा भोग की ओर झुकेगा और पुनः युद्ध होंगे और इतिहास का क्रम यों ही चलता रहेगा।'

'नहीं, उस समय यूरोप सब को त्याग की महिमा सिखायेगा। यूरोप की वाणी में अनुभव की ध्वनि होगी।'

अब आठ बजने में सिर्फ पाँच मिनट की देर थी। शुष्क दार्शनिक वार्तालाप में आइलीन की कोई खास रुचि नहीं थी। हिटलर की धमकियों या युद्ध की उसे परवाह नहीं थी; संसार के या देश के भविष्य की भी उसे चिन्ता नहीं थी। वह तो इस सारे समय अपने हृदय की शान्ति और शान्ति के आधार रंतिनाथ का ही विचार करती रही थी।

'अब हमें प्लेटफार्म पर पहुँचना चाहिए।' आइलीन उत्सुक हो रही थी।

'हाँ-हाँ, चलो।' मार्था ने सिगरेट का ठूँठा ट्रे में दबाते हुए कहा।

ठीक आठ बजे ट्रेन आ पहुँची। रंतिनाथ उतरा और उसके पीछे रोडनी भी। आइलीन पर दृष्टि पड़ते ही रंतिनाथ ने कहा, 'अच्छा, तुम आ गई!' और उसका हाथ पकड़कर उसने स्नेहपूर्वक उसकी ओर देखा। फिर मार्था का हाथ अपने हाथ में लेकर उसकी ओर मुखातिब हुआ, 'मार्था, बहुत अच्छी मीटिंग रही! चार-पाँच नये सदस्य भी बने। रोडनी ने खूब-प्रचार किया।'

इतना कहकर उसने ममता से रोडनी की ओर देखा।

'मैं क्या कर सकता था! आपके प्रताप से ही सब-कुछ हुआ।'

'चलो, मुझे भूख लग रही है; तुम सबको भी लग रही होगी।'

और चारों व्यक्तियों ने वहाँ से पाँव बढ़ाये।

२० : महारात्रि

रंतिनाथ का मंडल धीरे-धीरे बढ़ रहा था। चार से आठ, आठ से सोलह, सोलह से बत्तीस—इस तरह बढ़ते-बढ़ते सदस्यों की संख्या दो-तीन सौ तक पहुँच गई थी। उस प्रचार में मार्था का मुख्य हाथ था। जब से वह रंतिनाथ के सम्पर्क में आई, उसके मंडल का निरन्तर विकास होता गया। मार्था से मिलने के पहले रंतिनाथ एक मस्त आदमी का जीवन व्यतीत करता था। मार्था ने उसकी विशेषता और शक्तियों को पहचाना और अपनी मित्र-मंडली से भी उसका परिचय करवाया। जो अभी तक गुप्त था वह प्रकट होने लगा। रोडनी सम्मिलित हुआ; रॉबर्ट, सिल्विया, मेगी, जॉन, जेकब, जेसिका—एक-एक कर कई सम्मिलित हुए। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों के व्यक्ति आने लगे थे। मार्था और रोडनी प्रचार-कार्यों में दिल खोलकर हिस्सा लेने लगे थे।

कुछ लेखक और प्रोफेसर भी मंडल के सम्पर्क में आये। जेकब स्वयं एक अच्छा यहूदी लेखक था।

उसने मंडल को स्थायी रूप देने के लिए उसकी रूपरेखा निश्चित की और विधान बनाया। प्रचार के लिए एक साप्ताहिक पत्र भी वह निकालने लगा। मंडल का नाम सर्वसम्मति से 'महारात्रि' अर्थात् 'ग्राण्ड नाइट' रखा गया और पत्र का नाम 'गूढ़ज्ञान' या 'अकल्ट लोर।'

अब मार्था अपना अधिकांश पैसा 'महारात्रि' और 'गूढ़ज्ञान' के लिए खर्च करती थी। रोडर्नी भी तन-मन-धन से सहायता कर रहा था। प्रोफेसर जेकब की कलम चलती और मार्था, जेसिका तथा जॉन भाषण देते थे।

धीरे-धीरे 'गूढ़ज्ञान' फ्रेंच, जर्मन, इतालवी और स्पेनिश भाषा में भी प्रकाशित होने लगा। 'महारात्रि' की शाखाएँ यूरोप के प्रमुख शहरों में खुल गईं।

'महारात्रि' के सदस्यों की तीन कक्षाएँ थीं। सब से अधिक सदस्य-संख्या पहली कक्षा की थी, जिसमें केवल चर्चाएँ और विचार-विनिमय किया जाता था। बीच की कक्षा साधना करनेवाले साधकों की थी, और अन्तिम कक्षा, जिसके सदस्यों की संख्या बहुत सीमित थी, रहस्यपूर्ण गूढ़ज्ञान का साक्षात् अनुभव करनेवाले विशिष्ट साधकों की थी। रंतिनाथ इस अन्तिम कक्षा के सदस्यों के ही समक्ष भाषण देता और उनका मार्गदर्शन करता था।

'महारात्रि' के सदस्यों में यह आम धारणा प्रचलित थी कि रंतिनाथ अपने मनोबल से किसी भी साधक-सदस्य को गूढ़ज्ञान का अनुभव करा सकता था। मार्था, जेकब, जॉन, जेसिका तथा अन्य पाँच-सात व्यक्तियों को ऐसे अनुभव होते थे। आइलीन को अकस्मात् ऐसे अनुभव हुए थे और उनमें मूल प्रेरणा रंतिनाथ की ही थी। बूढ़ी बारबरा सब को साफ-साफ सुना कर कहती थी कि गूढ़ व्यक्ति को सबसे पहले मैंने पहिचाना और इसने भी मुझी को माना। बारबरा पढ़ी-लिखी नहीं, फल बेचकर गुजर-बसर करनेवाली एक अति सामान्य नारी थी, फिर भी रंतिनाथ उसका सम्मान करता था और दूसरे सदस्य भी उससे स्नेह करते थे।

मंडल की प्रवृत्तियों में दिलचस्पी लेनेवाले और भी कई व्यक्ति थे, जो बाकायदा सदस्य न होते हुए भी समय-समय पर आते और चर्चा, वाद-विवाद तथा विवेचनों में हिस्सा लेते थे।

'हर किसी के साथ अधिक चर्चा नहीं करना चाहिए जेसिका!' एक दिन रंतिनाथ ने उससे कहा।

'बिना चर्चा किये प्रचार कैसे होगा?'

'क्या होगा प्रचार करके!'

'प्रचार के बिना ज्ञान का प्रसार जो नहीं होता।'

'ज्ञान का प्रचार चर्चा की अपेक्षा मौन तथा संकेत से अधिक होता है। सेवा से भी हो सकता है। जरा मार्था को तो बुलाओ।'

जेसिका जाकर मार्था को बुला लाई।

'मार्था, मंडल को सेवा का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। सेवा में त्याग है और हमें त्याग की भावना फैलानी चाहिए।'

'आदेश दीजिए। मार्ग बताइए।'

'गरीब बच्चों के लिए गरम कपड़े बुनो। ईस्ट एण्ड से आरम्भ करो।'

'जॉन, मेगी और रॉबर्ट को भारत और चीन में अपने मंडलों की स्थापना करने का आपका विचार बहुत पसन्द आया। जहाँ गरीबी अधिक है वहाँ सेवा का क्षेत्र भी विशाल है।' मार्था ने कहा।

'वह तो होगा ही; लेकिन इस समय तुम ईस्ट एण्ड से आरम्भ करो। जेसिका, तुम इस कार्य का भार सँभालो।'

'महारात्रि-मंडल' ने उत्साहपूर्वक वह कार्य प्रारम्भ कर दिया और जेसिका उसकी अध्यक्ष बनी। उसने चर्चाएँ और भाषण बन्द कर दिये। कार्य सुचारु रूप से आगे बढ़ने लगा और अखबारों में उसकी सफलता पर अग्रलेख लिखे जाने लगे। मंडल में चालीस-पचास सदस्यों की संख्या-वृद्धि भी हुई।

मंडल के अनेक सदस्य भारत में शाखा खोलने के इच्छुक थे। उनका प्रस्ताव स्वीकार किया गया और तदनुसार योजना बनाई जा रही थी कि आइलीन और रंतिनाथ की भेंट हुई।

आइलीन के रवाना होने से पहले रंतिनाथ ने उसके सामने भारत में शाखा खोलने का प्रस्ताव रखने का विचार किया। जब मार्था सोने चली गई तो रंतिनाथ ने आइलीन से कहा—तो तुम कल ही चली जा रही हो आइलीन! हमें भूल तो

आइलीन को यह प्रश्न कुछ विचित्र लगा।

'इस प्रश्न का कारण ?'

'सन्देह नहीं है; केवल याद करने के तुम्हारे ढंग को जानने की खातिर पूछ रहा हूँ।'

'याद करने के भी क्या कई ढंग होते हैं ?'

'हाँ, जरूर होते हैं। एक ढंग तो यही है कि मुझे सेवा के द्वारा याद किया जाये। मेरा सन्देश त्याग है और त्याग सेवा से होता है। इसलिए मुझे भुलाना न चाहो तो सेवा का कार्य प्रारम्भ कर देना।'

'बतलाइए इस दिशा में मैं क्या कर सकती हूँ ?'

'हिन्दुस्तान पहुँचकर वहाँ "महारात्रि" की शाखा स्थापित करना, पहाड़ी लोगों को पढ़ाना, उनके लिए अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध करना। उनमें घुल-मिल जाने का प्रयत्न करना।'

'मार्था और रोडनी ने भी मुझसे यह बात कही थी; लेकिन मुझे इन कामों का कोई अनुभव नहीं है। आर्थिक कठिनाइयाँ भी बाधक होंगी।'

'तुम प्रारम्भ तो करो। अलमोड़ा और रानीखेत से प्रारम्भ करना। आर्थिक व्यवस्था तो हो जायेगी। प्रारम्भ होने के बाद मार्था, मैं और दूसरे भी आ पहुँचेंगे।'

आइलीन का चेहरा आनन्द और उत्साह से दमकने लगा।

'मैं जरूर शुरू करूँगी।' उसने कहा।

'जल्दी करना। आज सारा विश्व संहार के विकराल मुँह की ओर अग्रसर हो रहा है; भोग का सिद्धान्त संसार की बलि लेने के लिए आतुर खड़ा है। हिटलर बर्बाद हो जायेगा, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य का भी अन्त होगा। भोग की हड्डी को चूसता हुआ फ्रान्स भी धराशायी हो जायेगा। मुझे तो चारों ओर अन्धकार ही दिखाई देता है। हिन्दुस्तान आजाद होगा, किन्तु आबाद नहीं हो सकेगा; क्योंकि स्थूल उत्पादन की धुन में वह भोग के गर्त्त की ओर बढ़ता जायेगा।' इतना कह-कर वह गम्भीरता से आइलीन की ओर देखता रहा और फिर बोला, 'लेकिन तुम इन सब चिन्ताओं को छोड़कर, जैसा मैं कहता हूँ, करोगी तो बहुत कुछ किया जा सकेगा।'

आइलीन ने अपना हाथ रतिनाथ के हाथ में रख दिया, यह सूचित करने के

लिए कि वह अपने कर्त्तव्य का अवश्य पालन करेगी। रतिनाथ ने स्नेह से उसकी पीठ थपथपाई।

'रतिनाथ! मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ।'

'जरूर पूछो।'

'तुम इप्स्विच आकर मेरे कान में कुछ कह जाते थे, यह रहस्य अभी तक मेरी समझ में नहीं आया।'

'रहस्य कुछ नहीं, मन की एकाग्रता है। मन जब एकाग्र होता है तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है।'

'मुझे तुम अकसर यह कहते सुनाई पड़ते थे कि सोच-विचार और चिन्ताओं को छोड़कर भौंहों के बीच मन को एकाग्र करो।'

'हाँ, ऐसा मनःसन्देश मैं तुम्हें भेजता था।'

'अब हर रोज मुझे ऐसा ही सन्देश भेजते रहना, भूलना मत!'

'रोज नहीं, लेकिन जब तुम्हें जरूरत होगी तब जरूर भेजूँगा।'

'कब जरूरत होगी, यह भी तुम जान लोगे?'

'इसमें जानना क्या है! अगर मेरी और तुम्हारी इच्छाएँ एक हो जायें तो सन्देशों का आदान-प्रदान भी बिलकुल सरल हो जायेगा।'

'यदि किसी दिन मेरी इच्छा सन्देश भेजने की हुई तो मुझे क्या करना चाहिए?'

'सन्देश ग्रहण करने लगोगी तो भेजना भी सरल हो जायेगा। अभ्यास करना पड़ेगा। जैसा मैंने कहा—भौंहों के बीच चित्त को स्थिर करना। बाकी सब अपने-आप समझ में आने लगेगा।' इतना कहकर वह उठने लगा।

'यह तो बतला दो कि तुम कब आओगे?'

'वहाँ पहुँचकर तुम्हारे काम शुरू करने की देर है। अच्छा, तो अब सवेरे मिलेंगे।' यह कहकर वह चला गया।

आइलीन अपने शयन-कक्ष में पहुँची तो उसके मस्तिष्क में दो ही शब्द घूम रहे थे—सेवा और त्याग।

उन शब्दों की गूँज और अनुगूँज में ही उसकी रात बीत गई।

२१ : हवाई-अड्डे पर

आइलीन आज के दिन हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो रही थी। रोडनी, जेसिका, जॉन आदि सवेरे ही आ पहुँचे थे। एक विशाल पार्टी का आयोजन किया गया था। करीब चालीस-पचास सदस्यों को मार्था की ओर से हावर्न होटल में भोजन का निमंत्रण दिया गया था। सुबह का समय आइलीन ने सबके साथ बातचीत करने और अपना सामान बाँधने में बिताया।

मार्था, रोडनी, जेसिका, जॉन और मेगी उसकी मदद करते रहे। तीन बजे के वायुयान से मार्साई पहुँचकर उसी रात वह स्टीमर में सवार होने को थी। उसका सामान तो पहले ही चल चुका था; साथ में ले जाने के लिए सिर्फ एक पेटी बची थी।

ग्यारह बजे जब रॉबर्ट आया तो सब मार्था के दीवानखाने में बैठे बातें कर रहे थे।

'आइए, आइए, आपकी ही प्रतीक्षा थी।' मार्था ने उसका स्वागत किया। आइलीन ने भी मधुर मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखा।

'तुम कितनी ही दूर क्यों न चली जाओ, लेकिन सदा रहोगी हम सबके पास ही।' रॉबर्ट ने उसका हाथ पकड़कर कहा।

'मुझे तो ऐसा लगता ही नहीं कि मैं दूर जा रही हूँ।'

'तुम हमारी मिशनरी हो, यह मत भूल जाना।' रोडनी ने कहा।

'वहाँ पहुँचते ही कार्य आरम्भ कर देना, जिसमें हम पीछे-पीछे आ सकें।' जॉन बोला।

'बुननेवाली की आवश्यकता होगी ही। लिखना कितना ऊन लेती आऊँ।' जेसिका ने अपनी बात कही।

'जो भी काम बताओगी, मुझे इनकार न होगा।' मेगी ने कहा।

'तुम भारत में हमारी आध्यात्मिक राजदूत होगी।' सबके बाद मार्था बोली। उसी समय जेकब भी आ पहुँचा।

'आओ गूढ़ज्ञान, आओ।' मार्था ने उसका स्वागत किया।

जेकब ने मार्था से हाथ मिलाकर आइलीन की ओर देखते हुए कहा—मेरी प्रिय मित्र, वहाँ जाकर 'गूढ़ज्ञान' को भूल मत जाना। और यह भी याद रखना

कि हमारे गुरुजी और हम सब तुम्हारे साथ ही हैं। भारत के वायुमंडल को अपने मंडल के सन्देश से भर देना। आज के 'गूढ़ज्ञान' की ये दो प्रतियाँ रख लो।

प्रतियाँ देकर जेकब बैठ गया। पाँचेक मिनट इसी तरह बीत गये। आइलीन का मन रंतिनाथ की ओर लगा हुआ था। मार्था और अन्य सभी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सवा ग्यारह बजे रंतिनाथ ने प्रवेश किया।

सारी मंडली 'पधारिए, पधारिए' कहती हुई उत्साह और उमंगपूर्वक खड़ी हो गई। कुछ भी बोले बिना वह सीधा आइलीन के पास आया और उसका बढ़ा हुआ हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—भूल तो नहीं जाओगी?

रंतिनाथ के शब्दों में माधुर्य के साथ स्नेह भी था। आइलीन ने उसका हाथ छोड़ा नहीं।

'कभी नहीं!' इतना कहकर वह मानो खुशी से नाच उठी।

एक बड़े सोफे पर मार्था ने रंतिनाथ और आइलीन को एक साथ बिठा दिया। दो-तीन मिनट तक सब मौन बैठे रहे। इतने में कॉफी आ गई।

'तुमने मुझे पन्द्रह दिन खाना बनाकर खिलाया, और कॉफी बनाकर पिलाई; आज मेरी बारी है।' और रंतिनाथ ने अपने हाथ से कॉफी बनाकर आइलीन को दी।

'सामान सब बँध चुका है?' उसने पूछा।

'हाँ, सभी साथियों ने मेरी बड़ी मदद की। मार्था का तो जितना आभार मानूँ कम है।'

'कार्यक्रम क्या है?' रंतिनाथ ने मार्था से पूछा।

'यहाँ से हम हॉबर्न होटल चलेंगे। चालीस-पचास मित्र वहाँ आनेवाले हैं, इसलिए जरा जल्दी चलना चाहिए। वहाँ से ढाई बजे इन्हें क्रोयडन के एरोड्रोम पर छोड़ने चलेंगे।'

'मार्साई से तार देना और पोर्टसईद, अदन तथा बम्बई से भी। बम्बई से काठगोदाम पहुँचने में डेढ़ दिन लगेगा और वहाँ से रानीखेत तो सिर्फ तीन घण्टे का रास्ता है।'

रंतिनाथ के शब्द आइलीन ध्यान से सुन रही थी। बोली—आप वहाँ कभी गये हैं?

'कुछ-कुछ याद पड़ता है। और रानीखेत पहुँचकर फौरन तार देना। ऐसा

न हो कि हिमालय की सुन्दरता में यहाँ की दुनिया को ही भूल जाओ।'

रंतिनाथ के शब्दों का अर्थ सबने अपने-अपने ढंग से लगाया और आइलीन ने विश्वास दिलाया कि वह कुछ भी नहीं भूलेगी।

'हम अधिक जोर देकर इसलिए कह रहे हैं कि तुम जा रही हो अपने पति के पास; हो सकता है कि मिला-मिलन की खुशी में हमारी याद ही न रहे।' जेकब ने हँसकर कहा।

पति का नाम आते ही आइलीन को रंतिनाथ की याद आ गई। रंतिनाथ ने उसकी आँखों में वेदना को उमरते देखा। उसने तुरन्त विषय-परिवर्तन करते हुए कहा—तुम्हारे वहाँ काम आरम्भ करते ही हम यहाँ से चल देंगे। इसलिए सब-कुछ तुम्हारे कार्य आरम्भ करने पर है।

रंतिनाथ के वाक्यों ने उसका विषाद दूर कर दिया; उसने शान्ति का अनुभव किया।

धीरे-धीरे सब उठने लगे। सबको हॉबर्न होटल पहुँचना था। मार्था, मेगी, रोडनी साथ-साथ चल दिये; उनके बाद जेकब भी चला गया। रंतिनाथ और आइ-लीन अकेले रह गये।

'मैं तुमसे एकान्त में मिलना चाहती थी।'

'इच्छा सफल हुई।'

'सच कहती हूँ, तुम्हारे बिना मुझे जीवन सूना मालूम होगा।'

रंतिनाथ ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'मैं तुम्हें हमेशा याद करता रहूँगा, खूब याद करूँगा। विश्वास रखो कि हम जल्दी ही मिलेंगे।'

'विश्वास तो मुझे है। लेकिन कब मिलेंगे, यह विचार परेशान-कर रहा है।'

रंतिनाथ उसके सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा। एकान्त था; आइलीन से रहा न गया। उसकी आँखों में प्रेमाग्नि जल उठी। अपनी धधकती हुई छाती उठाकर वह एकटक रंतिनाथ की आँखों में देखती रही और तब उसका सिर रंति-नाथ की छाती पर टिक गया। रंतिनाथ को ऐसा लगा मानो वह साक्षात् अग्निज्वाला हो। उसने एकाग्र मन, अपने मर्यादित अभिमान को भूलकर सात्विक भाव से उसका आलिंगन किया।

'तुम अग्निज्वाला हो।' उसने गम्भीरता से कहा।

आखिर वे लोग भी हॉबर्न की ओर रवाना हुए। होटल में पहुँचकर देखा तो हॉल खचाखच भर गया था। मार्था ने सारी व्यवस्था कर रखी थी। रंतिनाथ और आइलीन के आते ही सब ने हर्ष-ध्वनि की और आइलीन का स्वागत भी किया।

पचासवीं मेज़ फूलों से सजाई गई थी। उसके एक ओर मार्था, दूसरी ओर रंतिनाथ और उसके पास आइलीन बैठी।

भोजन-समारम्भ के बाद मार्था ने संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमें आइलीन के प्रति शुभ कामनाएँ व्यक्त करते हुए ईश्वर से प्रार्थना की गई थी कि उसकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो।

रंतिनाथ ने भी प्रसंग के उपयुक्त दो शब्द कहे और आइलीन को सफलता का आशीर्वाद दिया। आइलीन ने सबके प्रति आभार प्रगट किया और तब मेह-मान बिखरने लगे। धीरे-धीरे पाँच-सात व्यक्तियों के सिवा सब चले गये। उस समय दो बज चुके थे। आइलीन ने कहा कि अब एरोड्रोम चलना चाहिए, समय हो रहा है।

उसे विदा करने के लिए मार्था, रोडनी, रंतिमाथ और जेकब हवाई अड्डे पर गये। पासपोर्ट का निरीक्षण होने के बाद सामान और मुसाफिरों का वज़न किया गया और लाउड-स्पीकर द्वारा उन्हें मार्साई जानेवाले वायुयान में बैठने की सूचना दी गई।

आइलीन ने जेकब, रोडनी और मार्था से हाथ मिलाकर अन्त में रंतिनाथ से हाथ मिलाया। दोनों में से कोई कुछ न बोला; आँखों से आँखें मिलीं और आई-लीन झपटकर वायुयान में जा बैठी।

कुछ देर में वायुयान के इंजिन की घरघराहट सुनाई दी। उसने रंतिनाथ की ओर झाँककर हाथ ऊपर उठाया और देखते-ही-देखते आकाश में उड़ने लगी। रंति-नाथ यान की ओर देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया।

'मैं यहाँ से अपने बर्कले स्क्वैअरवाले मकान पर जाऊँगी; नये किरायेदारों ने मुझे चाय पर बुलाया है। मुझे वहाँ छोड़कर रंतिनाथ को घर पहुँचा देना। मोटर अपने आफिस पर ही रखना। मैं शाम को आकर के लूँगी।' मार्था ने रोडनी से कहा।

रोडनी जेकब के साथ बातें कर रहा था। उसने रंतिनाथ से जाकर कहा, 'चलिए साहब!' और जेकब से बोला, 'तुम भी चलो गूढ़ज्ञान!'

आगे रोडनी और जेकब बैठे; पिछली सीट पर मार्था और रंतिनाथ।

'मुझे आशा है कि कल रातवाली सभा में अच्छी उपस्थिति हो जायेगी।' मार्था ने कहा।

'तुम, जेकब और रोडनी तो, मेरी समझ में कुछ ही दिनों बाद, सारी दुनिया को जीत लोगे।'

'जीत आपकी होगी, हम तो सैनिक हैं।' कहकर मार्था ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'चाय पीकर कब तक लौटोगी?'

'छः बजे। आज तो बहुत टाइप करना है। 'गूढ़ज्ञान' के लेख इकट्ठा करके जेकब को देना हैं। जेकब, तुम्हारी डाक भी रोज़ बढ़ती जा रही है।'

'तुम्हारे रहते मुझे क्या चिन्ता! रोडनी सदस्य और चन्दा बढ़ाता रहे तो मैं डाक से डरता नहीं।'

मोटर बर्कले स्क्वैअर की ओर मुड़ गई।

'ये भारतीय पति-पत्नी बहुत भले और अच्छे हैं। मैं उन्हें भी किसी दिन अपनी सभा में लाऊँगी।'

'तुम्हारी प्रचार की धुन मुझे निरुत्तर कर देती है, मार्था!'

'हमें तो तुम्हारी धुन है। क्यों जेकब, ठीक कह रही हूँ न?'

'बिलकुल ठीक, हम तो सेठ के नौकर हैं।'

'बिना तनख्वाह के!' रंतिनाथ ने कहा।

'सेठ, आपने हमें नई दृष्टि प्रदान की, नया जीवन दिया, इससे बढ़कर तनख्वाह और क्या हो सकती है?'

'ठीक कहा गूढ़ज्ञान, बिलकुल ठीक। हमारा सेठ नक़द का सौदा है, बाकी सब उधार।'

रोडनी ने पूर्णविराम करके मोटर रोक दी। मार्था का मकान आ गया था। मार्था के उतरते ही रोडनी ने मोटर हाँक दी।

'साहब, बड़ी अच्छी लड़की है यह आइलीन।' जेकब ने बात शुरू की।

'हाँ, हमारी और उसकी किस्मत में लिखा था, इसलिए टकरा गये।' रंतिनाथ ने कहा।

'पूर्वजन्म के साथी होंगे, क्यों साहब ?'

'हाँ।'

'और यह रोडनी तो बेचारा पूर्वजन्म में हमारा ड्राइवर ही रहा होगा, क्यों साहब टीक है न ?'

'पर यह भी तो हो सकता है कि हम दोनो पूर्वजन्म में इनके घोड़े रहे हों! इन्होंने हमें खूब चाबुक मारे थे इसलिए इस जन्म में मोटर में बिठाकर ढोना पड़ रहा है।'

'रोडनी, यह मार्था तुम्हारी तो नहीं, किन्तु सेठ की उस जन्म की पत्नी अवश्य रही होगी; लेकिन वह लड़की कौन रही होगी, जो अभी उड़कर गई ?'

'वह भी पत्नी ही रही होगी। सेठ तो सेठ ही है और सो भी हिन्दुस्तान के। इनकी कंठी के मनकों की कोई गिनती है! तेरी और मेरी कंठी में भले ही एक-एक मनका रहा हो, लेकिन इनका काम तो एक मनके से चलने से रहा।'

'लेकिन एक भी कहाँ है यार? मुझे तो तेरी और अपनी कंठी में एक भी मनका नहीं दिखाई देता!'

'खो जाता है, गिर पड़ता है!'

'हूँ, तो तुम दोनो को अब भी मनकों का शौक है, क्यों ?' रंतिनाथ ने परिहास में सम्मिलित होते हुए कहा।

'लो, रोडनी अब बोलो। आप तो कंठियों पर कंठियाँ जमा करते जाते हैं और यहाँ एक मनके पर भी रोक! हद हो गई यह तो।'

रंतिनाथ हँसने लगा। उसका मकान आ गया था। रोडनी ने मोटर रोक दी।

'अब कल रात को मिलेंगे, साहब!' रोडनी ने कहा।

'अच्छा। लेकिन जेकब, अब तुम और रोडनी मेहरबानी करके मेरी कंठी में और मनके न बढ़ाओ।' इतना कहकर वह हँसता-हँसता चला गया। रोडनी ने मोटर स्टार्ट की।

'विचक्षण व्यक्ति है।' जेकब ने कहा।

'हाँ, बिलकुल विचक्षण।' रोडनी ने स्वीकार किया।

'न राग, न द्वेष !'

'न इच्छा, अनिच्छा ।'

'फिर भी जीवन से भरपूर ।'

'क्या यही तो नहीं है महामानव ?'

'कौन कह सकता है; लेकिन अद्भुत तो है ही ।' जेकब ने अपनी राय दी। गाड़ी रोडनी के आफिस-पर आकर रुक गई । दोनो उतरे और अपने-अपने काम पर चले गये ।

२२ : अष्टमी का पूजन

अष्टमी की पूजा सनाप्त करके जब वह उठी तो ठीक तीन बज रहे थे। सफेद रेशमी साड़ी और ब्लाउज़ में वह बड़ी दीप्तिमान लग रही थी। कुंकुम की लाल बिन्दी पर शक्ति का काला चिह्न उसके लावण्य को और भी बढ़ा रहा था ।

उसने भक्ति-भाव से माताजी के चक्र को प्रणाम किया और नैवेद्य में से थोड़ा-सा प्रसाद स्वयं लेकर पति को दिया। एक ओर बैठा हुआ उसका पति अब भी देवी के स्तोत्र का उच्चारण कर रहा था। वह रेशमी कुर्ता और पीताम्बर पहने था।

'या देवि सर्वभूतेषु मायारूपेण संस्थिता'—यह पंक्ति भक्ति-भरे कंठ से बोलकर उसने स्नेहपूर्वक पत्नी की ओर देखा । पत्नी का दिया हुआ प्रसाद उसने मुँह में रखा और तब दोनो सस्मित नेत्रों से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उसने पत्नी का हाथ पकड़ा और मुस्कराते हुए पुनः उच्चारण किया :

'या देवि सर्वभूतेषु मायारूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।'

और फिर अपनी अर्द्धाङ्गिनी को सादर प्रणाम किया ।

पति की ओर देखती हुई वह खड़ी हो गई। इस समय वह अत्यन्त दिव्य और आकर्षक लग रही थी। उसने अपने दोनों हाथ पति की ओर बढ़ाये, जिन्हें थामकर वह खड़ा हो गया। कुछ देर तक वे एक-दूसरे को निहारते रहे ।

जलता हुआ घृतदीप मानो सतेज हो उठा। देवी के यंत्र की ज्योति मानो जगमगाने लगी।

'तैयारी कर लें; वह आनेवाली है ।'

'हाँ, चलो।' कहता हुआ पुरुष अन्दर चला गया।

करीब चार बजे मार्था आई तो दोनो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'शायद मैं कुछ जल्दी आ पहुँची हूँ।' प्रवेश करते हुए मार्था ने कहा।

'नहीं-नहीं, पधारिए!' महिला ने खड़े होकर स्वागत किया। पुरुष ने भी नमस्कार किया और मार्था को बिठाया।

'आशा है कि मेरे मकान में आप अच्छी तरह व्यवस्थित हो गये होंगे। कोई असुविधा तो नहीं?'

'जी हाँ, मकान बहुत अच्छा और सुविधाजनक है। हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।'

'अफ़सोस है कि मैं फिर न आ सकी। दूसरे इतने काम रहते हैं कि फ़ुरसत ही नहीं मिल पाती।'

'तभी तो एक बार आकर ऐसी गई कि फिर दर्शन ही नहीं हुए।'

'उसके लिए माफी चाहती हूँ। वैसे अपने मित्र रोडनी से मैं रोज आपकी खबर पूछ लेती थी। आपकी सुविधाओं का भार मैंने उसी को सौंप रखा है।'

'हाँ, वह भाई साहब तो दो-तीन बार यहाँ आ चुके हैं। उन्होंने आपके क्लब में या ऐसा ही कुछ बताया था, आने का निमंत्रण दिया है।'

'एक बार जरूर आइए। अगर आपको सनकियों से मिलने की इच्छा हो तो ऐसा मौका दूसरा नहीं मिलेगा। और यह न समझिए कि हम अँग्रेज ही सनकी हैं। सभी तरह के लोग हैं हमारे साथ।'

'सुना है कि आपके नेता, या जो भी आप उन्हें कहती हों, कोई हिन्दुस्तानी हैं। सनकियों का सरदार तो बहुत अच्छा मिल गया। हम लोग जरूर आकर सनकियों की संख्या बढ़ायेंगे।'

'हाँ, हम जरूर आयेंगे।' पति ने पत्नी की बात का समर्थन किया।

'तो कल रात को ही आइए। दस बजे गोष्ठी है। मेरा नाइट्स् ब्रिजवाला मकान तो आपने देखा ही है।'

'हाँ, देखा तो है। क्या सब वहीं इकट्ठे होते हैं?'

'जी हाँ, अधिकतर तो वहीं; वैसे कभी-कभी रोडनी या जेकब के घर पर भी

'मैं सोचती हूँ कि आप लोगों की पहली मुलाकात यहीं हुई होगी। एक सुन्दर युवती सुन्दर युवक के प्रेम में पड़कर विवाह-बन्धन में बँध गई—यही कहानी होगी आपकी। क्यों, ठीक है न?'

'नहीं जी। हमारी मुलाकात यहाँ नहीं हुई।' उसने मार्था और पति को पेस्ट्री दी।

'प्रेम तो मुझे हुआ था। आखिर भगवान ने मिलाप करा ही दिया।' पुरुष ने धीरे से कहा।

'हमारी लड़की बीस साल की है और लड़का अठारह का। अब तो यही प्रतीक्षा है कि दोनो बड़े हो जायें और काम-धन्धे से लगें। और पेस्ट्री लीजिए।'

'आप लोग तो अभी जवान ही हैं।'

'मुझे तो अपनी पत्नी हमेशा बाईस की लगी और लगती रहेगी।'

महिला लजाकर धीरे से मुस्करा दी।

'वाह! इसे कहते हैं रस, इसका नाम है उमंग!' मार्था ने परिहास किया।

'आपका भी विवाह तो हो ही गया होगा और सन्तान भी होगी?'

'मेरा विवाह तो हुआ था; लेकिन कुछ ही दिनों में पति का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद अकेली ही हूँ। सन्तान भी कोई नहीं।'

'जैसी प्रभु की इच्छा!'

'हाँ, यही समझिए।'

'अकेलापन अखरता तो होगा?'

'जी नहीं; अपने और अपने नेता के काम-काज में कुछ मालूम ही नहीं होता कि समय कैसे बीत जाता है।'

'यह तो बतलाइए, आपके नेता का सिद्धान्त क्या है?' पुरुष ने पूछा।

कुछ देर तक मार्था उसकी ओर एकटक देखती रही, फिर चाय का आखिरी घूँट लेकर उसने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उत्तर दिया—जो छोड़ता है वह जीता है।

पति-पत्नी इस उत्तर को सुनकर गम्भीर हो गये।

'कितना सुन्दर!' महिला बोली।

'हाँ, सत्य सदा ही गूढ़ होता है।' मार्था ने कहा।

घड़ी अपना काम कर रही थी। उसकी सुई पाँच का अंक पार कर गई तब मार्था ने जाने की इजाजत माँगी।

'बैठिए न, ऐसी भी क्या जल्दी है?'

'छः बजने से पहले मुझे पहुँच जाना चाहिए। लन्दन के ट्राफिक से तो आप परिचित ही होंगे। फिर आज मैं अपनी मोटर भी नहीं लाई इसलिए बस से जाना होगा।'

'हमें भी बाहर जाना है। हमारे साथ चलिए। आपको घर छोड़ते चलेंगे।'

'शुक्रिया! लेकिन आपको तकलीफ क्यों दी जाये?'

'नहीं-नहीं; इसमें तकलीफ की क्या बात है! आपने हमारा निमंत्रण स्वीकार कर यहाँ आने का कष्ट किया, इसके लिए हमीं आपके आभारी हैं।'

मार्था ने 'गूढ़ज्ञान' का एक नया अंक पुरुष को देते हुए कहा—यह हमारा मुखपत्र है। शायद आपको पसन्द आ जाये, यह सोचकर लेती आई हूँ।

बहुत-बहुत धन्यवाद! इसके सम्पादक तो मि० जेकब हैं न?'

'जी हाँ, और मुखपृष्ठ पर जो लेख नाथ के नाम से छपता है वह हमारे नेता का लिखा होता है।'

तीनों उठकर नीचे आये। महिला ने मोटर लाने का आदेश दिया। शोफर तुरन्त मोटर ले आया और सलाम करके खड़ा हो गया।

तीनों बैठ गये। पुरुष दोनो महिलाओं के बीच में बैठा था।

'शोफर, नाइट्स् ब्रिज की ओर चलो।' महिला ने आदेश दिया।

'मुझे तो रसेल स्क्वैअर जाना है। कृपा करके कोने पर ही उतार दें।'

'नहीं-नहीं, कोने पर क्यों? शोफर, रसेल स्क्वैअर की ओर चलो।'

गाड़ी तीन-चार मिनट में बॉण्ड स्ट्रीट ट्यूब स्टेशन के सामने आ पहुँची।

'मैं तो आपसे पूछना भूल ही गई, मिसेज सिंह, कि आपके पति का पूरा नाम क्या है?'

'मेरा नाम माया है और इनका रणधीर।'

'आप क्या काम करते हैं?' उसने रणधीर से पूछा।

'बाप-दादों के समय की कुछ जमीन-जायदाद है, उसी पर जीते हैं।' रणधीर ने विनम्रता से उत्तर दिया।

'आपका देश राजाओं और जमींदारों का देश है ।'

'पता नहीं कब तक रहेगा !'

'यहाँ बैठे-बैठे हमारे देश में सबको हीरे-जवाहिरात और हाथी ही दिखाई देते हैं ।' माया ने कहा ।

'यही तो बुराई है । बिना श्रम की सम्पत्ति विनाश को ही निमंत्रित करती है ।'

'तभी तो हम थोड़ी-बहुत सम्पत्ति का विनाश करने के लिए यूरोप चले आये हैं ।' माया ने हँसकर कहा ।

'माफ कीजिए, मैंने इस दृष्टि से नहीं कहा । मैंने तो एक साधारण बात कही, जिस पर हमारे नेता समय-समय पर जोर देते रहते हैं । आप बुरा न मानें !'

'हमें जरा भी बुरा नहीं लगा । आप निश्चिन्त रहिए ।'

मोटर रसेल स्क्वैअर की ओर मुड़ गई । थोड़ी देर में वह परिचित गली आ गई और मार्था ने गाड़ी अन्दर लेने को कहा ।

'अरे, यहाँ तो हम एक बार आ चुके हैं !' महिला ने कहा ।

'अच्छा ! यहीं तो हमारे नेता रहते हैं । मैं उन्हीं के पास जा रही हूँ ।'

और उसने एक मकान के सामने मोटर रुकवाई ।

उन दोनो पति-पत्नी की जिज्ञासा बढ़ गई । रणधीर उस गली के हरएक घर में तलाश कर गया था ।

'यहाँ धर्मवीर नामका कोई व्यक्ति रहता है ?' उसने मार्था से भी पूछा ।

'इस मकान में तो मि० नाथ रहते हैं । धर्मवीर किसी दूसरे मकान में रहते होंगे । अच्छा साहब, आपको बड़ा कष्ट दिया । कल रात को आना न भूलिए । बच्चों को भी लाइए । कॉफी और नाश्ते का इन्तजाम रहेगा ।'

इतना कहकर वह अन्दर चली गई और ड्राइवर ने मोटर घुमाई ।

'रणधीर ! तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि वे इसी गली में गये थे ?'

'हाँ-हाँ, बहुत अच्छी तरह ।'

'तो फिर पता क्यों नहीं चलता ?'

'हो सकता है कि किसी से मिलने आये हों और लौट गये हों ।'

'हो सकता है । ठंड काफी है । चलो, कुछ देर सेवॉय में बैठकर घर लौट जायेंगे । बच्चे अभी आये नहीं होंगे । शोफर, सेवॉय चलो ।'

२३ : चेस्टनटवाला

मार्था और रंतिनाथ जब रसेल स्क्वैअर से बाहर निकले तो जाड़े का ठंडा अँधेरा चारों ओर भर गया था। दोनो म्यूज़ियम स्ट्रीट की ओर रोडनी के दफ्तर जा रहे थे।

'आइलीन का तार आया है। आज तो बीच समुद्र में होगी।' रंतिनाथ ने कहा।

'बड़ा उत्साह है उसमें। देखना वह जल्दी हिन्दुस्तान में हमारा कार्य आरम्भ कर देगी।'

'देखें, क्या होता है।'

'मेरे मकान में जो भारतीय पति-पत्नी रहने आये हैं वे अगर हमारे मंडल में सम्मिलित हो जायें तो हमें हिन्दुस्तान में अच्छी सफलता मिल सकती है।'

'कुछ कहा नहीं जा सकता। हमारे यहाँ के लोगों में यूरोपवासियों-जैसा उत्साह और लगन नहीं होती। मेरा ही उदाहरण ले लो! तुम्हारे उत्साह का दसवाँ भाग भी मुझमें नहीं है।'

'लेकिन वे लोग तो पढ़े-लिखे और साधन-सम्पन्न हैं। कोई जमींदार कुटुम्ब मालूम पड़ता है।'

'होगा। मुझे राजा-महाराजाओं से कोई मोह नहीं।'

'कल उनसे मिल लो, फिर देखा जायेगा।'

चलते-चलते दोनो रोडनी के दफ्तर की ओर मुड़नेवाले रास्ते पर हो लिये। वहीं कोने पर एक आदमी गरमागरम चेस्टनट बेच रहा था।

'चेस्टनट, गरमागरम चेस्टनट, जायकेदार चेस्टनट, सर्दी के दुश्मन चेस्ट-नट, बढ़िया और सस्ते चेस्टनट।'

मार्था और रंतिनाथ हाथ-में-हाथ डाले उसी के पास से गुजर रहे थे। मार्था की दृष्टि उस पर पड़ी; लेकिन उसकी दृष्टि दूसरे ग्राहकों पर थी। वह ग्राहकों को गरमागरम चेस्टनट दे रहा था।

मार्था और रंतिनाथ वहाँ ठिठक गये।

'आदमी भला मालूम होता है; मुझे इसके बोलने का ढंग बहुत पसन्द आया। चलो, थोड़े चेस्टनट ले लें।' यह कहती हुई मार्था उसके पास पहुँची। वह आदमी यंत्रवत चेस्टनट का गीत गाये जा रहा था। पहले के ग्राहक निबट गये तो मार्था

ने उससे आध सेर चेस्टनट देने को कहा। उसने मार्था की ओर कुछ देखा, कुछ न देखा और चेस्टनट भरने लगा।

उसकी डाढ़ी बढ़ी हुई थी। कपड़े बिलकुल मामूली थे। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, आँखें गड्ढों में धँस गई थीं और सामने के तीन-चार दाँत भी गिरे हुए थे। लेकिन उसके बोलने का ढंग और शब्दों का उच्चारण बड़ा ही साफ़ था, गँवारू नहीं लगता था।

'मुझे तुम्हारे बोलने का ढंग अच्छा लगता है!' मार्था ने हँसकर उससे कहा।

'तब तो सेर-भर लीजिए बहिनजी!' उसने चेस्टनट देने से पहले कहा।

'अच्छा, सेर-भर दे दो।'

उसने सेर-भर तौल दिये और 'चुने-चुनाये चेस्टनट, ताक़तवाले चेस्टनट, लेकर जाना चेस्टनट' गाता रहा। मार्था ध्यानपूर्वक सुन रही थी।

'नाथ, यह भाई बड़े अच्छे प्रचारक बन सकते हैं; आपकी क्या राय है?'

'प्रचारक ही तो हैं।' रतिनाथ ने कहा।

'मेहरबानी साहिबजी, मेहरबानी बहिनजी! यह लीजिए चेस्टनट, खाकर याद रखेंगे।' इतना कहकर उसने मार्था की ओर देखा और चेस्टनट का पुड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। अचानक वह आनन्दित हो उठा और बोला, 'अरे भगवान! नहीं पहिचाना मुझे?'

'नहीं तो।'

'खैर, कोई बात नहीं! लेकिन मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ?'

'कौन हो तुम?'

'बेसल।'

'बे....स....ल!' मार्था के आश्चर्य का पार न रहा।

'वह बेसल नहीं जिसे आप पहिचानती थीं; वह तो कभी का मर चुका।'

मार्था ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—बेसल! तू एक बार का वेस्ट एण्ड का घुमक्कड़, फैशनपरस्त, छैल-छबीला, नाच-गान और शराब का भक्त, बेफ़िक्र, बेकार, खर्चीला और खिलाड़ी इतना प्रामाणिक और परिश्रमी हो गया!

'हाँ मार्था, मेरा कायापलट हो गया है।'

'बड़े आश्चर्य की बात है!'

'लेकिन कहो तो सही, तुम कैसी हो?'

'नशे में हूँ बेसल, तुझे कैसी लग रही हूँ?'

'बिलकुल सरल, शान्त, और प्रौढ़!'

'बेसल, मिलने जरूर आना। बता कब आयेगा?'

'जब तुम्हें अवकाश हो। मैं तो कुछ ही दिनों पहले लन्दन आया हूँ; बहुत बर्षों से लीवरपुल में था।'

'लीवरपुल क्यों छोड़ना पड़ा?'

'मैं यहाँ एक गूढ़मंडल की खोज में आया हूँ। उस मंडल से "गूढ़ज्ञान" नामक एक पत्र भी निकलता है। उसके लेखों का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। लेकिन ये सब बातें फिर करेंगे। अभी तो माफ करो, मुझे इतने सारे चेस्टनट बेचना है।'

इतना कहकर वह 'चेस्टनट, मीठे-मीठे चेस्टनट, लेते जाओ चेस्टनट, खून बढ़ानेवाले चेस्टनट, गरमागरम चेस्टनट' की रट लगाने लगा।

'बेसल! तू उस गूढ़-मंडल के द्वार पर ही खड़ा है। यह रहे उस मंडल के प्राण, जिनके लेखों से तेरा हृदय-परिवर्तन हुआ। यही हैं मि० नाथ!'

बेसल आश्चर्यचकित होकर रंतिनाथ को देखता रहा। रंतिनाथ का बढ़ाया हुआ हाथ पकड़कर उसने अपनी टोपी उतारी और एकदम उसके पैरों पर मस्तक रख दिया। रंतिनाथ ने उसे स्नेहपूर्वक खड़ा किया और देखा तो बेसल की आँखों में आँसू थे।

'दिन-रात आपके लिए तड़पता रहा हूँ मास्टर! जागते हुए और सपनों में भी आपको ढूँढ़ता रहा हूँ। आपने मेरा जीवन बदल दिया, मुझे शान्ति और सुख प्रदान किया।' कहते-कहते वह गद्गद हो उठा।

रंतिनाथ ने उसे अपनी ओर खींचा और बिना कुछ कहे बगल में दबा लिया। रंतिनाथ की आँखें भी डबडबा आईं और उनसे आँसू टपक पड़े। मार्था खड़ी देख रही थी। उसने कभी रंतिनाथ को भावुकता में बहते नहीं देखा था। वह समझ गई कि बेसल ने रंतिनाथ का हृदय जीत लिया; निश्चय ही वह उसका सच्चा भक्त था।

रंतिनाथ दो-तीन मिनट तक बेसल को अपनी बगल में दबाये खड़ा रहा। यह चित्र मार्था के हृदय-पट पर सदा के लिए अंकित हो गया। उस दो मिनट

की अवधि में उसे रंतिनाथ के चेहरे पर प्रकाश की किरणें फूटती दिखाई दीं, उसकी आँखों में करुणा की सरिता के दर्शन हुए, त्याग और उपलब्धि का पूरा महाकाव्य उसने उतनी-सी देर में पढ़ लिया। समस्त सृष्टि में उसे परम पिता परमात्मा का अनुग्रह व्याप्त होता प्रतीत हुआ।

फिर रंतिनाथ ने धीरे-से बेसल को अपने बाहुपाश से मुक्त किया।

'कल रात को दस बजे मंडल में आना। मार्था, तुम इन्हें अपने साथ ही भोजन कराना। मैं सीधा वहीं आ जाऊँगा।'

मार्था ने बेसल को अपना पता दिया और भोजन का निमंत्रण भी। फिर 'जल्दी आना, हाँ!' कहकर वह रंतिनाथ के साथ चलने लगी।

'तुम बड़े जादूगर हो!'

'जादूगर तो एक वही है, मार्था!'

दोनो रोडनी के दफ़्तर में पहुँचे तो वह प्रतीक्षा कर रहा था। बोला—मैं तो कब से बाट देख रहा हूँ। कल का प्रोग्राम छप गया है। सबको पोस्ट भी कर दिया।'

और उसने उठकर रंतिनाथ को कुर्सी दी।

'रोडनी, आज अचानक बेसल से भेंट हो गई, इसी लिए इतनी देर हुई।' मार्था ने देर से पहुँचने का कारण बताया।

'बेसल! वह कहाँ से आ टपका! और कितने पैसे मार ले गया?'

'वह तो एकदम बदल गया है रोडनी, रास्ते पर ठेला घुमाकर चेस्टनट बेचता है।'

रोडनी का मुँह आश्चर्य से फैल गया।

'सच कहती हूँ; मैं अभी उससे मिलकर आ रही हूँ। नाथ भी थे।'

'अरे-रे, कितनी दुःखद स्थिति!'

'नहीं, यों कहो कि कितना सुखद प्रारम्भ!' मार्था ने उसकी भूल सुधारी।

'अच्छा, यों ही सही। जैसी जिसकी तक़दीर!'

'लेकिन पहले पूरा हाल तो सुनो।' और मार्था ने बेसल का सारा हाल कह सुनाया। रोडनी के आश्चर्य की सीमा न रही। रंतिनाथ सिर झुकाये कल के लिए तैयार किये हुए रोडनी के नोट्स् पढ़ रहा था। मार्था और रोडनी की बातों की

ओर उसका जरा भी ध्यान न था। बीच-बीच में दोनों उसकी ओर आदरपूर्वक देख लेते थे।

'सेठ तो जादूगर हैं।' रोडनी स्नेह से बोल उठा।

'लेकिन इन्होंने उसके प्रति जो भाव प्रदर्शित किया उसे मैं कभी भूल नहीं सकती। मैंने पहले कभी इनके मुँह पर उतनी करुणा, उतना स्नेह और उतना अपनत्व नहीं देखा।'

'सेठ को भली-भाँति पहिचानने की दृष्टि हमें अभी भी प्राप्त नहीं हुई है मार्था, जेकब भी यही कहता है और जेसिका तथा मेगी का भी यही कहना है। तुम व्यर्थ ही मान बैठी हो कि तुम्हीं उन्हें पूरी तरह जानती हो और तुम्हीं पर उनकी कृपा है।' रोडनी के शब्दों में मीठा उलहना था।

'मैं तो ऐसा नहीं मानती, केवल यही मानती हूँ कि मंडल का प्रारम्भ मुझसे हुआ।'

'बारबरा से क्यों नहीं? उन वेश्याओं से क्यों नहीं? उन गरीब हाकरों से क्यों नहीं? मुझसे क्यों नहीं? तुम्हें याद होगा कि तुम्हारी और उनकी पहली मुलाकात यहीं हुई थी।'

'रोडनी, तुम ये गोलमोल बातें रहने दो। यह बताओ कि मंडल की योजना कब बनी और कब वह विधिवत अस्तित्व में आया?'

'गोलमोल बातें इसलिए कर रहा हूँ कि मंडल स्वयं भी एक गोल वस्तु है। जेकब के शब्दों में कहूँ तो उसका न आदि है न अन्त; क्योंकि विचारों के वर्तुल विश्व को लपेटते हुए सदा घूमते ही रहते हैं। फिर भी तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि आरम्भ तुम्हीं से हुआ।' इतना कहकर वह हँसने लगा।

'ऐतिहासिक दृष्टि से मेरी बात सच है, आध्यात्मिक दृष्टि से तुम्हारी।' मार्था बोली।

'रोडनी, नोट्स् बिलकुल ठीक हैं; कहीं कोई भूल नहीं। हाँ, किस चर्चा में संलग्न थे तुम?' नोट्स् पढ़ने के बाद रतिनाथ का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ।

'आपको उसमें मजा नहीं आ सकता। कहिए, कैसा लगा हमारा वह मित्र, जिसकी आपसे भेंट हो गई?'

'जो तुम्हारा मित्र, वह मेरा मित्र। रोडनी, जहाँ स्नेह है वहाँ सब-कुछ है।'

'यह कितने सन्तोष की बात है कि आपके लेखों से उसके जीवन का परिवर्तन हुआ!'

'हम तो मात्र निमित्त हैं। मूल कारण तो ईश्वर की कृपा ही है। निमित्त यदि अभिमान करे तो मानना चाहिए कि उसने उल्टा चश्मा ही लगा रखा है। कृपा तो ईश्वर की ही है।'

'देखा मार्था! हमारी हरएक मान्यता पर इन्होंने कितनी सफाई से झाड़ू मार दी है। और मंडल शुरू करने के तुम्हारे दावे को भी एक ही झपट्टे में उड़ा दिया है। समझी?'

'झाड़ू मारना तो इनका धर्म ही है। ईश्वर हम-तुम से बहुत दूर हैं, इसलिए हमें तो इन्हीं से सन्तोष मानना होगा। यही हमारे ईश्वर हैं और हम इनके निमित्त हैं। यही दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक भी है।'

'ठीक कहा, मार्था, बिलकुल ठीक। अगर हममें स्वयं ईश्वर को देखने की, उसे पहिचानने की शक्ति होती तो इन सब झंझटों में क्यों पड़ते? इन्हें किस लिए अपना सेठ बनाते?'

रोडनी के शब्द सुनकर रंतिनाथ को हँसी आ गई—मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि कोई मुझे सेठ कहे तो कहता रहे। उसमें कोई बुराई नहीं। बुराई तब है जब मैं स्वयं अपने को सेठ समझने लगूँ। ऐसी मान्यता [illegible] है।

रंतिनाथ ने रोडनी की पीठ पर धौल जमाकर स्पष्टीकरण किया।

'देखो मार्था! फिर कितनी सफाई से झाड़ू मारी! तुम जो भी कहोगी उन सब पर यह इसी तरह झाड़ू मारते जायेंगे।'

'मैंने तुमसे क्या कहा था रोडनी? झाड़ू मारने के ही लिए तो यह पैदा हुए हैं।'

'अच्छा भई, नहीं मारूँगा झाड़ू। चलो, अब हमें चलना चाहिए। उबले हुए आलू, डबल रोटी और दूध तुम्हारे घर मेरी याद कर रहे होंगे।'

'याद कहाँ से करेंगे? आलू खानेवाले को नहीं पहले उबालनेवाले को याद करेंगे। ऐसा क्यों नहीं कहते कि भूख लगी है!' मार्था ने रंतिनाथ की पीठ पर धौल जमाते हुए कहा।

'देखा न मार्था ! फिर लगाई झाड़ू । आलू उबालनेवाली तुम हो, ऐसा तुम्हारा अभिमान लिया है, यह तुम्हें साफ-साफ सुना दिया ।'

'या यह व्यंग्य किया हो कि मैं तो उबालनेवाली ही रही ।' मार्था ने और भी स्पष्टीकरण किया ।

'हाँ, यह भी हो सकता है ।' रोडनी ने कहा ।

फिर तीनों उठ खड़े हुए, हँसते-हँसते बाहर निकल आये । मार्था ने मोटर का स्टियरिंग थामा और रतिनाथ भी उसके साथ बैठ गया । रोडनी ने 'बाई-बाई' कहा और मोटर चल दी ।

२४ : चेस्टनटवाले की आपबीती

दूसरे दिन ठीक साढ़े छह बजे बेसल मार्था के घर पहुँच गया । रोडनी तो छः बजे ही आ गया था क्योंकि मार्था ने उसे जल्दी बुलाया था जिसमें वह बेसल से मिल सके । दोनो बातचीत करते हुए बेसल की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

सड़क पर, अँधेरी रात में उसकी विपन्नता इतनी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दी थी, लेकिन इस समय कमरे के प्रकाश में वह बड़ा ही दरिद्र और फटेहाल लग रहा था । उसके कपड़ों में पैवन्द लगे थे; टाई पुरानी और खस्ताहाल थी; जूते भी घिसे और टूटे हुए थे ।

वहाँ प्रवेश करते ही वह कुछ सहमा । यद्यपि मार्था और रोडनी ही वहाँ थे, फिर भी क्षोभ के कारण वह कुछ बोल न सका । कुछ देर तक दोनो उसे आश्चर्य और दुःख के साथ देखते रहे ।

'आओ बेसल, आओ !' मार्था ने उसकी अभ्यर्थना करते हुए कहा ।

मानो लड़खड़ा रहा हो, इस तरह चलता हुआ वह समीप आया । आसपास स्वच्छता, प्रकाश और सजावट देखकर उसे घबराहट हो रही थी । वह डर रहा था कि कहीं उसकी उपस्थिति से घर की स्वच्छता और सजावट में बाधा न पहुँचे । कुछ देर तक वह बैठ न सका ।

'बैठो न !' मार्था ने आग्रह किया ।

मानो कोई अपराध कर रहा हो इस प्रकार डरते-डरते वह मार्था के सामनेवाले सोफे पर जरा-सा टिककर बैठ गया ।

'पहिचाना इन्हें ? रोडनी है।' मार्था ने रोडनी की ओर संकेत करते हुए कहा।

'हाँ-हाँ, पहिचानूँगा क्यों नहीं। यही शायद मुझे पहिचान न सके।'

रोडनी की ओर हाथ बढ़ाकर वह स्नेहपूर्वक देखने लगा। रोडनी ने उससे हाथ मिलाया और बोला—बेसल, दोस्त, तू भी खूब आया। हम तो समझते थे कि तू हमेशा के लिए यहाँ से चला गया और अमेरिका में वहाँ की मालदार विधवाओं के पैसे पर घोड़े दौड़ा रहा होगा। लेकिन खैर....मुझे तो बड़ी खुशी हो रही है तुझसे मिलकर!

रोडनी के शब्दों से कमरा गूँज उठा। उन शब्दों में मैत्री की उष्मा थी। बेसल कुछ न बोल सका, किन्तु सन्तोष से दोनो मित्रों को देखता हुआ बैठा रहा।

'थका हुआ मालूम होता है तू। तेरे लिए काफी और कुछ मिठाई मँगवाती हूँ। रोडनी, तुम भी लोगे न ? आओ, हम तीनों आराम से खाते-खाते जीवन की पुस्तक के पन्नें उलटें।

मार्था ने घंटी बजाकर नौकरानी को बुलाया और कॉफी तथा केक्स लाने को कहा।

'बेसल, यह रोडनी भी नाथ का बड़ा भक्त है। हम तीनों उनके भक्त हैं। कल्पना की थी कभी ऐसी ? मैं तो यही माने बैठी थी कि हमारे जीवन पार्क लेन, पिकाडिली और सोहो की ऊपरी तड़क-भड़क में पूरे हो जायेंगे; लेकिन ईश्वर को तो कुछ और ही मंजूर था।'

'हाँ, हम तीनों ही भटकी हुई आत्माएँ थीं; अँधेरे की चमगादड़ें। तुम दोनो में तो फिर भी थोड़ा-बहुत प्रकाश था, लेकिन मैं तो बिलकुल ही अन्धा हो रहा था।'

'अरे यार, यहाँ प्रकाश किसमें था ? तीनों ही बिलकुल अन्धे थे।' रोडनी ने उसे दिलासा दिया।

'मैं तो विषय-वासना की कृमि ही थी। मेरा मन वृत्तियों का गुलाम था, फिर भी मैं अपने को स्वतंत्र मानकर मगरूरी से घूमती रहती थी। मेरे पास पैसा था, शायद इसी लिए मैं चोरी, लूट-पाट और जालसाजी के रास्ते पर नहीं गई। रोडनी भी कुछ कम बेफिकरा और आवारा नहीं था; हाँ, हम दोनो की अपेक्षा उसमें लम्पटता कम थी और बाप के डर से वह दफ़्तर भी जाता था।'

'यह तो ठीक, लेकिन तुम्हारा दिल साफ़ था, तुम्हारे अन्तर में दीपक जल रहा

था। रोडनी का दीपक भी टिमटिमा रहा था, केवल मेरा बुझा हुआ था।'

इतने में कॉफी आ गई और मार्था उसे प्याले में उड़ेलने लगी। करीब दो दर्जन केक भी ट्रे में रखे थे। बेसल की आँखें उन्हीं पर लगी हुई थीं। मार्था समझ गई कि वह भूखा है। उसने छः केक निकालकर एक प्लेट में रखे और बेसल से कहा—पहले इन्हें खा ले, फिर बातें करना।

वह केकों पर इस इस तरह टूट पड़ा मानो कई दिनों का भूखा हो। कॉफी का प्याला ज्यों-का-त्यों रखा रहा। मार्था और रोडनी सहृदयता से उसकी ओर देखते रहे। केक पूरे होने पर मार्था ने छः केक और परोस दिये।

'तुम देख रही हो कि मैं कितना भूखा हूँ!'

'अच्छी तरह।' मार्था ने हँसकर कहा।

'यह कोई नई बात नहीं, भूख के ऐसे प्रसंग बार-बार आते रहते हैं।'

बेसल की बात सुनकर रोडनी और मार्था का मन विषाद से भर आया। दो-तीन मिनट तक कोई कुछ बोल न सका।

'मुझे भूखा रहने की आदत पड़ गई है।' आखिरी केक साफ करते हुए वह बोला।

मार्था ने कुछ और केक उसकी तरफ बढ़ा दिये। उन पर एक दृष्टि डालकर वह बोला—जल्दी क्या है? इन्हें भी साफ कर दूँगा। अब जरा कॉफी पी लूँ।

'ऐसा मालूम होता तो तेरे लिए पूरा खाना ही बनवाकर तैयार रखता।'

'लेकिन यह भी कोई बुरा नहीं।'

मार्था उसकी ओर देखती हुई कॉफी पीने लगी। रोडनी भी उसे ताक रहा था।

'तेरा कारबार कैसा चल रहा है रोडनी?'

'अच्छा ही है। किताबें बिकती हैं, छपती हैं और नफा भी तकदीर से अच्छा हो जाता है। पिता को गुजरे दस साल हो चुके, तब से मैं स्वतंत्र हूँ। मार्था ने मुझसे विवाह नहीं किया, इसलिए कुँवारा ही रहा। यह भी कुँवारी है। अब हम दोनो ने मास्टर से विवाह कर लिया है। अपना पैसा उनके सिद्धान्तों के प्रचार में खर्च करते और सादगी से रहते है। बेशक तेरे जितनी सादगी तो नहीं है।'

तीनों ने कॉफी पूरी की और मार्था ने फिर प्याले भरे।

'बेसल, बाकी केक भी समाप्त कर।'

'नहीं, अब मेरी भूख शान्त हो गई, इनकों हम तीनों बाँट लें।' यह कहकर उसने चार केक खुद लिये, और चार-चार मार्था तथा रोडनी की प्लेट में रखे।

'मार्था, एक बात आज मैं स्वीकार करता हूँ। न तो मैं तुमसे प्रेम करता था, न विवाह करना चाहता था। दरअसल मेरी आँखें तुम्हारे धन पर थीं। मैं तुम्हारे साथ खुशियाँ मनाता था, लेकिन वह सब बनावटी था। मैं एक दूसरी युवती के प्रेम में पागल, उसे प्रसन्न करने के लिए आकाश-पाताल एक किये था।'

'बेसल, आज हम तेरी पूरी कहानी सुनना चाहते हैं। हम दोनो एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। न तो तू मुझसे प्रेम करता था न मैं तुझसे। तू मेरे पैसे से विवाह करना चाहता था और मैं उसकी रक्षा करना चाहती थी।'

'लेकिन मुझे क्यों भूलती हो मार्था! मैं सच ही तुमसे प्रेम करता था और तुम्हारे पैसे का भी भूखा नहीं था; फिर भी तुम बेसल को ही अधिक दुलराती थी। मैं तो यही समझता था कि तुम इससे प्यार करती हो।'

'नहीं, कभी नहीं। मैं उसे दुलराती जरूर थी, क्योंकि यह भी मेरे-जैसा ही लम्पट और लबाड़ था। तेरे दिल की सच्चाई से मैं डरती थी। बेसल, अब तू अपनी कहानी शुरू कर।'

'हाँ वेसल, जरूर सुना।'

'मुझे एक सिगरेट दे रोडनी, पीते-पीते कहूँगा।'

वेसल को सिगरेट देकर उसने एक सिगरेट मार्था को दी और खुद भी ली। तीनों सिगरेटें सुलग गईं। फूँक मारकर वेसल आराम से सोफे में धँस गया और धीमे किन्तु गहरे स्वर में अपनी कहानी सुनाने लगा :

'तुम्हारी फेंकी हुई अँगूठी को लेकर मैं हेटन गार्डन के एक जौहरी की दूकान पर गया। उस अँगूठी के मुझे छः सौ पौण्ड मिले। पैसा लेकर मैं सीधा बार में पहुँचा और व्हिस्की की दो बोतलें चढ़ा गया। मेरी प्रेममूर्ति मानो आँखों के आगे खड़ी थी। पहले उस प्रेम-प्रतिमा की कहानी सुन लो।

'मेरी वह प्रेमिका एक गरीब विधवा की युवती लड़की थी। उसकी मा ब्राइटन में एक छोटा-सा होटल चलाती थी। एक बार रात के समय मुझे ब्राइटन जाना पड़ा। जहाँ तक मुझे याद है, मार्था उस समय दो-तीन दिन के लिए अपने लार्ड दोस्तों के साथ शिकार खेलने के लिए यार्कशायर चली गई थी। उन दिनों मेरी

और मार्था की प्रीति नई-नई थी। रेस में मैंने तीन घोड़ों पर बाजी मारी थी और मेरी जेब में दो-तीन सौ पौण्ड उछल रहे थे। दो-तीन दोस्तों ने ब्राइटन की सैर का प्रस्ताव रखा और मैंने स्वीकार कर लिया। उसी दिन शाम को एक दोस्त की स्पोर्ट्स् कार में हम लोग ब्राइटन के लिए रवाना हुए।

'ब्राइटन खचाखच भरा था और समुद्र की भाँति विलास भी उतने ही उद्दाम-वेग से तरंगित हो रहा था। हमें बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी बड़े होटल में स्थान नहीं मिला। निराश होकर गाँव में घूम रहे थे कि इतने में एक वृद्ध आदमी ने छोटे-से घर का पता बतलाया। उस घर पर किसी होटल के नाम का एक छोटा-सा पुराना साइनबोर्ड लटक रहा था। हमने घंटी का बटन दबाया और अन्दर पहुँचे।

'मिसेज़ स्मार्ट एक प्रौढ़ उम्र की ममतामयी महिला प्रतीत हुई। उसका पति प्रथम महायुद्ध में काम आ चुका था। युद्ध से पहले भी वह सेना में नौकरी करता और हिन्दुस्तान में रहता था। मिसेज़ स्मार्ट भी कई वर्ष तक हिन्दुस्तान में रह चुकी थीं।

'उसके एक बड़ी ही खूबसूरत लड़की थी। लड़की का पिता युद्ध के मोरचे पर गया और आइ-ला-शापेल के पास भयंकर युद्ध में गोली का शिकार हो गया।

'मा-बेटी निराधार हो गईं; लेकिन समय को दुःख की औषधि मानकर अपने दिन बिताने लगीं। रहनेवाली तो वे ससेक्स के एक गाँव की थीं, लेकिन आजीविका के लिए मा ने ब्राइटन में एक मकान किराये पर ले लिया और होटल चलाने लगी। धीरे-धीरे लड़की बड़ी होती गई और जिस रात मैंने उसे पहली बार देखा तो उसकी उम्र करीब अठारह-उन्नीस वर्ष की रही होगी।

'मिसेज़ स्मार्ट ने हमें अपने ड्राइंग-रूम में बिठाया और बातें करने लगी। उस समय वह लड़की रसोईघर में थी।

'बैठते ही मैंने कहा—हम बहुत भूखे हैं मिसेज़ स्मार्ट! पहले खाने का इन्तज़ाम करो।

'वह तत्काल उठ खड़ी हुई और "अभी करती हूँ।" कहती हुई घर के अन्दर चली गई। पाँचेक मिनट तक हम लोग सिगरेटें पीते और गप्पें मारते बैठे रहे। व्हिस्की की प्यालियाँ तो थीं ही।

'एक नौकरानी ने हमें ऊपर ले जाकर सोने के कमरे बतलाये और हम लोग

हाथ-मुँह धोने लगे। नौकरानी ने हमें यह भी बतलाया कि दसेक मिनट बाद भोजन की घंटी बजेगी।

'ठीक दस मिनट बाद घंटी बजी और हम नीचे उतरे।

'डाइनिंग-रूम में पहुँचते ही एक युवती ने हमारा स्वागत किया और बैठने की जगह बतलाई। उसका सौन्दर्य अलौकिक था। कटीली आँखें और सुन्दर नाक देखते ही बनती थी! उसके बालों में मानो जादू भरा था और अंग-अंग में यौवन हिलोरें ले रहा था। देखते ही मैं उस पर आसक्त हो गया। मेरे विलासी हृदय में कोई [illegible] उठा जो निरी आसक्ति नहीं, उससे कुछ अधिक ही था। यद्यपि वह यौवन-सुलभ भाव था, फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि हृदय की गहराई में मुझे एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव होने लगा था। आनन्द की उस अनुभूति में उपलब्धि की अपेक्षा सर्वस्व के त्याग और समर्पण की आकांक्षा ही अधिक थी। मेरी समझ में तो इसी भावना को लोग प्रेम नाम से सम्बोधित करते हैं।

'युवती जिस प्रकार सबकी ओर देखकर मुस्कराई उसी प्रकार मेरी ओर देखकर भी मुस्कराई। लेकिन मेरे लिए वह मुस्कराहट नहीं, फ्रान्स के अंगूरों का आसव था! जब उसने अपने अंगों का संचालन किया तो मुझे ऐसा लगा मानो पत्र-पुष्प-आच्छादित आइवी लता वायु के स्पर्श से झूम उठी हो। उसके शब्दों ने मेरे हृदय को राग-पराग से प्रमुदित कर दिया। क्योंकि वे शब्द नहीं नाइटिंगेल का संगीत था। उसके पास सिर्फ गुलाब की सुगन्ध ही नहीं थी, ऋतुराज वसन्त का ढेर-ढेर पराग भी था।'

कहते-कहते बेसल ने कुछ देर के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसकी सिगरेट के सिरे पर राख की तह जम गई थी। मार्था और रोडनी उसकी ओर ध्यान से देख रहे थे। दोनो को लग रहा था कि बेसल सिर्फ कहता ही नहीं, जो कहता है उसे प्रत्यक्ष देखता भी जाता है; मानो उसकी आँखें काल के पटल को भेद कर विगत को देख रही थीं। इसी लिए उसकी कहानी इतनी सजीव और प्राणवान थी।

रोडनी ने गला खँखारा तब कहीं बेसल को होश आया और उसकी सिगरेट पर जमी हुई राख टूटकर कालीन पर गिर गई।

'माफ करना मार्था, तुम्हारे कालीन पर मैंने राख गिरा दी!'

'कोई बात नहीं; तुम कहानी सुनाओ। तुम्हारी कहानी में शब्द नहीं चित्र हैं।'

'और उसने जब यह कहकर कि "और लीजिए" मलाई से भरपूर पुडिंग आग्रह-पूर्वक मेरी ओर बढ़ाया तब उसके सुडौल अंगों का यौवन मानो तरंगित हो उठा और उन तरंगों ने मेरे हृदय को पुलकित और प्रकम्पित कर दिया। और जब मैं पुडिंग को भूलकर अभिभूत-सा देखने लगा तो मुझे याद है कि वह हँस पड़ी थी। उसकी हँसी मुझे बहुत पसन्द आई और लगा कि उसके हाथ में पुडिंग नहीं अमृत है। मैंने पुडिंग लिया और खूब खाया। यह भी भूल गया कि मेरे दोस्तों के हिस्से में कम आयेगा।

'हँसते-हँसते जब वह बाहर चली गई, तो मुझे भी पुडिंग से अरुचि हो गई।

'एक दोस्त ने मुझसे कहा—तू तो यार, पुडिंग का बड़ा शौकीन है।

'मुझे उसके शब्द नीरस लगे और अब तो पुडिंग भी नीरस हो गया था।

'वह दूसरी बार पुडिंग लेकर आई तो अपना पुडिंग मैं फुर्ती से खा गया। उसने मेरे दोस्तों को पुडिंग परोसा, किन्तु न उनकी ओर देखकर मुस्कराई, न उसके अंग-उपांग उल्लसित हुए। उसके इस व्यवहार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'भोजन के बाद हम लाउंज में आ बैठे और वह पियानो बजाने लगी। उसकी उँगलियों के स्पर्श से पियानो भी सजीव हो उठा और धीरे-धीरे हम सब भी।

'गुड नाइट वियेना,
यू सिटी ऑव द मिलियन मेलोडीज़

'यह गीत उन दिनों बहुत गाया जाता था। पियानो के आरोह अवरोहपूर्ण मादक स्वरों ने वातावरण को भर दिया। युवती का कंठ भी गूँज उठा। उसके स्वर की मस्ती और उल्लास ने तो वियेना की विलासपूर्ण रातों को भी मात कर दिया। ओह, उसके आलाप में कैसा जादू था! कितनी मस्ती थी! वह स्वर मेरे हृदय की गहराइयों में उतरता चला गया। आज भी उसकी ध्वनि मेरे कानों में ठीक उसी दिन की भाँति टकरा रही है।

'जब वह गा चुकी और पियानो पर से खड़ी हुई तो सौन्दर्य की ओलम्पियन देवी-सी जगमगा उठी। मेरा हृदय उसके हृदय से एकाकार होने के लिए व्यग्र हो उठा। यहाँ तक कि वह हाथ में न रहा और लहर की भाँति दौड़कर उसकी कोमल हथेलियों में सरक गया।

'उसके हाथ पकड़कर मैं एकटक उसकी ओर देखने लगा। मैं अपनी आँखों

को उसकी आँखों में देख रहा था। मेरे मनोगत भाव उसके मुख-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे। अपने जीवन की निस्सारता को मैंने उसके मुखमण्डल पर साफ़-साफ़ झलकते देखा। उस रात मेरी भावनाओं के समुद्र में पूरे वेग से ज्वार उठता रहा। एक समुद्र बाहर हहरा रहा था और दूसरा मेरे हृदय के अन्दर।

'मेरे नेत्रों में उसने जीवन-सागर के दर्शन किये, भावनाओं की उत्ताल तरंगों का घुमड़ना देखा, और यह भी देखा कि मेरी छोटी-सी डगमगाती नौका डूबने को ही है।

'वह कुछ न बोली। मुस्कराई तक नहीं; फिर भी उसने आँखों में बहुत कुछ कह डाला। अपने नेत्रों की वाणी में उसने कहा कि सागर का संगीत सुनना अच्छा है, किन्तु किनारे बैठकर। उसके मौन सन्देश को मैं उस समय समझ न सका, बाद में वह मेरी समझ में आया।

'अपने कोमल करुण स्वर में उसने कहा—गुडनाइट! और जिस तरह कोई मनोहर पक्षी हृदय को झकझोरकर उड़ जाता है उसी तरह सरसराती हुई वह चली गई।

'उस रात मैं सो न सका। सारी रात वह मेरी आँखों के सामने खड़ी रही। उस रात मैंने अपने को एकाकी, निराधार और निष्प्रभ अनुभव किया। ऐसा लग रहा था मानो मैं जीता-जागता कब्र में सोया हुआ हूँ।

'सवेरा हुआ। मुझे जागना नहीं था। क्योंकि मैं सोया ही कब था। बिस्तर से उठा; अभी कोई जागा नहीं था। ड्रेसिंग गाउन पहिनकर मैं कमरे से बाहर निकला। यद्यपि उस समय काफी अँधेरा था, फिर भी मैं सोच रहा था कि शायद वह कहीं दिख जायेगी। धीरे-धीरे मैं नीचे उतरने लगा। मैं उतर ही रहा था कि वह भंडार घर की ओर जाती हुई मिल गई। उसके हाथ में दूध की तीन बोतलें थीं। थोड़ी देर वह मुस्कराती मेरी ओर देखती रही और फिर अन्दर चली गई। मैं भी उसके पीछे-पीछे अन्दर पहुँचा।

'मैंने कहा—गुड मार्निङ्ग!

'वह बोली—गुड मार्निङ्ग!

'मैंने कहा—मैं आपकी मदद करूँ?

'उसने कहा—नहीं, तुम्हारी आँखों में नींद और थकान है।

'मैं बोला—मैं सारी रात जागता रहा हूँ।

'उसने पूछा—क्यों ?

'मैंने उत्तर दिया—तुमने मुझे सोने नहीं दिया।

'वह एक मीठी, मादक और मोहक हँसी हँस दी। उस हँसी ने मेरे हृदय को टूक-टूक कर दिया। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और सहलाने लगा। सहलाकर मैंने उस हाथ को चूमा और तब दबाया—बड़े जोर के साथ। उसे दर्द हुआ क्योंकि उसकी आँखें मिचक गई थीं, किन्तु ओठों पर आनन्द था। जब वे होंठ सिकुड़े तो मुझे ऐसा लगा कि उनमें मेरे लिए प्रातःकाल का मधुर रस भरा है। मैंने आकंठ उस रस का पान किया। उसकी आँखों में मदिरा छलक उठी; उसकी छाती की धड़-कनें मेरे दिल की धड़कनों के साथ मिलकर एक हो गईं। मैंने उसकी पीठ पर हाथ रखा और मेरे हृदय में इतना प्यार उमड़ आया कि मैंने उसे भुजाओं में भरकर जोर से दबा लिया। उसके मुँह से एक हलकी-सी "ओ" निकली, लेकिन मैंने उसे सुना नहीं, क्योंकि उसकी आँखें कुछ और ही कह रही थीं। वे कह रही थीं कि होंठों की "ओ" सच नहीं है। उसके अंगों में इतनी ताजगी थी कि....'

'बेसल, यदि तू इतना विशद वर्णन न करे तो भी हम तेरे मनोभावों को समझ सकते हैं।' मार्था ने विनोद में तथापि सहृदयता से कहा।

'मार्था का कहना ठीक है बेसल! हम तेरे सहृदय मित्र हैं।'

'दोपहर के भोजन के बाद हमें लन्दन लौटना था। वह मेरे पास आई। उसकी दृष्टि स्नेहपूरित थी।

'उसने पूछा—फिर कब आओगे ?

'मैं तो तुमसे एक क्षण भी विलग होना नहीं चाहता। तुमने मुझे घायल कर दिया है और मेरे घाव पर मरहम भी तुम्हीं लगा सकती हो।

'उसने कहा—ये घाव तो लन्दन पहुँचते ही भर जायेंगे।

'मैंने कहा—ये घाव मामूली नहीं, बड़े गहरे हैं।

'मेरा उत्तर सुनकर उसने मेरी टाई की गाँठ बराबर की और उसे कुछ खींच दिया। मानो वह कह रही थी कि देखना, स्नेह की गाँठ ढीली न होने पाये। मैंने उसे गाढ़ आलिंगन....'

मार्था ने गला खँखारा और बेसल ने बात अधूरी ही छोड़ दी। वह समझ

गया कि मार्था घटनाओं के विशद और विगतवार वर्णन के पक्ष में नहीं है।

'मैंने उसे वचन दिया कि हर सप्ताह मिलता रहूँगा। वचन देकर मैं लन्दन आया। उसकी याद मुझे सता रही थी। उसी दिन शाम को तुम यार्कशायर से लौटी और मुझे उदास देखकर स्वयं भी उदास हो गई थी। मैंने कहा कि तुम्हारे बिना मैं बिलकुल अकेला पड़ गया था और तदनुसार मैंने आचरण भी किया। उस रात काफी देर तक हम लोग काफे द मारे में नाचते और पीते रहे। मैंने तुम्हें कितना छेड़ा और कितनी अठखेलियाँ की थीं, यहाँ तक कि तुम कह बैठी कि मैं लम्पटों का सरदार हूँ! उसी रात, यदि तुम्हें याद हो तो तुमने मुझे सच्चे हीरे की एक कीमती अँगूठी दी थी। उस रात तो तुम्हारा हुस्न भी कमाल ढा रहा था। तुम्हारे गालों का जब मैं अपने गालों से स्पर्श करता तब मानो सुख-समाधि में लीन हो जाता था। काफे द पारे में नाचने के बाद हम लोग, अगर तुम्हें याद हो तो ग्रीक स्ट्रीट-वाले नाइट क्लब में गये थे। वहाँ मैंने खूब छककर शराब पी और तुम मुझे बेहोशी की हालत में घर लाई थी। तुमने भी खूब पी थी। मैं नहीं समझता कि इतनी शराब हम लोगों ने फिर कभी पी होगी। दूसरे दिन हम तीनों—तुम, मैं और रोडनी, अगर तुम्हें याद हो तो लंच के लिए ट्रोकेडेरो में गये थे। यह सब मैं जान-बूझकर याद नहीं कर रहा, इस बात के सिलसिले में सब-कुछ अपने-आप याद आ रहा है।

'फिर मैं ब्राइटन जाकर तीन-चार बार उससे मिला। मैं अकेला जाता था। उसकी मा समझ गई कि हम दोनो में प्रेम हो गया है। अपने मिथ्याभिमान और दम्भ के कारण मैंने मा-बेटी को सदा इस भ्रम में रखा मानो मैं किसी करोड़-पती उमराव का बेटा हूँ। मैं उसे भेंट देने के लिए नई-नई कीमती चीजें ले जाता था। फर के सुन्दर कोट, सुन्दर हार, अँगूठियाँ, हैट, जूते, पेटियाँ आदि कई तरह की चीजें होती थीं। यद्यपि उसने कभी कोई चीज मुझसे माँगी नहीं, बल्कि जब-जब मैं उपहार ले जाता तो वह अनिच्छा ही प्रदर्शित करती थी। लेकिन मेरी झूठी शान और घमंड मुझे चंग पर चढ़ाते रहते थे। वह बेचारी मुझे रईसजादा और भावुक समझकर अनिच्छापूर्वक ही मेरे उपहार स्वीकार कर लेती थी। उसकी माता भी लोभी नहीं थी, यद्यपि लड़की जितनी निस्पृहता उसमें नहीं थी। और मैं स्वीकार करता हूँ कि उपहार में देने की वे वस्तुएँ तुम्हारी कृपा से ही मुझे मिलती

थीं। मैं "लोन" के नाम पर तुमसे पैसा निकालता रहता था। तुम इस बात को जानते हुए भी कुछ न जानने का बहाना करके मुझे सन्तुष्ट करती रहती थी। लेकिन तुम्हें यह मालूम नहीं था कि तुम्हारे पैसों से मैं अपनी प्रियतमा को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। तुम यही सोचती थी कि वह सब पैसा मैं जुए या घुड़दौड़ में फूँक देता हूँ।

'हमारा सम्बन्ध गहरा होता गया। धीरे-धीरे मैं उसे लन्दन बुलाने लगा। तुम्हारे मकान से कुछ दूर एक मकान में मैं उसे ठहराता था। उसे रिझाने के लिए मैं आकाश-पाताल एक कर देता था। जब वह होती तब मैं बहाना बनाकर तुम्हारे पास से भाग जाता था। हाँ, रोडनी हमेशा मुझसे पूछता रहता था कि मुझे बाहर तो नहीं जाना है। मेरा विश्वास है कि मेरे बाहर जाने की बात सुनकर रोडनी को बड़ी प्रसन्नता होती थी।'

'तेरी धारणा बिलकुल ठीक है। अब आगे का किस्सा बता।' रोडनी बीच में बोल उठा। वेसल और मार्था को हँसी आ गई।

'लेकिन मेरे दिन फिर रहे थे। एक रात मैं उसके साथ ब्राइटन के सागर-तट पर बैठा था। पूर्णिमा का चन्द्र उसके अंगों से अठखेलियाँ कर रहा था। अचानक प्रेमावेश में आकर मैं उससे लिपट गया और अपना मस्तक उसके मृदु स्तनों से सटाकर चाँद की ओर देखने लगा। हमारा प्रेम-सम्बन्ध करीब एक वर्ष से बराबर चल रहा था, और उसकी सुखद स्मृति में मग्न मैं चन्द्र को देखता हुआ गर्व से हँस रहा था। मानो मैं चाँद से कह रहा था कि मेरी प्रियतमा तेरी अपेक्षा कई गुना सुन्दर है। चन्द्रमा को मात देने के लिए मैंने अपनी प्रियतमा की छाती उघाड़ दी और उसके सुन्दर, स्फटिकोज्ज्वल, सुकोमल कुचों पर अपनी आँखें रख दीं। वह लाड़ से मेरे सिर पर हाथ फेर रही थी।

'सहसा उसने पूछा—क्या सोच रहे हो?

'मैंने कहा—तुम्हारे ही बारे में।

'वह बोली—तो मुझसे विवाह कर लो।

'मैं एकदम उठकर बैठ गया। मैंने स्वप्न में भी उससे विवाह करने का विचार नहीं किया था। अपना झूठ प्रकट हो जाने का डर भी मुझे था। तुम तो थी ही—यानी तुमसे तो मैं चिपटा ही था। तुम्हीं मेरा सारा खर्च चलाती थी। उसने सोचा

होगा कि मैं उसकी बात सुनते ही उसे चूमकर खुशी से नाचने लगूँगा; लेकिन मैं बिलकुल चुप रहा, मेरे चेहरे पर इनकार झलक रहा था।

'लेकिन कुछ उत्तर तो देना ही था, इसलिए मैंने ठण्डे स्वर में उत्तर दिया— विवाह करने से और अधिक क्या हो जायेगा?

'उसका चेहरा एकदम मुरझा गया। मैंने उसे चूमने की कोशिश की, लेकिन उसके होठ मरे-से मालूम हुए। मेरा हृदय व्याकुल हो उठा। मैंने अनुभव किया कि बाजी मेरे हाथ से निकल गई है। मैंने अनुनय के स्वर में उससे कहा—मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

'उसकी आँखों में आँसू छलक आये। उन आँसुओं में उद्वेग था, उदासी थी और तिरस्कार भी था। मेरा दिल भर आया, आँखें डबडबा आईं। मेरे आँसू उसके बर्फ-जैसे हृदय पर गिरे और छाती की गोलाई पर बहते हुए धरती पर टपक गये। अपनी गीली आँखें मैंने उसके हृदय से लगा दीं। उसने धीरे-से मेरा सिर उठाया और हिम-शीतल दृष्टि से मेरी ओर देखा।

'वह बोली—मेरे बदले अगर तुमने किसी वेश्या को रखा होता तो इतना खर्च न करना पड़ता! शब्द नहीं एक तेज कटार थी। मैं कुछ कहूँ उसके पहले ही वह उठी और चल दी। मैं भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा, किन्तु उसने मुड़कर देखा तक नहीं। घर में पहुँचने के बाद उसने मेरी ओर देखा और बोली—आपको कितने बजे ब्रेकफास्ट चाहिए, साहब?

'मैं एक शब्द भी नहीं बोल सका। मेरे मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। अन्त में मैंने डरते-डरते इतना ही कहा—तुम कितनी क्रूर हो!

'उसने कहा—याद रखना, यह घर एक सद्गृहस्थ का है, वेश्या का नहीं!

'और फिर वह आँधी की तरह चली गई। मेरा सिर चकरा रहा था। कलेजा चिरा जा रहा था। पैरों के नीचे की धरती खिसकी जा रही थी। मैं चुपचाप सिर झुकाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। रात के बारह बजे उठकर जब मैं अपने कमरे में पहुँचा तो देखा कि उसके कमरे में बत्ती जल रही थी। उसका कमरा मुझसे बिलकुल लगा हुआ था। मैंने धीरे-से उसका दरवाजा खटखटाया। उसने दरवाजा खोला और मेरी आँखों के आँसू देखे।

'मैंने लगभग रोते हुए कहा—मुझे तुमसे मुहब्बत है; मैं तुमसे विवाह करना

वह सारा हाल तो तुम्हें मालूम है ही। दो सौ पौण्ड जो तुमने नकद दिये थे वे और छः सौ पौण्ड अँगूठी के, इस तरह आठ सौ पौण्ड जेब में रखे मैं उस बार में बैठा सोच रहा था और पी रहा था। मुझे विचार आया कि अब मैं बिलकुल स्वतंत्र हूँ, क्योंकि तुमने तो मुझे निकाल ही दिया था। तो फिर क्यों न आखिरी बार जाल फेंककर उसे वश में कर लूँ?

'दो दिन बाद मैं फिर ब्राइटन पहुँचा और दरवाजे पर जाकर घंटी बजाई। उसकी हँसती सूरत दिखाई दी।

'मैं यह कहता हुआ कि "लो मैं आ गया हूँ, तुम्हारे नाम की माला जपता हुआ। अब चलो, सीधे चर्च में।" एकदम अन्दर पहुँच गया। उसके चेहरे पर प्रसन्न मुस्कराहट थी।

'दीवानखाने में जाकर देखा तो एक नवयुवक बैठा था जो देखने में हृष्ट-पुष्ट, सशक्त और सुन्दर था। ज्योंही मैं पास पहुँचा वह मुझसे बोली—यह हैं मेरे होने-वाले पति, इनसे मिलिए। पन्द्रह दिन पहले हम एक-दूसरे से मिले, मुहब्बत हुई और परसों विवाह होनेवाला है।

'इतना कहकर उसने उस युवक को मेरा परिचय दिया कि यह हमारे एक परिचित हैं। उसके बाद मेरे पास कहने को रह ही क्या गया था? अपना काँपता हुआ हाथ बढ़ाकर मैंने उससे मिलाया और चुपचाप बैठ गया। मुझे बताया गया कि वह नवयुवक एक सैनिक अफसर था।

'यह कहते हुए कि मुझे तो अपने पिता-जैसे ही सैनिक पति की आवश्यकता थी और वह मुझे मिल गया, उसने अपने भावी पति का गाल चूम लिया। इधर-उधर की बातें करता हुआ मैं बैठा रहा। इतने में उसकी मा आई और शिष्टाचार के बाद मुझे एक कोने में ले गई और बोली—यदि समझदार आदमी हो तो अब हमेशा के लिए इस घर का रास्ता भूल जाओ।

'मैं कुछ बोल न सका। फिर उसने सुझाया कि जरूरी काम का बहाना करके मुझे वहाँ से चल देना चाहिए।

'अन्त में मरे हुए स्वर में बहाना बनाकर मैंने अपना रास्ता लिया। मेरी जिन्दगी बेकार हो गई थी। तुम भी गईं और वह भी। काफी रात बीते मैं लौटा और टेम्स के किनारे जा बैठा। टेम्स और मैं अकेले थे। मेरा भूतकाल खंडहर हो गया था।

मैंने हिसाब लगाकर देखा कि भूतकाल का क्या शेष बचा है? तुम्हारे पास से मिले हुए दो सौ पौण्ड और अँगूठी के पैसे बाकी थे। मुझे एक विचार आया कि भूतकाल से अपने को क्या लेना-देना! पैसा कौन-सा सुख दे सका है और उसके अभाव में ऐसा दुःख भी क्या होना है। यह सोचकर मैं जोर से हँसा और सौ-सौ पौण्ड के आठों नोटों में तम्बाकू भरकर सिगरेट बनाई और मजे से पीने लगा। कुछ ही देर में वह मोटी सिगरेट जलकर राख हो गई।'

वह रुका। मार्था के मुँह पर विषाद छा गया, रोडनी भी उदास था।

'बेसल, तुझ में भी अलौकिकता के ऐसे अंश हैं, इसकी तो हमने कभी भी कल्पना नहीं की थी।' रोडनी बोल उठा।

'सचमुच, मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि तू इतना त्यागी होगा।' मार्था ने खिलकर कहा।

'न मैंने ही सोचा था। उस घटना ने मुझे जीवन में पहली बार अन्तर्मुख किया। फिर मैं खड़ा हुआ। मेरी जेब में सिर्फ सात-आठ शिलिंग पड़े थे। मैंने निर्णय किया कि अब मैं किसी का एहसान नहीं लूँगा; इन आठ शिलिंगों पर ही अपने भावी जीवन की इमारत खड़ी करूँगा। साथ ही मेरे हृदय में कटुता भर गई। नारी-जाति के प्रति घृणा से मेरा मन भर गया था। मैंने निश्चय किया कि अब मैं कभी स्त्री का संग नहीं करूँगा और कदाचित् संग हो गया तो कभी उसका रंग अपने पर चढ़ने नहीं दूँगा। किन्तु वे सारे विचार कोरी भावुकता निकली।

'वहाँ से मैं कुत्तों की रेस में गया और ढाई शिलिंग बाजी पर लगाया। सौभाग्य से मुझे एक पौंड मिल गया। फिर से दाव लगाया और पाँच शिलिंग पर दो पौण्ड जीता। इसी तरह चार पौण्ड हो गये। मैंने एक पौण्ड प्रति सप्ताह किराये पर एक कमरा ले लिया। मुझे आभास होता था कि मेरे दिन फिर रहे हैं।

'दूसरे दिन बस में बैठकर मैं बैंक स्टेशन उतरा और स्टाक एक्सचेंज की ओर चलने लगा। एक छोटे-से शेअर दलाल के दफ़्तर में पहुँचकर मैंने शेअरों के भाव पूछे और तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। दलाल ने मुझे बतलाया कि अमुक शेअर लेने जैसे हैं। मैंने एक खनिज कम्पनी के दस शेअर वायदे पर लिये और दो पौण्ड डिपाज़िट कर दिये।

'किस्मत का खेल निराला है। जर्मनी युद्ध की तैयारी कर रहा है, ऐसी जोर-

दार अफवाह उड़ी और शेअरों के भाव पन्द्रह दिन में ड्योढ़े हो गये। मुझे बीस पौण्ड नफा हुआ। फिर दस पौण्ड डिपाजिट रखकर पचास शेअर लिये। हिटलर ने सत्ता हथिया ली है, यह समाचार आते ही मेंगनीज़ के शेअरों का भाव उछल-कर तीन गुना हो गया। उन तीन महीनों में मैंने स्टाक एक्सचेंज से करीब पाँच सौ पौण्ड कमाये। फिर क्या था! मैंने कोयला और लोहा कम्पनियों के शेअरों का सौदा शुरू कर दिया और इधर-उधर घूमकर कुछ अन्दरूनी बातों का पता लगाकर ऐसी चालें चलीं कि मेरा नाम शेअर बाजार में मशहूर हो गया। किस्मत से मेरे दो-चार दाँव बिलकुल सही पड़े और खरीद-बेच करनेवालों को मुझ पर विश्वास हो गया।

'उन्हीं दिनों यूरोप रहनेवाली एक धनवान यहूदी युवती से अपने दलाल के यहाँ मेरा परिचय हुआ। उसने दो-तीन बार, मेरा बताया दाँव खेला और अच्छा नफा कमाया। उसे मुझसे श्रद्धा हो गई। फिर तो वह बार-बार मुझे अपने घर बुलाती और भोजन का निमंत्रण भी देती। उसने मुझसे इकरार किया कि मेरे दाँव पर उसे जो भी नफा होगा उसका बीस प्रतिशत मुझे देगी। नुकसान की जिम्मेवारी मेरी नहीं थी। धीरे-धीरे अपना सारा काम-काज उसने मुझे सौंप दिया और मुझे याद है कि एक वर्ष में उसे चालीस-पचास हजार पौण्ड मिले, जिनमें से करीब दस हजार पौण्ड का मालिक मैं था। फिर तो शेअर बाजार में मेरे नाम का डंका बजने लगा। अब मैं न्यूयार्क के बाजारों में भी सौदा करने लगा। उस युवती के साथ मेरी मुहब्बत भी हो गई थी। वैसे वह विवाहिता थी और उसके पति ने उसे छोड़ दिया था। मेरी उससे खूब पटने लगी। लेकिन जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि संग था, रंग नहीं था। उसके पास पहले से तीन-चार लाख पौण्ड थे और अब शेअरों के व्यापार में वे दूने हो गये थे। मेरे पास भी पाँच वर्ष में लाख-डेढ़ लाख पौण्ड जमा हो गये थे। एक दिन अकस्मात् उसे पेट का दर्द शुरू हुआ। ऑपरेशन कराया गया, लेकिन टेबल पर ही उसका देहान्त हो गया। उस युवती का उपकार मैं जीवन-भर नहीं भूल सकता; क्योंकि उसी ने मेरी सम्पन्नता की नींव डाली थी।

'उसकी मृत्यु के पश्चात् मुझे संसार से अरुचि हो गई। धन बढ़ रहा था, किन्तु सुख नहीं। मेरे पास एक अच्छी राल्स रॉयस गाड़ी थी और दैनिक उपयोग के लिए एक हम्बर भी रखता था। मैंने हेम्स्टेड में अच्छी जायदाद खरीदी और

टाकों में भी एक मकान ले लिया। बाद में मुझे उस युवती के सोलीसिटर ने बत-लाया कि अपने वसीयतनामे में उसने मुझे पचास हजार पौण्ड देने का उल्लेख किया था।

'मेरी किस्मत का सितारा बुलन्दी पर था। मैं दो-तीन कम्पनियों का डायरेक्टर भी बन गया और इज्जत-आबरू भी बढ़ने लगी।

'उन्हीं दिनों एक शाम को जब मैं अपनी रॉल्स में हॉबर्न से गुजर रहा था तो भीड़ के कारण मुझे रुकना पड़ा। एक हॉकर ने मुझसे "नूरज्ञान" का अंक लेने की प्रार्थना की। मैंने कुतूहलवश उसे छः पेन्स देकर एक अंक खरीद लिया। ऊपर-ऊपर से देख रहा था कि मोटर चल दी। मैं अपने हैम्स्टेड के मकान पर पहुँचा। बटलर ने मेरे आगे व्हिस्की और सोडे की बोतलें रख दीं और मैं सोफे पर पड़ा-पड़ा वह अंक देखने लगा।

'उसके पहले ही लेख ने मुझे प्रभावित किया। बात सीधी-सादी थी, लेकिन उसे रखने का ढंग अनोखा था। ऊपर शीर्षक था "जो छोड़ता है वह जीता है।" भाव यह था कि लेने से मानवता संकुचित होती है और त्याग से उसका विकास होता है। त्याग करनेवाला ही उत्तम मानव है, क्योंकि उसका चित्त शान्त होता है, उसकी ममता व्यापक हो जाती है, वह लघु मिटकर विराट बन जाता है। और जो स्वेच्छापूर्वक त्याग नहीं करता उसे विवश होकर भी त्याग तो करना ही पड़ता है। विवश होकर किया हुआ त्याग उसके हृदय में डंक पैदा करता है, वह द्वेष से उन्मत्त हो जाता है; मारने जाता है और स्वयं मरता है। परमात्मा की महत्ता उसकी त्याग-वृत्ति में ही निहित है। उसे यदि ग्रहण की वृत्ति होती तो वह सृष्टि को उत्पन्न ही नहीं करता।

'ये विचार मेरे हृदय को छू गये। उस पत्र का मैं ग्राहक बन गया। उसके अग्रलेखों का मैं पारायण और मनन करने लगा। नाथ के शब्द मेरी आँखों के आगे नाचने लगे। उन शब्दों में कोई दैवी शक्ति भरी है ऐसा भास मुझे होने लगा। उन विचारों ने मेरी मनःसृष्टि बदल दी। कई बार नाथ की विचारधारा मेरे कानों से टकराती थी। मैं कोई स्वप्न देख रहा होऊँ इस तरह वे शब्द मुझसे कोई अलौकिक बात कह जाते थे। उसकी प्रतिध्वनि मेरे हृदय में गूँज उठती थी। कोई मुझसे कहता था कि त्याग की महिमा समझ। आनन्द राग में नहीं, त्याग

दार अफवाह उड़ी और शेअरों के भाव पन्द्रह दिन में ड्योढ़े हो गये। मुझे बीस पौण्ड नफा हुआ। फिर दस पौण्ड डिपाजिट रखकर पचास शेअर लिये। हिटलर ने सत्ता हथिया ली है, यह समाचार आते ही मेंगनीज़ के शेअरों का भाव उछल-कर तीन गुना हो गया। उन तीन महीनों में मैंने स्टाक एक्सचेंज से करीब पाँच सौ पौण्ड कमाये। फिर क्या था! मैंने कोयला और लोहा कम्पनियों के शेअरों का सौदा शुरू कर दिया और इधर-उधर घूमकर कुछ अन्दरूनी बातों का पता लगाकर ऐसी चालें चलीं कि मेरा नाम शेअर बाजार में मशहूर हो गया। किस्मत से मेरे दो-चार दाँव बिलकुल सही पड़े और खरीद-बेच करनेवालों को मुझ पर विश्वास हो गया।

'उन्हीं दिनों यूरोप रहनेवाली एक धनवान यहूदी युवती से अपने दलाल के यहाँ मेरा परिचय हुआ। उसने दो-तीन बार, मेरा बताया दाँव खेला और अच्छा नफ़ा कमाया। उसे मुझसे श्रद्धा हो गई। फिर तो वह बार-बार मुझे अपने घर बुलाती और भोजन का निमंत्रण भी देती। उसने मुझसे इकरार किया कि मेरे दाँव पर उसे जो भी नफ़ा होगा उसका बीस प्रतिशत मुझे देगी। नुकसान की जिम्मेवारी मेरी नहीं थी। धीरे-धीरे अपना सारा काम-काज उसने मुझे सौंप दिया और मुझे याद है कि एक वर्ष में उसे चालीस-पचास हजार पौण्ड मिले, जिनमें से करीब दस हजार पौण्ड का मालिक मैं था। फिर तो शेअर बाजार में मेरे नाम का डंका बजने लगा। अब मैं न्यूयार्क के बाजारों में भी सौदा करने लगा। उस युवती के साथ मेरी मुहब्बत भी हो गई थी। वैसे वह विवाहिता थी और उसके पति ने उसे छोड़ दिया था। मेरी उससे खूब पटने लगी। लेकिन जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि संग था, रंग नहीं था। उसके पास पहले से तीन-चार लाख पौण्ड थे और अब शेअरों के व्यापार में वे दूने हो गये थे। मेरे पास भी पाँच वर्ष में लाख-डेढ़ लाख पौण्ड जमा हो गये थे। एक दिन अकस्मात् उसे पेट का दर्द शुरू हुआ। ऑपरेशन कराया गया, लेकिन टेबल पर ही उसका देहान्त हो गया। उस युवती का उपकार मैं जीवन-भर नहीं भूल सकता; क्योंकि उसी ने मेरी सम्पन्नता की नींव डाली थी।

'उसकी मृत्यु के पश्चात् मुझे संसार से अरुचि हो गई। धन बढ़ रहा था, किन्तु सुख नहीं। मेरे पास एक अच्छी राल्स रॉयस गाड़ी थी और दैनिक उपयोग के लिए एक हम्बर भी रखता था। मैंने हेम्स्टेड में अच्छी जायदाद खरीदी और

टार्की में भी एक मकान ले लिया। बाद में मुझे उस युवती के सोलीसिटर ने बत-लाया कि अपने वसीयतनामे में उसने मुझे पचास हजार पौण्ड देने का उल्लेख किया था।

'मेरी क़िस्मत का सितारा बुलन्दी पर था। मैं दो-तीन कम्पनियों का डायरेक्टर भी बन गया और इज्जत-आबरू भी बढ़ने लगी।

'उन्हीं दिनों एक शाम को जब मैं अपनी रॉल्स में हॉबर्न से गुज़र रहा था तो भीड़ के कारण मुझे रुकना पड़ा। एक हाकर ने मुझसे "गुडमान" का अंक लेने की प्रार्थना की। मैंने कुतूहलवश उसे छः पेन्स देकर एक अंक खरीद लिया। ऊपर-ऊपर से देख रहा था कि मोटर चल दी। मैं अपने हेम्स्टेड के मकान पर पहुँचा। बटलर ने मेरे आगे व्हिस्की और सोडे की बोतलें रख दीं और मैं सोफे पर पड़ा-पड़ा वह अंक देखने लगा।

'उसके पहले ही लेख ने मुझे प्रभावित किया। बात सीधी-सादी थी, लेकिन उसे रखने का ढंग अनोखा था। ऊपर शीर्षक था "जो छोड़ता है वह जीता है।" भाव यह था कि लेने से मानवता संकुचित होती है और त्याग से उसका विकास होता है। त्याग करनेवाला ही उत्तम मानव है, क्योंकि उसका चित्त शान्त होता है, उसकी ममता व्यापक हो जाती है, वह लघु मिटकर विराट बन जाता है। और जो स्वेच्छापूर्वक त्याग नहीं करता उसे विवश होकर भी त्याग तो करना ही पड़ता है। विवश होकर किया हुआ त्याग उसके हृदय में डंक पैदा करता है, वह द्वेष से उन्मत्त हो जाता है; मारने जाता है और स्वयं मरता है। परमात्मा की महत्ता उसकी त्याग-वृत्ति में ही निहित है। उसे यदि ग्रहण की वृत्ति होती तो वह सृष्टि को उत्पन्न ही नहीं करता।

'ये विचार मेरे हृदय को छू गये। उस पत्र का मैं ग्राहक बन गया। उसके अग्रलेखों का मैं पारायण और मनन करने लगा। नाथ के शब्द मेरी आँखों के आगे नाचने लगे। उन शब्दों में कोई दैवी शक्ति भरी है ऐसा भास मुझे होने लगा। उन विचारों ने मेरी मनःसृष्टि बदल दी। कई बार नाथ की विचारधारा मेरे कानों से टकराती थी। मैं कोई स्वप्न देख रहा होऊँ इस तरह वे शब्द मुझसे कोई अलौकिक बात कह जाते थे। उसकी प्रतिध्वनि मेरे हृदय में गूँज उठती थी। कोई मुझसे कहता था कि त्याग की महिमा समझ। आनन्द राग में नहीं, त्याग

'कुछ नहीं; जब तुमने सुना ही नहीं तो फिर कौन बताये ? है कुछ डाक में ?'

'हाँ, अपनी मित्र पोर्टसईद पहुँच गई है। मार्साई से पत्र लिखा है; तुम्हें खूब-खूब याद किया है।'

'बड़ा अच्छा लगता है। कोई महिला याद करती है, यह सुनते ही मन कैसा प्रफुल्लित हो उठता है! और देखने पर तो न जाने क्या हो जाये! वेसल ठहरे महात्मा, हम तो बेचारे मनुष्य ही हैं अभी।'

'होंगे भाई, तुम भी महात्मा हो जाओगे। अन्तर की ठेस तो लगने दो।' मार्था ने धीरे-से कहा।

२५ : मंडल की बैठक

मूँगफली खाने के बाद कॉफी पीकर तीनों व्यक्ति उठे। आठ बज चुके थे और बैठक की तैयारी जल्दी-से-जल्दी करनी थी। तीनों ऊपर के बड़े हाल में आये।

कुर्सियाँ जमा दी गई थीं और एक नौकर और एक नौकरानी मिलकर सफाई कर रहे थे। मार्था उन्हें सूचनाएँ देती जाती थी। हाल के मंच पर एक बड़ी और उसके दोनो ओर दो छोटी कुर्सियाँ रख दी गई थीं।

एक मेज पर कागजों का पुलिन्दा पड़ा था। जब नौकर ने रोडनी का ध्यान उस पुलिन्दे की ओर आकर्षित किया तो उसने पूछा—सारी डाक और नोट्स् आ गये हैं जेम्स ?

'जी हाँ।' इतना कहकर जेम्स पुनः अपने काम में लग गया।

'पर्चे और पुस्तिकाएँ कहाँ हैं मेरी ?'

'देती हूँ साहब!' कहकर नौकरानी मेण्टलपीस पर रखी पुस्तिकाएँ ले आई।

'मुझे कौन-सा काम दोगी मार्था ?' वेसल ने पूछा।

'जो तुम पसन्द करो।'

'मुझे तो पसन्द है मास्टर के जूते साफ करना, उनके कपड़े धो देना....'

'नहीं, यह सब तो वह स्वयं कर लेते हैं। फिलहाल तो तुम पर्चे बाँटने का काम लो, फिर बाद में देखा जायेगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

धीरे-धीरे मंडल के सदस्य आने लगे। जेकब आया, रॉबर्ट आया, मेगी और

जेसिका भी आ गई; जॉन और बारबरा भी आ पहुँचे और हॉल भरने लगा।

'आइर्लीन के क्या समाचार हैं ?' जेकब ने मार्था से पूछा।

'पोर्टसईद पहुँच गई है।'

'जॉन, अबकी तुमने प्रूफ-रीडिंग में बड़ी असावधानी की।' जेकब ने जॉन को पकड़ा।

'अरे भई, तुम जानते तो हो कि मुझे प्रेस और वहाँ से जिल्दसाज के यहाँ दौड़ते रहना पड़ता है। मैंने प्रूफ मेगी को सौंप दिये थे।' कहकर जॉन ने मेगी की ओर देखा।

'जेकब, मैं जैसा प्रूफ-रीडिंग कर सकती हूँ, तुम जानते ही हो। जैसा आता था कर दिया। क्या बहुत भूलें रह गई हैं ?'

'देखो न, "गूढ़ज्ञान" के बदले "मूढ़ज्ञान" छप गया है। अगले अंक में मुझे भूल-सुधार में लिखना होगा कि मूढ़ज्ञान मंडल का नहीं, प्रूफरीडर का है।'

'रॉबर्ट, तुम्हारा सरक्युलेशन फिगर तैयार हो गया ?' रोडनी ने पूछा।

'हाँ, लन्दन में पाँच हजार आठ सौ बावन, उत्तरी ब्रिटेन में दो हजार सात सौ चौबीस और दक्षिण में दो हजार इकसठ; वेल्स में पाँच सौ इक्कीस, आयरलैण्ड में तेरह सौ अट्ठाईस और स्कॉटलैण्ड में सिर्फ चार सौ ग्यारह....हमारे यहाँ की संख्या कुछ कम है।'

'कम तो होनी ही चाहिए। तुम्हारे यहाँ पाँच के बीच एक खरीदता है।' जेसिका ने कटाक्ष किया।

'यानी ग्रेट-ब्रिटेन में करीब बारह हजार, कनाडा, युनाइटेड स्टेटस् और वेस्ट इण्डीज़ में मिलाकर चार हजार, अफ्रीका में डेढ़ हजार, ऑस्ट्रेलिया में दो हजार, हिन्दुस्तान में दो सौ और बाकी सब देशों में सात-आठ हजार—सब मिलाकर बीस हजार ग्राहक हो जाते हैं।'

'हुर्र्र्रें....थ्री चीयर्स रॉबर्ट को!' जेसिका, मेगी, मार्था, रोडनी, जेकब, जॉन सब एक साथ बोल उठे।

'और यह सारी बिक्री एक ही वर्ष में।' मार्था ने उत्साहपूर्वक कहा।

'यह आ गये लोएन्स्टाइन। जनाब, अब आप जर्मन, फ्रेञ्च और इटालियन संस्करणों की बिक्री-संख्या बतलाइए।' रॉबर्ट ने कहा।

'कुछ नहीं; जब तुमने सुना ही नहीं तो फिर कौन बताये? है कुछ डाक में?'

'हाँ, अपनी मित्र पोर्टसईद पहुँच गई है। मार्साई से पत्र लिखा है; तुम्हें खूब-खूब याद किया है।'

'बड़ा अच्छा लगता है। कोई महिला याद करती है, यह सुनते ही मन कैसा प्रफुल्लित हो उठता है! और देखने पर तो न जाने क्या हो जाये! बेसल ठहरे महात्मा, हम तो बेचारे मनुष्य ही हैं अभी।'

'होगे भाई, तुम भी महात्मा हो जाओगे। अन्तर की ठेस तो लगने दो।' मार्था ने धीरे-से कहा।

२५ : मंडल की बैठक

मूँगफली खाने के बाद कॉफी पीकर तीनों व्यक्ति उठे। आठ बज चुके थे और बैठक की तैयारी जल्दी-से-जल्दी करनी थी। तीनों ऊपर के बड़े हाल में आये।

कुर्सियाँ जमा दी गई थीं और एक नौकर और एक नौकरानी मिलकर सफाई कर रहे थे। मार्था उन्हें सूचनाएँ देती जाती थी। हाल के मंच पर एक बड़ी और उसके दोनो ओर दो छोटी कुर्सियाँ रख दी गई थीं।

एक मेज पर कागजों का पुलिन्दा पड़ा था। जब नौकर ने रोडनी का ध्यान उस पुलिन्दे की ओर आकर्षित किया तो उसने पूछा—सारी डाक और नोट्स् आ गये हैं जेम्स?

'जी हाँ।' इतना कहकर जेम्स पुनः अपने काम में लग गया।

'पर्चे और पुस्तिकाएँ कहाँ हैं मेरी?'

'देती हूँ साहब!' कहकर नौकरानी मेण्टलपीस पर रखी पुस्तिकाएँ ले आई।

'मुझे कौन-सा काम दोगी मार्था?' बेसल ने पूछा।

'जो तुम पसन्द करो।'

'मुझे तो पसन्द है मास्टर के जूते साफ करना, उनके कपड़े धो देना....'

'नहीं, यह सब तो वह स्वयं कर लेते हैं। फिलहाल तो तुम पर्चे बाँटने का काम लो, फिर बाद में देखा जायेगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

धीरे-धीरे मंडल के सदस्य आने लगे। जेकब आया, रॉबर्ट आया, मेगी और

जेसिका भी आ गई; जॉन और बारबरा भी आ पहुँचे और हॉल भरने लगा।

'आइलीन के क्या समाचार हैं?' जेकब ने मार्था से पूछा।

'पोर्टसईद पहुँच गई है।'

'जॉन, अबकी तुमने प्रूफ-रीडिंग में बड़ी असावधानी की।' जेकब ने जॉन को पकड़ा।

'अरे भई, तुम जानते तो हो कि मुझे प्रेस और वहाँ से जिल्दसाज के यहाँ दौड़ते रहना पड़ता है। मैंने प्रूफ मेगी को सौंप दिये थे।' कहकर जॉन ने मेगी की ओर देखा।

'जेकब, मैं जैसा प्रूफ-रीडिंग कर सकती हूँ, तुम जानते ही हो। जैसा आता था कर दिया। क्या बहुत भूलें रह गई हैं?'

'देखो न, "गूढ़ज्ञान" के बदले "मूढ़ज्ञान" छप गया है। अगले अंक में मुझे भूल-सुधार में लिखना होगा कि मूढ़ज्ञान मंडल का नहीं, प्रूफरीडर का है।'

'रॉबर्ट, तुम्हारा सरक्युलेशन फिगर तैयार हो गया?' रोडनी ने पूछा।

'हाँ, लन्दन में पाँच हजार आठ सौ बावन, उत्तरी ब्रिटेन में दो हजार सात सौ चौबीस और दक्षिण में दो हजार इकसठ; वेल्स में पाँच सौ इक्कीस, आयरलैण्ड में तेरह सौ अट्ठाईस और स्कॉटलैण्ड में सिर्फ चार सौ ग्यारह....हमारे यहाँ की संख्या कुछ कम है।'

'कम तो होनी ही चाहिए। तुम्हारे यहाँ पाँच के बीच एक खरीदता है।' जेसिका ने कटाक्ष किया।

'यानी ग्रेट-ब्रिटेन में करीब बारह हजार, कनाडा, युनाइटेड स्टेटस् और वेस्ट इण्डीज़ में मिलाकर चार हजार, अफ्रीका में डेढ़ हजार, ऑस्ट्रेलिया में दो हजार, हिन्दुस्तान में दो सौ और बाकी सब देशों में सात-आठ हजार—सब मिलाकर बीस हजार ग्राहक हो जाते हैं।'

'हुर्र्र्रे....थ्री चीयर्स रॉबर्ट को!' जेसिका, मेगी, मार्था, रोडनी, जेकब, जॉन सब एक साथ बोल उठे।

'और यह सारी बिक्री एक ही वर्ष में।' मार्था ने उत्साहपूर्वक कहा।

'यह आ गये लोएन्स्टाइन। जनाब, अब आप जर्मन, फ्रेञ्च और इटालियन संस्करणों की बिक्री-संख्या बतलाइए।' रॉबर्ट ने कहा।

'यहाँ सब जबानी याद रखते हैं। सुनिए, जर्मन दो हजार, इटालियन एक हजार, फ्रेञ्च पाँच सौ....लेकिन फ्रान्सवाले आपकी यह सब खुराफात पढ़ें क्यों? फिर मोंमार्त्रे में सैर-सपाटा कौन करे? बाकी कुल मिलाकर औसत कम नहीं है, साढ़े तीन हजार है!'

'आरम्भ देखते हुए यह संख्या बुरी नहीं है।' रॉबर्ट ने कहा।

'रूसी भाषा में भी आरम्भ करना चाहिए।' मेगी ने कहा।

'रूसी भाषा में प्रारम्भ करना हँसी-खेल नहीं है। रूसी लोग इस सब को वहम और ढोंग कहकर बन्द ही नहीं कर देंगे, अगर हममें से कोई वहाँ गया तो उसे जासूस करार देकर गोली से उड़ा भी देंगे। फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम्हें वहाँ भेजने की व्यवस्था की जा सकती है।' लोएन्स्टाइन ने विनोदपूर्वक कहा।

'ना भई, ना। मुझे क्या पागल कुत्ते ने काटा है जो वहाँ जाऊँ! हाँ अगर तुम्हारी इच्छा जाने की हो तो मैं समर्थन करती हूँ।'

'जी, आपका बड़ा आभारी हूँ। लेकिन अभी तो मैं जीवित रहना चाहता हूँ।'

इस तरह वार्तालाप और हँसी-मजाक हो रहा था कि चार व्यक्तियों ने प्रवेश किया। आगे माया और उसके साथ एक बीसेक वर्ष की लड़की थी; पीछे एक अठारह वर्ष का लड़का और रणधीर।

वह लड़की बड़ी सुन्दर थी। दीप्तिमान चेहरा, गोरा, गुलाबी रंग और सुडौल, सुगठित शरीर। उसने हरे रंग की मद्रासी रेशमी साड़ी और पीले रंग का ब्लाउज़ पहिन रखा था। उसकी आकृति पर प्रकृति ने मानो अपनी लिपि में 'लुभावना' शब्द अंकित कर दिया था। माया की अपेक्षा उसका कद कुछ लम्बा था। माया का मुँह गोलाकार और नाक कुछ छोटी थी; शरीर कुछ अधिक भरा हुआ और रंग कम गोरा था। रणधीर के साथ चलता हुआ लड़का भी सुन्दर और सुडौल था; उसकी आकृति माया से मिलती-जुलती थी।

उन्हें देखते ही मार्था अगवानी को आगे बढ़ी और आदरपूर्वक ले जाकर अगली पंक्ति में बिठाया।

'हमें देर तो नहीं हुई?' माया ने पूछा।

'नहीं-नहीं, अभी तो नाथ भी नहीं आये। उनके आने में थोड़ी देर है।'

'यह मेरी पुत्री रोहिणी और यह पुत्र श्रीराज।' माया ने परिचय कराया।

'जवान तो एक भी नहीं दिखाई देता पापा, आपकी और आपसे भी अधिक उम्र के हैं। मेरी समझ में आधे से अधिक तो साठ वर्ष से ऊपर के यानी स्वर्ग के बिलकुल निकट ही हैं!' रोहिणी की बात सुनकर मा-बाप हँसने लगे।

हॉल खचाखच भर गया था। मंडल के सदस्यों ने अपने बिल्ले लगा लिये थे। बिल्ले गोल काले रंग के थे और बीच में एक छोटा-सा पीले रंग का गोला बना था। ऐसा नियम था कि 'महारात्रि' मंडल का कार्य रात में ठीक नौ बजे शुरू हो और तभी सदस्यगण बिल्ले धारण करें। जो अंतरंग मंडल के सदस्य थे वे अन्दर जाकर पीले रंग के कुरते भी पहिन आये थे।

वातावरण शान्त और गम्भीर हो गया और सबकी आँखें मंच पर लग गईं। मार्था और जेकब के मंच पर पहुँचते ही जेम्स ने तीन डंके बजाये और रोडनी ने पासवाला दरवाज़ा खोल दिया।

द्वार की राह रंतिनाथ ने प्रवेश किया और मंच पर रखी बड़ी कुर्सी पर आकर बैठ गया। सब लोग खड़े हो गये थे।

२६ : मिलन

रंतिनाथ को देखते ही माया और रणधीर के हृदय जोर से धड़क उठे। एक क्षण के लिए तो वे दोनो दिग्मूढ़ की भाँति आँखें फाड़े उसे देखते रह गये।

रंतिनाथ के कुर्सी पर बैठते ही वहाँ इतनी शान्ति व्याप्त हो गई कि यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज़ सुनाई दे जाती। उस शान्ति में माया और रणधीर ने एक-दूसरे की ओर आश्चर्य-भरी आँखों से देखा। दोनो के हृदय अब भी धड़क रहे थे।

आज 'महारात्रि' की बड़ी बैठक थी, इसलिए मंच के निकट ही अंतरंग मंडल के सदस्य पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। रंतिनाथ की कुर्सी के पीछे नीले काँच का एक बड़ा दीपक जल रहा था। उस एक दीपक के अतिरिक्त शेष सारे दीपक बुझा दिये गये थे। रंतिनाथ ने काला कुर्ता पहिन रखा था, जिस पर 'महारात्रि' का बिल्ला लगा हुआ था।

मार्था और रोडनी सबसे आगे खड़े थे। उनके पीछे बारबरा और जेकब, उनके पीछे रॉबर्ट और मेगी, फिर जेसिका और जॉन और उनके पीछे लोएन्स्टाइन तथा

दूसरे लोग दो-दो की पंक्ति में खड़े थे। खड़े रहनेवालों की संख्या तीसेक के लग-भग थी। उस पंक्ति के एक ओर सदस्य और दूसरी ओर आमंत्रित मेहमान बैठे थे।

रंतिनाथ अपने नेत्रों को दोनों भौंहों के बीच स्थिर किये प्रशान्त मुद्रा में बैठा था। उसकी आँखों में गाढ़ शान्ति दिखाई देती थी और मुँह पर प्रकाश की किरणें फैल रही थीं। सारा दृश्य अत्यन्त भव्य लग रहा था।

इस प्रकार आध मिनट बीत गया। फिर मार्था और रोडनी ने निम्नोक्त पंक्तियों का उच्चारण किया। पहली पंक्ति मार्था बोलती थी जिसे खड़े हुए सदस्य दुहराते थे। दूसरी पंक्ति रोडनी बोलता था और वह भी उसी प्रकार दुहराई जाती थी :

गूढ़ ज्ञान
गूढ़ ज्ञान
देखो ईश्वर
गूढ़ ज्ञान
हृदय में भरा
गूढ़ ज्ञान
चेतना पूर्ण
गूढ़ ज्ञान
महारात्रि का
गूढ़ ज्ञान
एक निशान
गूढ़ ज्ञान।

इस प्रकार बोलने के पश्चात् सभी सदस्यों ने अपने-अपने हाथ दोनो कानों पर रखकर गूढ़ संकेत किया और बैठ गये।

मार्था ने खड़े होकर मंडल की प्रवृत्तियों के बारे में संक्षिप्त भाषण दिया और रोडनी तथा जेकब ने भी दो शब्द कहे। रॉबर्ट ने आँकड़े प्रस्तुत किये और तब रंतिनाथ से बोलने की प्रार्थना की गई। रंतिनाथ ने कुर्सी में बैठे-बैठे ही अपना प्रव-चन प्रारम्भ किया।

प्रवचन संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित था। उसके कहने का आशय यह था कि आत्म-ज्ञान के बिना स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती; क्योंकि स्वतंत्रता में जो 'स्व' है उसका

ज्ञान प्रमुख और परमावश्यक है। स्वतंत्रता ही पूर्णता है और पूर्णता की प्राप्ति के हेतु शक्ति-सम्पन्न होने की रीति का नाम योग है। इस सरल-सी बात को भूलकर जो स्वतंत्रता की बात करते हैं उन्हें स्वयं ही ज्ञात नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं।

रतिनाथ की भाषण-शैली आकर्षक और स्पष्ट थी। उच्चारण शुद्ध और स्वर में गम्भीरता थी। बोलते समय उसकी दृष्टि नासाग्र पर रहती थी। चेहरा अत्यन्त सौम्य एवं शान्त प्रतीत होता था।

उसने करीब बीस मिनट तक भाषण दिया और तब उठकर अन्दर चला गया। मंडल की ओर से एक सदस्य ने उपसंहार किया और सब श्रोताओं से चाय-कॉफी पीने के लिए पासवाले कमरे में चलने की प्रार्थना की। सब उठ खड़े हुए।

माया और रणधीर की उत्कंठा उनके चेहरों पर अंकित थी। जो देखा वह उनके लिए कल्पनातीत था।

'क्यों न सीधा उन्हीं के पास चला जाये?' माया ने पति के कान में कहा।

'इतनी उतावली न हो, पहले ज़रा सोच तो लो।'

इतने में मार्था आ पहुँची और बोली—मुझे आशा है कि आप लोग उक-ताये तो नहीं ही होंगे।

'नहीं-नहीं, हमें तो बहुत आनन्द आया। आपके नेता से मिलना हो तो मिल सकते हैं न?' माया ने पूछा।

'ज़रूर; लेकिन थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय तो वह उन्हीं लोगों से मुलाकात कर रहे हैं जिन्हें पहले से समय दिया जा चुका है। करीब आधा घण्टा तो लग ही जायेगा। आपको आज अनुकूल न हो तो कल या परसों कभी भी आ सकती हैं।'

मार्था के शब्द सुनकर माया ने रणधीर की ओर देखा। इस बीच मार्था ने उनके सामने कॉफी और बिस्किट आदि रख दिये।

'तो बैठें, जल्दी क्या है?' पति ने कहा।

'मम्मी, मैं तो थक गई हूँ, इसलिए जाना चाहती हूँ।'

'मुझे भी जाना है।'

'अच्छा, तो तुम दोनो चले जाओ। जाकर मोटर भेज देना।'

'कितना शान्त और गम्भीर व्यक्ति है!' श्रीराज ने अभिप्राय दिया।

'होना ही चाहिए ! गम्भीरता के बिना कहीं ढोंग चला है ।' रोहिणी बोली ।

'ढोंग की उसने कौन-सी बात कही ? यही कहा कि स्वतंत्रता बाहर से प्राप्त करने की वस्तु नहीं है, अन्तर से प्राप्त करना चाहिए ।' श्रीराज ने जरा तेज होकर कहा ।

'लेकिन इसमें नवीनता क्या है ? इतनी-सी बात कहने के लिए इन सब बत्तियों की, बिल्लों की और कुत्तों की क्या जरूरत है ?'

'अपने बार डिनर के समय तुम लोग गाऊन नहीं पहिनते हो ? उसे ढोंग नहीं कहोगी ?'

'बेटे, तुम लोग वाहियात दलीलें न करो, नहीं तो अभी झगड़ पड़ोगे। श्रीराज, ले भाई, यह बिस्किट पापा को दे ।'

कुछ दूर खड़े रणधीर को बिस्किट भेजने के बहाने माया ने लड़कों की दलील-बाजी बन्द करा दी ।

'मम्मी, वह आदमी लगता तो बड़ा होशियार है ! बहुत योग्य मालूम होता है ।' रोहिणी ने प्रशंसा की ।

'होशियारी के बिना यह सब कैसे जम सकता है, बेटी ! कुछ लोग उसे ढोंग कहते हैं, कुछ सत्य भी कहते हैं । ऐसा ही चलता है दुनिया में ।'

'आपको क्या लगता है पापा ?' निकट आये रणधीर से रोहिणी ने पूछा ।

'तुम्हारी मम्मी ठीक ही कह रही हैं । दुनिया रंग-बिरंगी है ।'

बच्चे चल दिये । मार्था उन्हें दरवाजे तक छोड़ आई । बहुत-से लोग चले गये । लेकिन माया और रणधीर एक कोने में बैठे, बतियाते प्रतीक्षा करते रहे ।

'मैं अन्दर जाकर उनसे कहती हूँ कि आप लोग मिलना चाहते हैं ।' मार्था ने माया से कहा और अन्दर चली गई ।

रंतिनाथ एक दम्पति के साथ बातें कर रहा था । मार्था ने चिट्ठी रख दी । चिट्ठी में श्रीमान् तथा श्रीमती सिंह लिखा था । चिट्ठी देखकर उसने मार्था की ओर देखा और कहा कि उन्हें बिठाओ । मार्था ने बाहर आकर उन्हें सूचित किया और दूसरे लोगों से बातें करने लगी ।

'अब आपकी समझ में आया ? उन्होंने तो रंतिनाथ नाम धारण कर लिया है, इसलिए धर्मवीर को ढूँढ़ने के लिए सारा लन्दन भी छान मारे तो कहाँ से पता लग सकता है !'

'यहाँ एकदम कोई बात मत कर बैठना। पहले तेल देखो, तेल की धार देखो, उसके बाद जैसा उचित होगा करेंगे।'

'नहीं, मैं इतनी मूर्ख तो नहीं हूँ। पर ये सब औरतें तुम्हें कैसी लगती हैं?' इतना कहकर उसने पति की ओर देखा और मुस्कराई।

रणधीर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

घड़ी ने दस बजाये। मार्था ने जब देखा कि रंतिनाथ के पास बैठे हुए पति-पत्नी बाहर निकल आये हैं तो वह माया और रणधीर को अन्दर ले गई। दोनो के हृदय धड़क रहे थे; उनके हाथ-पैरों में भी कुछ कँपकँपी-सी हो रही थी, जिसे ध्यानपूर्वक देखनेवाला ही जान सकता था। 'आप दरवाजा खोलकर अन्दर जा सकते हैं,' इतना कहकर मार्था लौट गई। अन्दर जाने से पूर्व माया और रणधीर ने एक-दूसरे की ओर देखा और तब अन्दर प्रवेश किया।

उस विशाल कमरे में रखे हुए सोफे पर रंतिनाथ ध्यानावस्थित-सा बैठा था। उसके स्थिर नेत्र द्वार की ओर लगे थे। प्रवेश करते हुए युगल को उसने देखा।

माया और रणधीर तीन-चार कदम आगे बढ़े। रंतिनाथ की आँखें उन पर स्थिर थीं। उन दोनो की धड़कनें बढ़ गई थीं। वे लोग और दो कदम आगे बढ़े। माया का चेहरा खिल उठा, रणधीर ने भी अपने होंठ हिलाये। रंतिनाथ उन्हें स्थिर दृष्टि से एकटक देख रहा था। वह कुछ बोला नहीं, किन्तु हाथ के संकेत से दोनो को सोफों पर बैठने को कहा। हाथ बढ़ाते समय उसके चेहरे पर खुशी नाच उठी; उसने धीमे, मृदु स्वर में कहा—आओ; अरे, तुम कहाँ से?

वह बारी-बारी से माया और रणधीर को देखने लगा। माया के चेहरे पर विस्मय, उमंग, उल्लास आदि भाव एक-एक कर आने लगे। रणधीर का चेहरा आन्तरिक उल्लास से दीप्त हो उठा था।

'आश्चर्य, महान् आश्चर्य! हम तो निमंत्रण पाकर चले आये थे, आपसे मिलने की तो कल्पना भी नहीं थी!' रणधीर ने कहा।

'कैसी हो माया! तुम लोग कब यहाँ आये?'

'दो-तीन महीने से यूरोप में घूम रहे हैं। एकाध सप्ताह रुककर जाने का विचार कर रहे थे।'

'जल्दी तो नहीं है न? मैं जरा अपना काम पूरा कर लूँ?'

'बताने की कोई जरूरत भी नहीं।'

'कब आओगे?' माया ने पूछा।

'चार-पाँच दिन बाद। अच्छा, चलें। अब तो तुम लोग भी थक गये होगे।' रंतिनाथ ने कहा।

माया और रणवीर सन्तोष और आनन्द के साथ खड़े हुए। रंतिनाथ उन्हें देखता रहा। बाहर जाते-जाते माया ने फिर मुड़कर देखा।

२७ : तू आरती उतार

चार-पाँच दिन बाद आइलीन का हिन्दुस्तान पहुँचने का तार और स्टीमर से लिखा हुआ पत्र दोनो एक साथ मिले। पत्र में आशा और उत्साह के शब्द थे। लिखा था कि कुछ अँग्रेज और हिन्दुस्तानी यात्रियों को उसने स्टीमर में अपने मंडल की योजना समझाई। सभी ने खूब दिलचस्पी ली और तन-मन-धन से सहायता देने को तैयार हो गये। अँग्रेजों में दो-तीन सैनिक अफसर और राज्य के हाकिम भी थे। हिन्दुस्तानी लोग भी बड़े व्यापारी थे। उसने यह भी लिखा था कि रंतिनाथ और दो-चार साथियों को जल्दी-से-जल्दी हिन्दुस्तान आना चाहिए, क्योंकि उनकी उपस्थिति में कार्य बड़ी आसानी से और सफलतापूर्वक हो सकेगा।

मंडल ने आइलीन के पत्र पर विचार किया और निर्णय हुआ कि बेसल, मार्था और रंतिनाथ दस-बारह दिन बाद जानेवाले स्टीमर के द्वारा हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो जायें। रंतिनाथ जाने को तैयार हो गया और जोरों से तैयारियाँ की जाने लगीं।

शाम को पाँच बजे मार्था के घर यह सब निर्णय हो रहा था कि रंतिनाथ के नाम माया का फोन आया :

'छः बजे जरूर आना। तुम्हारी इच्छानुसार भोजन का समय सात बजे रखा है। जो-जो तुम्हें पसन्द था वह सब मैं अपने हाथ से बना रही हूँ। खाकर कहना कि मुझे याद है या बनाना भूल गई।'

'तुम भोजन बनाना नहीं भूली होगी, लेकिन मैं खाना जरूर भूल गया हूँ। ज्यादा तकलीफ की जरूरत नहीं; मैं बिलकुल सादा भोजन करूँगा—उबला हुआ साग, दाल और रोटी।'

'नहीं, खीर तो होगी ही। दही-बड़े और माताजी का प्रसाद भी लेना पड़ेगा।'

'तुम तो जिद्दी ही रहीं। लेकिन अब मेरे सामने तुम्हारी जिद नहीं चल सकती। जो मैं कह रहा हूँ वही बनाना होगा—सब उबला हुआ। माताजी उसे जरूर खा लेंगी।'

'जैसी तुम्हारी मर्जी। लेकिन दूसरा कौन है इतने शौक से खिलानेवाला?'

'खानेवाला भी तो शौक से आ रहा है। अच्छा, तो मैं छः बजे आ जाऊँगा।'

'मोटर भेज रही हूँ।'

'नहीं, मैं बस से ही आऊँगा।' इतना कहकर रंतिनाथ ने रिसीवर रख दिया।

'बड़ी भली महिला है!' मार्था ने कहा।

'हाँ, आप भले तो जग भला।'

'लगता है मंडल में सम्मिलित हो जायेंगे।' मार्था ने कहा।

'मंडल सभी के लिए खुला है। हमें न आग्रह करना चाहिए, न इनकार।'

छः बजे जब वह माया के घर पहुँचा तो माया और रणधीर दोनो ही आतुरता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

गोरी माया के कपाल में कुंकुम की बिन्दी खिल उठी थी। उसने लाल रंग की रेशमी साड़ी पहनी थी और रणधीर लाउंज सूट में था। रंतिनाथ ने वही कंगाल वेश धारण किया हुआ था। उसके आते ही दोनो प्रसन्न हो उठे।

'आखिर आ गये! मैं तो सोच रही थी कि पता नहीं महात्मा आयेंगे भी या नहीं!' माया ने विनोद किया।

'यानी तुम्हें महात्माओं पर विश्वास नहीं है।' रंतिनाथ ने भी विनोद किया।

'इस जीवन में आनन्द है?' माया ने पूछा।

थोड़ी देर तक रंतिनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, मन्द-मन्द मुस्कराता रहा।

'आनन्द न होता तो टिकता कैसे? किसी के आग्रह से तो स्वीकार किया नहीं है।' इतना कहकर वह गम्भीर हो गया।

आगे कुछ भी पूछने का साहस माया न कर सकी।

उसके हृदय में आनन्द और विषाद की लहरें उठ रही थीं।

'हमने भी अपने कार्यक्रम में फेरफार करके एक सप्ताह बढ़ा दिया है। अब तो तुम्हारे साथ ही चलेंगे।' रणधीर ने कहा।

'अच्छा किया। माया, जरा पानी लाओ।'

माया पानी ले आई और गिलास देकर खड़ी रही। उसकी दृष्टि रंतिनाथ के ऊपर से हटती ही नहीं थी। पानी पीकर जब उसने गिलास लौटाया तो माया के मुँह पर असामान्य सन्तोष और आँखों में परम सुख व्याप्त था।

'और दूँ?' उसने कोमल स्वर में पूछा।

'नहीं; बच्चे कहाँ गये?'

'आते ही होंगे।'

'यहाँ भी माताजी की पूजा करती हो, यह जानकर बड़ी खुशी हुई। रणधीर भी कुछ मानता है या नास्तिक ही रहा?'

'मानेंगे कैसे नहीं? मैं जो बैठी हूँ मनानेवाली!'

'वाह! तुम्हारी यह तानाशाही बच्चों को भी मिली है या नहीं?'

'रोहिणी तो हूबहू मेरे-जैसी है।'

'उसके लिए तुम्हें कोई रणधीर ढूँढ़ना होगा।'

'माताजी आप ही ढूँढ़ देंगी।'

'माताजी ही सब ढूँढ़ती हैं, मनुष्य नहीं।' इतना कहकर उसने आँखें मूँद लीं। फिर रणधीर की ओर देखकर पूछा, 'क्यों जमीन-जागीर के क्या हाल हैं?'

'पिछले दो वर्ष बहुत अच्छे गये। मौसम अनुकूल रहा।'

'किसानों के लिए कुछ किया?'

'स्कूल और अस्पताल खोले हैं, रास्ते बनवाये हैं और कुछ दूसरी सुविधाएँ भी कर दी हैं।'

'बहुत अच्छा किया तुमने! लेकिन लगान या कर तो नहीं बढ़ा दिये?'

'कुछ बढ़ाने तो पड़े हैं।'

'अपने खर्च भी कम किये हैं या ज्यों-के-त्यों हैं?'

कुछ देर तक रणधीर उत्तर न दे सका। फिर बोला—खर्च तो दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है, बच्चे भी बड़े हो रहे हैं।

'किसानों का खर्च भी तो बढ़ता होगा? बच्चे उनके भी तो होते हैं?'

रणधीर कुछ न बोल सका। लेकिन उसकी अन्तरात्मा कह रही थी कि बात रंतिनाथ की सच है!

'जमीन और जमीनदारी कुछ ही दिनों के मेहमान हैं।' माया ने उस अप्रिय प्रसंग पर पर्दा डालते हुए कहा।

'बच्चे दिखाई नहीं दिये।' रतिनाथ बोला।

'आते ही होंगे। मैंने कह दिया था कि मेहमान आनेवाले हैं इसलिए जल्दी आ जाना। अभी तो तुम्हारा परिचय मेहमान करके ही दिया है।'

'यही वास्तविक परिचय है। अभी जैसा तुमने कहा, जमीन-जागीर ही नहीं, सभी कुछ दो दिनों का मेहमान है।'

रतिनाथ के शब्दों में त्याग की जो ध्वनि थी उसने माया के हृदय में अलौकिक भावों का संचार कर दिया।

'कितना सत्य कहा तुमने!' उसने गहरी साँस लेकर कहा। फिर मानो कुछ याद आ गया हो इस तरह बोली, 'माँ गई, पिता गये, सास-ससुर गये, एक भाई और एक बहिन गई और....बहुत कुछ गया!'

अन्तिम शब्द कहकर वह रतिनाथ की ओर टक लगाये देखती रही। इतने में टेलीफोन की घंटी बज उठी और रणधीर उसे सुनने के लिए बाहर चला गया।

माया ने कहा—मेरा हृदय तो वैसा ही है; वहाँ तुम कुछ दिनों के मेहमान नहीं हो।

'माया, माया, माया! ग्रहण के आनन्द की अपेक्षा त्याग का आनन्द कम नहीं, अधिक ही है। भूल जाओ अब उन बातों को। बताओ, शेष जीवन के लिए क्या योजना है?'

माया के हृदय में अनुराग का अतलान्तक घुमड़ रहा था। उसके अंग काँप रहे थे। रतिनाथ का सान्निध्य उसे चलायमान किये दे रहा था।

'त्याग, त्याग, त्याग! कैसी बात करते हो धर्मवीर! मेरे त्याग के समक्ष तुम्हारा त्याग किस गिनती में है! भूलो नहीं कि त्याग सिर्फ घर-बार को छोड़ने में ही नहीं है। हृदय को दबाने में, उसे जीवित जला देने में भी त्याग है। अपने त्याग की बात मैं माता जगदम्बा के समक्ष अपने तप्त अश्रुओं के साथ प्रतिदिन निवेदित करती हूँ।'

रतिनाथ कुछ न बोला। चुपचाप खिड़की से बाहर देखने लगा। माया की आँखों में आँसू भर आये थे। इतने में रणधीर आ पहुँचा।

'पैसेज मिल गया है, सब एक ही स्टीमर में....।'

माया का मुँह दूसरी ओर था। धीमे और भरे हुए स्वर में उसने इतना ही कहा—बहुत अच्छा!

रोहिणी और श्रीराज भी आ गये।

'पापा, मैंने आज कितनी तेज मोटर दौड़ाई! यहाँ से रेडिंग और रेडिंग से आक्सफोर्ड एक घण्टे में ले गई। श्रीराज तो बिलकुल डरपोक है!'

रुँधा हुआ कंठ लिये माया खड़ी थी। उसने दोनो बच्चों को वात्सल्यपूर्वक छाती से लगा लिया।

'रोहिणी, श्रीराज! यही हैं उस मंडल के नेता जिन्हें तुमने उस दिन देखा था।' माया की आवाज़ रुँध रही थी, उसकी छाती अब भी ज़ोर-ज़ोर से धड़क रही थी। बच्चों ने रंतिनाथ को नमस्कार किया।

'तू इतना तेज ड्राइविंग करती है यह ठीक नहीं रोहिणी!' रणधीर के स्वर में उलहना था।

'मैं इसके साथ अब कभी मोटर में नहीं बैठूँगा।' श्रीराज बोल उठा।

रोहिणी कुछ न बोली; वह रंतिनाथ की ओर देख रही थी।

'आपका भाषण सुना था; आपकी फ़िलॉसफ़ी पर चर्चा करना चाहती हूँ।' रोहिणी ने निडरतापूर्वक कहा।

एकटक रोहिणी की ओर देखता हुआ रंतिनाथ धीरे-धीरे हँसने लगा। फिर उसने श्रीराज की ओर देखा।

'तुम्हारी यह बहिन बड़ी दुस्साहसी है, क्यों?'

'जी हाँ, और इसी तरह दुस्साहस करती रही तो कभी मोटर नहीं चला सकेगी!'

'तू क्या पढ़ती है, बेटी?' रंतिनाथ ने रोहिणी से पूछा।

'बैरिस्टर बनना चाहती हूँ। लन्दन युनिवर्सिटी से बी० ए० भी करने का विचार है। और जैसा कि मैंने अभी कहा, आपकी फ़िलॉसफी पर, या जो भी नाम आप उसे देते हों, चर्चा करना चाहती हूँ।'

'जल्दी तो नहीं है?'

'जल्दी तो नहीं है और आपकी इच्छा न हो, तो आग्रह भी नहीं है।' रोहिणी के शब्दों में लापरवाही थी।

'जमीन और जमीनदारी कुछ ही दिनों के मेहमान हैं।' माया ने उस अप्रिय प्रसंग पर पर्दा डालते हुए कहा।

'बच्चे दिखाई नहीं दिये।' रंतिनाथ बोला।

'आते ही होंगे। मैंने कह दिया था कि मेहमान आनेवाले हैं इसलिए जल्दी आ जाना। अभी तो तुम्हारा परिचय मेहमान करके ही दिया है।'

'यही वास्तविक परिचय है। अभी जैसा तुमने कहा, जमीन-जागीर ही नहीं, सभी कुछ दो दिनों का मेहमान है।'

रंतिनाथ के शब्दों में त्याग की जो ध्वनि थी उसने माया के हृदय में अलौकिक भावों का संचार कर दिया।

'कितना सत्य कहा तुमने!' उसने गहरी साँस लेकर कहा। फिर मानो कुछ याद आ गया हो इस तरह बोली, 'माँ गई, पिता गये, सास-ससुर गये, एक भाई और एक बहिन गई और....बहुत कुछ गया!'

अन्तिम शब्द कहकर वह रंतिनाथ की ओर टक लगाये देखती रही। इतने में टेलीफोन की घंटी बज उठी और रणधीर उसे सुनने के लिए बाहर चला गया।

माया ने कहा—मेरा हृदय तो वैसा ही है; वहाँ तुम कुछ दिनों के मेहमान नहीं हो।

'माया, माया, माया! ग्रहण के आनन्द की अपेक्षा त्याग का आनन्द कम नहीं, अधिक ही है। भूल जाओ अब उन बातों को। बताओ, शेष जीवन के लिए क्या योजना है?'

माया के हृदय में अनुराग का अतलान्तक घुमड़ रहा था। उसके अंग काँप रहे थे। रंतिनाथ का सान्निध्य उसे चलायमान किये दे रहा था।

'त्याग, त्याग, त्याग! कैसी बात करते हो धर्मवीर! मेरे त्याग के समक्ष तुम्हारा त्याग किस गिनती में है! भूलो नहीं कि त्याग सिर्फ घर-बार को छोड़ने में ही नहीं है। हृदय को दबाने में, उसे जीवित जला देने में भी त्याग है। अपने त्याग की बात मैं माता जगदम्बा के समक्ष अपने तप्त अश्रुओं के साथ प्रतिदिन निवेदित करती हूँ।'

रंतिनाथ कुछ न बोला। चुपचाप खिड़की से बाहर देखने लगा। माया की आँखों में आँसू भर आये थे। इतने में रणधीर आ पहुँचा।

'पैसेज मिल गया है, सब एक ही स्टीमर में....।'

माया का मुँह दूसरी ओर था। धीमे और मरे हुए स्वर में उसने इतना ही कहा—बहुत अच्छा!

रोहिणी और श्रीराज भी आ गये।

'पापा, मैंने आज कितनी तेज मोटर दौड़ाई! यहाँ से रेडिंग और रेडिंग से आक्सफोर्ड एक घण्टे में ले गई। श्रीराज तो बिलकुल डरपोक है!'

रुँधा हुआ कंठ लिये माया खड़ी थी। उसने दोनो बच्चों को वात्सल्यपूर्वक छाती से लगा लिया।

'रोहिणी, श्रीराज! यही हैं उस मंडल के नेता जिन्हें तुमने उस दिन देखा था।' माया की आवाज़ रुँध रही थी, उसकी छाती अब भी ज़ोर-ज़ोर से धड़क रही थी। बच्चों ने रंतिनाथ को नमस्कार किया।

'तू इतना तेज़ ड्राइविंग करती है यह ठीक नहीं रोहिणी!' रणधीर के स्वर में उलहना था।

'मैं इसके साथ अब कभी मोटर में नहीं बैठूँगा।' श्रीराज बोल उठा।

रोहिणी कुछ न बोली; वह रंतिनाथ की ओर देख रही थी।

'आपका भाषण सुना था; आपकी फ़िलॉसफ़ी पर चर्चा करना चाहती हूँ।' रोहिणी ने निडरतापूर्वक कहा।

एकटक रोहिणी की ओर देखता हुआ रंतिनाथ धीरे-धीरे हँसने लगा। फिर उसने श्रीराज की ओर देखा।

'तुम्हारी यह बहिन बड़ी दुस्साहसी है, क्यों?'

'जी हाँ, और इसी तरह दुस्साहस करती रही तो कभी मोटर नहीं चला सकेगी!'

'तू क्या पढ़ती है, बेटी?' रंतिनाथ ने रोहिणी से पूछा।

'बैरिस्टर बनना चाहती हूँ। लन्दन युनिवर्सिटी से बी० ए० भी करने का विचार है। और जैसा कि मैंने अभी कहा, आपकी फिलॉसफी पर, या जो भी नाम आप उसे देते हों, चर्चा करना चाहती हूँ।'

'जल्दी तो नहीं है?'

'जल्दी तो नहीं है और आपकी इच्छा न हो, तो आग्रह भी नहीं है।' रोहिणी के शब्दों में लापरवाही थी।

'इस तरह भी कहीं बोला जाता है ?' माया ने कुछ डपटते हुए कहा।

'मैं ठीक ही कह रही हूँ। मुझे धमकाने की कोई ज़रूरत नहीं। आप पापा को ही धुड़किए।'

रोहिणी की आँखों में आत्मविश्वास, निडरता और लापरवाही की झलक थी।

'रोहिणी, देख तो सही, खाना तैयार है या नहीं ?' कहकर रणधीर ने रोहिणी को काम पर लगा दिया। रोहिणी अन्दर चली गई।

'तू क्या पढ़ता है बेटा ?'

'मैं इञ्जीनियर बनना चाहता हूँ।'

'शाबाश, फिर क्या करेगा ?'

'सड़कें बनवाऊँगा, पुल बनवाऊँगा और नहरें भी। उत्तर प्रदेश में और मुख्यतः कुमायूँ तथा गढ़वाल प्रदेश में बहुत-सा काम है। हमारी बड़ी जागीर है; वहाँ बहुत काम किया जा सकता है।'

इतने में रोहिणी ने आकर कहा—खाना तैयार है। मैं टेबल लगवाती हूँ।

'इन कामों के लिए पैसे कहाँ से लायेगा बेटा ?' रतिनाथ ने पूछा।

'क्यों, पापा के पास तो बहुत-सा पैसा है।'

'लेकिन वह तुझे देंगे ?'

'क्यों नहीं देंगे ? निर्माण कार्यों से प्रजा को सुख-सुविधाएँ प्राप्त होंगी और आमदनी भी बढ़ेगी।'

'किसकी आमदनी ?'

'प्रजा की और फिर राज्य की भी।'

'अच्छा बेटा, तू जल्दी से पढ़कर नहरें, पुल और सड़कें बनाना शुरू कर दे; मैं तेरी जागीर में रहने आऊँगा।'

'ज़रूर आइए।'

माया ने आकर भोजन के लिए चलने को कहा तो सब भोजनगृह में पहुँचे। माया ने अपनी दाहिनी ओर रतिनाथ को तथा बायीं ओर पति को बिठाया। रतिनाथ के साथ रोहिणी बैठी और रणधीर के साथ श्रीराज।

एक कोने के साइड-बोर्ड पर अष्टभुजा माता की मूर्ति के समक्ष घी का दीपक जल रहा था। उस पर रतिनाथ की दृष्टि पड़ी।

'माया ! मुझे इस मूर्ति का स्मरण हो रहा है। मा हमेशा इसकी पूजा करती थी। उस समय मैं बिलकुल छोटा था। मा आरती उतारती और मैं हाथ जोड़कर आँखें मूँदे खड़ा रहता था। उन पाँच मिनट के अरसे में मुझे माता के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। आरती के पश्चात् मा मुझे प्रसाद देती तब मैं उनसे पूछता, मा, माताजी कहाँ चली गईं? मा मुझे मूर्ति बतलाकर कहती थीं कि वह तो यहीं। लेकिन मेरा मन मानता न था। मैं कहता कि नहीं मा, माताजी तो चली गईं; यहाँ मेरे सामने मेरे सिर पर हाथ रखे खड़ी थीं; अभी हाल चली गई ! और मैं फिर खेलने में लग जाता। रतनसिंह के साथ मैं घुड़सवारी के लिए चला जाता था। दूर-दूर के बर्फीले शिखरों को निहारता हुआ मैं अष्टभुजा के मन्दिर में जाता तब यह दृश्य मुझे याद हो आता। मुझे एकाकीपन का अनुभव होता और घर आकर मा से कहता था कि मा, चलो, आरती उतारो; मैं आँखें मूँदे खड़ा रहूँगा। मा मुझे खूब प्यार करती, मेरा सिर चूम लेती। माया, इस मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूँ ?'

किसी दैवी आवेश से प्रेरित वह उठा और माया की ओर देखने लगा।

'माया, चलो, तुम आरती उतारो ! जल्दी करो माया, चलो।' उसके शब्द मानवीय नहीं दैवी प्रेरणा से ओत-प्रोत थे। वह अभिभूत-सा मूर्ति के समक्ष पहुँचा और आँखें मूँदकर कहने लगा, 'मा, माया को तुम मेरी मा बना दो ! मा, माया को तुम मेरी मा बना दो ! आरती उतारो मा, आरती उतारो !'

माया ने आरती ली और घंटी बजाते हुए आरती उतारने लगी। रंतिनाथ के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। माया भी रो रही थी। रणधीर और बच्चे भावाविष्ट-से पीछे खड़े थे।

उस पाँच मिनट की अवधि में रंतिनाथ ने भगवती के साक्षात् दर्शन किये। उसके हृदय में बिजली-सी कड़क उठी और वह स्वयं विश्वरूप बन गया। देखते-ही-देखते उसके पाँव लड़खड़ाये और वह धरती पर गिर पड़ा। उसके नेत्र और हथेलियाँ खुली थीं। वह मरा नहीं; किन्तु मृत्यु के उस पार पहुँचकर विश्वमय हो गया था। सामान्य चेतना तिरोहित होकर उसमें महान् चेतना का आविर्भाव हो गया था। उसके मुखमंडल पर प्रकाश की किरणें फूट रही थीं और शरीर से विद्युत्-धाराएँ निकलने लगी थीं। रणधीर ने उसका स्पर्श किया, तो झटके के साथ पीछे हट

गया। रोहिणी और श्रीराज भी उसे स्पर्श न कर सके। रोती हुई माया ने उसका मस्तक अपनी गोद में रख लिया और उसके शरीर पर हाथ फेरने लगी। उसके हृदय की धड़कनें धक-धक-धक करती सुनाई दे रही थीं। चार-पाँच मिनट तक यही क्रम चलता रहा और धीरे-धीरे सारा कमरा किसी अपूर्व गन्ध से महक उठा। वह महक इतनी तीव्र थी कि रणधीर और बच्चे आश्चर्यान्वित हो उठे।

एकाध घंटे तक यही स्थिति रही। अन्त में महाचेतना के प्रदेश से वह फिर सामान्य चेतना के प्रदेश में आने लगा। उसकी आँखें फड़कीं। उँगलियाँ प्रकम्पित हुईं। इस बीच रणधीर ने डॉक्टर को बुला लिया था और वह इञ्जेक्शन देने की तैयारी कर रहा था।

'होश आ रहा है, तलवे ज़रा जोर से घिसो।'

'क्या हो गया है ?' रोहिणी ने पूछा।

'गिडिनेस। यकायक कोई आघात लगा हो, कोई दर्द उठा हो, या फिर.... पर, होश में तो आ रहे हैं।' डाक्टर ने कहा।

रंतिनाथ निराकुल, निरुद्वेग एकदम स्वस्थ मन उठकर खड़ा हुआ और रोती हुई माया का हाथ पकड़कर उसे खड़ा किया। उसका चेहरा आनन्द से उद्भासित हो रहा था।

'अब आप आराम से बैठिए, थोड़ी-सी ब्राण्डी दे रहा हूँ।' डॉक्टर ने कहा।

'नहीं डाक्टर, नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ब्राण्डी को बोतल में ही आराम से रहने दीजिए।'

डॉक्टर को कुछ दुःख और आश्चर्य भी हुआ।

'चलो माया, खाना खा लें। रणधीर और बच्चे भूखे हैं। आप भी चलिए डाक्टर!'

'नहीं जी, अब मैं जाऊँगा। आपकी तबियत बिलकुल ठीक है।'

रंतिनाथ डाक्टर की ओर देखता रहा। और बोला—डाक्टर, आपने यह अनुमान कैसे लगा लिया कि मैं अस्वस्थ था ?

'आपके शरीर पर से।'

'क्यों, मेरे शरीर में कोई खराबी थी ?'

'होश नहीं था।'

'कहाँ चला गया था वह ?'

डॉक्टर चुप रहा।

'शरीर में था या शरीर से बाहर चला गया था, या किसी अन्य प्रकार की चेतना के वशीभूत शरीर में ही दबा रह गया था ?'

'साहब, आपकी चेतना का विषय हमारे चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में नहीं आता।'

'इतना मानते हैं, यही अच्छा है।'

डॉक्टर चला गया और सब खाना खाने बैठे। रोहिणी और श्रीराज टक लगाये रंतिनाथ को ही देख रहे थे।

'इस मूर्ति के सम्बन्ध में आपने जो कहा उससे हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आपके यहाँ की मूर्ति हमारे घर कैसे आ गई ?'

'हमारे घर अलग-अलग नहीं हैं बेटा, मैं तुम्हारा ताऊ हूँ।'

रंतिनाथ के शब्द सुनकर रोहिणी और श्रीराज चौंक उठे। माया और रणधीर स्थिरता से बैठे रहे। रंतिनाथ सूप पीने लगा।

'आ....प, धर्मवीर ताऊजी !' रोहिणी बोल उठी।

'हां; क्या तुम्हें ऐसा पागल और फकीर ताऊ पसन्द नहीं ?'

'मैं तो जब-जब धर्मवीर ताऊजी की बातें सुनती हूँ तो मेरा हृदय गर्व से भर आता है। सोचने लगती हूँ कि कितने महान ताऊ की भतीजी हूँ मैं !'

इतना कहकर उसने अपने ताऊ का हाथ पकड़ लिया।

'श्रीराज, तुझे क्या लगता है बेटा !' ताऊ ने भतीजे से पूछा।

'यही कि मैं एक अद्भुत व्यक्ति का भतीजा हूँ।' श्रीराज के चेहरे पर गर्व था।

'ताऊजी, अपनी कहानी कब सुनाएँगे ? मुझे सुनने की बड़ी अभिलाषा है। पापा, मम्मी और दूसरे लोग कहते हैं, लेकिन वह मुझे अधूरी लगती है, श्रीराज को भी अधूरी लगती है; क्यों श्रीराज ?'

'हाँ, ताऊजी।'

'सुनाऊँगा, किसी दिन जरूर सुनाऊँगा।'

माया स्नेहपूर्वक उसे भोजन परोस रही थी और वह खा रहा था।

'भैया, कुछ पेय लोगे ?' रणधीर ने पूछा।

'पानी के सिवा कुछ नहीं, रणधीर !'

रणधीर ने पानी भरकर दिया।

'हिन्दुस्तान आकर अपने घर पर ही रहना होगा, समझे ?' माया ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'माया, मैं स्वतंत्र रूप से आऊँगा और स्वतंत्रतापूर्वक ही रहूँगा। मेरा तो मार्ग ही न्यारा है।'

भोजन करके वह जाने के लिए तैयार हुआ। रोहिणी और श्रीराज उसके पास आये।

'रोहिणी, तुझे एक व्रत लेना होगा, बेटी !'

'कौन-सा व्रत ताऊजी ?'

'अपनी मा से मुँहजोरी मत करना। तेरी मा साक्षात् देवी है !'

रोहिणी चुप रही। ताऊ की बात वह समझ गई थी।

'और दूसरी बात यह कि यहाँ पढ़ो, इसमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन वही पढ़ना जो पढ़ने योग्य है। श्रीराज, तुझसे भी यही कहना है। और खर्च बहुत सोच-समझकर करना, क्योंकि अपनी जागीर के पैसे अपने नहीं हैं, उन ग़रीब किसानों के हैं जो कठिन परिश्रम करके उसे जोतते हैं। उनके पैसे खर्च करते हो तो उनके होकर रहना।'

रतिनाथ के शब्द रणधीर, माया, रोहिणी और श्रीराज के हृदय में उतर गये।

दोनो बच्चों को प्यार करके तथा रणधीर और माया की पीठ थपथपाकर वह चलने लगा।

'रोज यहीं भोजन करने आया करो।'

'नहीं।'

'कब मिलोगे ?' माया के स्वर में स्नेह की आर्द्रता थी।

'अब तो स्टीमर पर ही मिलेंगे।'

'हमें अपने मंडल का सदस्य ही समझें।'

'मंडल सबके लिए खुला है। लेकिन यह सब तड़क-भड़क छोड़ना होगी, वेश बदलना होगा। लेकिन पूरी तरह विचार करने के बाद ही कदम उठाना उचित होगा क्यों रणधीर, ठीक है न ?'

'हाँ भैया ! शक्ति-रहित सहयोग का कोई मूल्य नहीं होता।' रणधीर ने कहा।

'रणधीर ठीक कह रहा है, माया ! तुम शक्ति प्राप्त करो; शक्ति के बिना त्याग नहीं हो सकता। अच्छा, जाता हूँ।' और रात्रि के अन्धकार में वह चला गया।

२८ : दो घुड़सवार

प्रातःकाल के समय एक घुड़सवार अलमोड़ा से कोसी के मार्ग पर सरपट दौड़ा जा रहा था। [illegible] और आसपास की घनी झाड़ियों में कभी-कभी पक्षियों की चहचहाट सुनाई देती थी। अन्धकार अभी पूरी तरह दूर नहीं हुआ था।

उसने करीब पन्द्रह मिनट घोड़ा दौड़ाया होगा कि सामने से एक दूसरा घुड़-सवार उस धुँधलके में आता दिखाई दिया।

दोनो ने अपने घोड़े दस-बारह कदम की दूरी पर रोक दिये।

'देर तो नहीं हुई ?' अलमोड़ा के रास्ते से आनेवाले घुड़सवार ने पूछा।

'नहीं, ठीक समय पर आ गये।'

'घाटी की ओर ही चलना है न ?'

'हाँ; लाओ, सिगरेट दो। मैं तो लगातार एक घण्टे से दौड़ रहा हूँ।'

पहले घुड़सवार ने एक सिगरेट उसे देकर स्वयं भी ली और सुलगाने के लिए जब लाइटर जलाया तब मालूम हुआ कि पहला अँग्रेज था और दूसरा हिन्दुस्तानी। दोनो की उम्र लगभग एक-जैसी—तीस वर्ष की होगी।

'चलो, जल्दी करें।'

इतना कहकर पहले घुड़सवार ने अपना घोड़ा घाटी की ओर मोड़ दिया। दूसरे ने उसका अनुसरण किया।

झाड़ियाँ घनी होती गईं। मद्धिम प्रकाश झाड़ियों में से छन-छनकर रास्ते पर फैलने लगा। शीतल वायु के झोंके शरीर और मन को ताज़गी दे रहे थे। कलकल करती हुई कोसी शीघ्रगति से बह रही थी और पास के जंगल में पहाड़ी लोग लकड़ियाँ काट रहे थे। गड़रिये अपनी भेड़ों को लेकर निकल चुके थे।

एक छोटा-सा गाँव दिखाई दिया। गाँव से बाहर एक चौकीदार खड़ा था, मानो वह उन्हीं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो। उसने दोनो घुड़सवारों को झुककर सलाम किया।

'क्यों करतारसिंह ! चाय-नाश्ता तैयार है ?' दूसरे घुड़सवार ने पूछा।

'जी, हुजूर !' कहकर उसने दूसरे सवार के घोड़े की लगाम थाम ली और वह उतर पड़ा। फिर उसने अँग्रेज सवार को भी उसी तरह उतारा।

दूर-दूर खड़ा हुआ एक और चौकीदार दौड़ आया और दोनो घोड़ों की लगामें पकड़कर उन्हें एक ओर ले गया। पहला नौकर दोनो सवारों को लेकर आगे-आगे चलने लगा। दूर एक टेकरी पर डाकबँगला था। तीनों टेकरी चढ़ने लगे।

डाकबँगला पुराना और झाड़ियों के बीच था। खानसामा, बैरा, भिश्ती, जमादार सब दौड़े आये और झुक-झुककर सलाम करने के बाद अदब से खड़े हो गये। करतारसिंह ने सबको हुक्म देकर काम पर तैनात कर दिया।

'कुछ पता चला करतारसिंह ?'

'हुजूर, दो-तीन मील पर पैरों के निशान दिखे हैं। आप नाश्ता कर लें फिर मचान की जगह देखने चलेंगे।'

दोनो सवारों ने अपनी-अपनी बन्दूकें उतारकर कमरे के बीच रखी हुई गोल मेज पर धर दीं।

'एक सिगरेट लो।' पहले ने कहा।

'नहीं, मैं पाइप पीयूँगा।' दूसरे ने कहा।

'दो दिन में दो गायें गुम हो गईं हुजूर !' करतारसिंह ने दूसरे यानी हिन्दुस्तानी घुड़सवार से कहा।

'अच्छा ! तब तो जरूर उसका सफाया करना होगा।'

'हुजूर की गोली खाली नहीं जा सकती।'

'कितना बड़ा होगा ?'

'बहुत बड़ा हुजूर।' कहते हुए करतारसिंह ने हाथ फैलाकर शेर का नाप बतलाया।

'कब आ रही हैं तुम्हारी पत्नी ?' हिन्दुस्तानी ने अँग्रेज से पूछा।

'परसों।'

'ठीक है, भेंट देने के लिए चमड़ा तैयार करवा लेंगे।'

'बहुत खुश होगी वह !'

'अपने राम तो मजे में हैं। विवाह नहीं किया इसलिए कोई आधि-व्याधि-नहीं,

दूसरों की स्त्रियों को ही भेंट दिया करते हैं। इसके भी अपने मजे हैं। अच्छा, अगर तुम्हारी पत्नी को मैं भेंट दूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं?'

'मुझे या उसे भी क्या आपत्ति हो सकती है?'

नाश्ता आया और दोनो ने पेट-भर खाया।

'प्रेमवल्लभ! तुमने क्यों अभी तक विवाह नहीं किया?'

'दिल नहीं हुआ और क्या?'

'नहीं, यह मैं कभी नहीं मान सकता। नहीं कहना चाहते हो तो न कहो, लेकिन कारण कुछ और ही होना चाहिए।'

प्रेमवल्लभ की आँखें मुँद गईं। किसी गहन भावना का अनुभव कर रहा हो इस प्रकार वह चुपचाप बैठा रहा। फिर बोला—कॉलेज में था उन दिनों एक युवती से मेरा प्रेम हो गया था। हम साथ ही खेलते, घूमते और पढ़ते। अन्तिम परीक्षा हमने एक साथ पास की और विवाह करनेवाले थे कि उसे टाइफ़ाइड हुआ और वह सदा के लिए मुझे छोड़कर चली गई। यह घटना आज से छः वर्ष पहले की है। वह गई और मेरा हृदय भी सदा के लिए लेती गई। अब बिना हृदय के कैसे विवाह करूँ?

इतना कहकर उसने आँखें खोलीं और चाय का घूँट भरा।

'मुझे अफ़सोस है कि अनजाने ही तुमसे पूछ बैठा।'

'नहीं दोस्त, नहीं। यह भी एक प्रकार का आनन्द है। जीवन में सर्वत्र एक ही प्रकार के आनन्द तो होते नहीं। मैं तो पत्थर-जैसा हो गया हूँ। कागजों पर दस्तख़त करना, घोड़े पर सवारी करना, शेर मारना और क्लबों में जाना—यह भी अपने-अपने ढंग के आनन्द हैं। और फिर तुम-जैसे दोस्त का मिल जाना क्या कम आनन्द और सौभाग्य की बात है?'

'कब चलेंगे मचान की जगह देखने?'

'चलो, अभी हाल चलें।'

करतारसिंह और एक दो-चौकीदारों के साथ दोनो बन्दूकें लेकर चल पड़े।

करीब आध घंटा चलने के बाद एक नाले के पास मैदान दिखाई दिया। मैदान में आठ-दस वृक्ष छितराये-से खड़े थे। करतारसिंह ने एक वृक्ष दिखाकर उस पर मचान बनाने की सलाह दी। नाले के उस पार कुछ ही दूरी पर कोसी बह रही थी। दो

तीन सौ कदम आगे ले जाकर उसने शेर के पैरों के निशान भी दिखलाये। वहीं कुछ दूरी पर एक गाय का अस्थिपिंजर पड़ा था।

प्रेमवल्लभ ने अठारह फुट की ऊँचाई पर मचान बनाने की सलाह दी और दोनो व्यक्ति आसपास के प्रदेश पर दृष्टि डालते हुए खड़े रहे।

'शेर का आज अन्तिम दिन है।' प्रेमवल्लभ ने पाइप का कश लेकर कहा।

'तुम्हारी भविष्यवाणी सच ही निकलेगी।'

'करतार, हमें यहाँ कब आ जाना चाहिए?'

'शाम के पाँच बजे, हुजूर!'

'अच्छा, अब चलो।'

करतारसिंह दोनो चौकीदारों को वहीं छोड़कर साहबों के साथ चलने लगा। मचान के लिए चारपाई और गद्दा भेजने की जिम्मेवारी उसी पर थी।

रास्ता चलते-चलते कुछ दूरी पर एक झाड़ी में जीर्ण-शीर्ण मन्दिर दिखाई देता था। मन्दिर की बनावट प्राचीन ढंग की, फिर भी आकर्षक थी। रास्ते के एक ओर करीब डेढ़ फर्लांग चलकर मन्दिर में पहुँचा जा सकता था।

'किसका मन्दिर है करतारसिंह?'

'माताजी का, हुजूर!'

'देखने चलें?'

'चलिए हुजूर! वहाँ एक औरत बहुत दिनों से तपस्या करने आती है। आधी-रात के समय आती है और सवेरा होने से पहले चली जाती है। मैंने देखा नहीं है, सुना है। एक-दो आदमियों ने उसे देखा भी है।'

'चलो, मन्दिर तो देख लें। औरत को फिर कभी देखा जायेगा। आधीरात के समय हम शेर को ढूँढ़ेंगे या औरत को?' उस अँग्रेज ने हँसकर कहा।

'शेर और औरत—दोनो ही शिकार की चीजें हैं!'

मन्दिर के आसपास दस-बारह घने वृक्ष थे। करतार के साथ दोनो ने मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर अधिक बड़ा नहीं था। गर्भगृह में देवी की मूर्ति विराजमान थी और घी का दीया जल रहा था। एक पुजारी बैठा-बैठा पाठ कर रहा था। तीनों नंगे पाँव गर्भगृह के पास आये। प्रेमवल्लभ ने मूर्ति को नमस्कार करके उस पुजारी की ओर देखा।

पुजारी पचासेक वर्ष का एक सुडौल व्यक्ति था।

'किसका मन्दिर है, महाराज ?' प्रेमवल्लभ ने पूछा।

'अष्टभुजा का।'

'आप प्रतिदिन पूजा करते हैं ?'

'जी हाँ।'

'सुनते हैं कि रात में एक स्त्री यहाँ पूजा करने आती है और प्रातःकाल चली जाती है—क्या यह बात सच है ?'

कुछ भी बोले बिना वह पाठ करता रहा। उसके नेत्र अपलक और मुखमुद्रा एकाग्र थी। कुछ देर तक वे लोग उसे देखते रहे, फिर बाहर चले आये।

'कौन है यह पुजारी, करतारसिंह ?'

'मालूम नहीं हुजूर ! कोई वाममार्गी शाक्त लगता है।'

जब वे डाकबँगले पहुँचे तो स्वागत करनेवालों का ठठ लग गया था।

२६ : प्रेमवल्लभ

प्रेमवल्लभ अलमोड़ा जिले का डिप्टी कलक्टर था। चार-पाँच वर्ष पहले ही उसे यह पद मिला था और दो वर्ष से वह उसी जिले में काम कर रहा था। प्रेमवल्लभ एक गरीब क्षत्रिय का लड़का था। उसके पिता की भाभर प्रदेश में थोड़ी-सी जमीन थी, लेकिन खेती में गुजर न होने से वह इधर-उधर नौकरी भी कर लेता था। जमींदारों के यहाँ कारिन्दा या हलवाहा या ऐसी ही कोई नौकरी करके वह अपना काम चलाता था। प्रेमवल्लभ की मा बचपन में ही चल बसी थी, इसलिए उसके पालन-पोषण का भार पिता पर ही था।

बालक होनहार था। गाँव के स्कूल में पढ़ता था तभी से उसकी बुद्धि कुशाग्र थी। पिता चाहता था कि अगर लड़का अच्छी तरह पढ़ ले तो आगे चलकर कोई नौकरी मिल जायेगी और दलिद्दर मिट जायेगा। इसलिए उसकी पढ़ाई का वह पूरा ध्यान रखता था। लड़के की स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार पढ़ा या सुना हुआ वह कभी भूलता नहीं था। उसकी पढ़ाई में जो थोड़ा-बहुत खर्च होता था वह पिता को जमींदार की ओर से मिल जाता था और उस एहसान के बदले पिता प्रेमवल्लभ को ले जाकर जमींदार साहब के पाँव पड़ने को बाध्य करता था।

प्रेमवल्लभ यद्यपि पिता का कहना मान लेता था, किन्तु उसके बाल-हृदय पर आघात लगता और कभी-कभी वह पूछ बैठता था—पिताजी, हम भी क्षत्रिय हैं और वह भी; फिर हम क्यों उनके पैरों पड़ें ?

'बेटा, वह हमारे अन्नदाता हैं।'

बालक चुप हो जाता, किन्तु उसका समाधान नहीं हो पाता था।

जब वह मैट्रिक पास हुआ तो पिता के साथ जमींदार के घर जाकर, पिता के आदेशानुसार जमींदार के पैरों पड़ा। लेकिन मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि यह पैरों पड़ना अब अन्तिम बार है। वह अच्छे नम्बरों से पास हुआ था, इसलिए जमींदार ने उसे इनाम भी दिया, लेकिन वह इनाम उसे अच्छा नहीं लगा। उसने रास्ते में ही पिता से कह दिया कि अब वह किसी का गुलाम या आश्रित नहीं रहना चाहता; इलाहाबाद जाकर अपने खर्च के लायक कमायेगा और पढ़ेगा।

वह इलाहाबाद चला आया और अखबार बेचकर तथा ट्यूशन करके पढ़ने लगा। हर परीक्षा में वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता था। बी० ए० में तो वह प्रथम श्रेणी में भी प्रथम आया। अँग्रेज प्रिन्सिपल उस पर खुश थे। वह फेलो बना दिया गया और डिप्टी कलक्टरी की नौकरी के लिए उसने प्रार्थना-पत्र भेज दिया। जब पब्लिक सर्विस कमीशन के समक्ष उपस्थित हुआ तो कमीशन के सदस्यों ने चुन लिया और यों डिप्टी कलक्टर का पद उसे मिल गया। उसने पिता को तार दिया और एक पत्र भी लिखा कि 'जिसने पैर पकड़े हैं उसे प्रभु ने पैर पकड़वाने का अवसर भी दिया है। ईश्वर का न्याय अटल है। मेरी नियुक्ति नैनीताल में हुई है।'

वृद्ध पिता के हर्ष का पार न रहा। उसने जमींदार साहब के पास जाकर यह शुभ समाचार सुनाया। जमींदार ने आज पहली बार उसे अपने पास बिठाया; और जब प्रेमवल्लभ कलक्टर बनकर आया तब उसी जमींदार ने धूमधाम से उसकी अगवानी की, स्वागत-सत्कार किया और 'भैया साहब' कहकर पुकारा। समानता के स्तर पर पहुँचते ही प्रेमवल्लभ के हृदय से भी घृणा तिरोहित हो गई। उसने देखा और समझा कि सम्मान मनुष्य का नहीं, समय का होता है। गर्व को दबाकर वह सद्-व्यवहार करने लगा। उसने निश्चय किया कि अपने पिता की सहायता करनेवाले का उपकार वह कभी नहीं भूलेगा। जी हुजूरी करना और पैर पकड़ना तो गरीबी की सजा है। फिर वह जमींदार कोई बुरा आदमी भी नहीं था।

नैनीताल में वह दो वर्ष तक डिप्टी कलक्टर रहा। अच्छे-अच्छे जमींदार उसके बँगले की सीढ़ियाँ घिसते थे। कभी-कभी वह उस जमींदार के गाँव भी जाता, जहाँ उसका अच्छा स्वागत होता। पिछले दो वर्ष से उसका तबादला अलमोड़ा जिले में हो गया था। यहाँ कैप्टन लैम्बर्ट से उसकी अच्छी दोस्ती हो गई थी। प्रेमवल्लभ की सोहबत में लैम्बर्ट को भी शिकार का शौक लगा और दोनो मित्र एक-दूसरे के सम्पर्क में एकाकीपन को भूलने का प्रयत्न करने लगे।

लैम्बर्ट की पत्नी आइलीन दो दिन बाद ही इंग्लैण्ड से आ रही थी। उसे शेर की खाल की भेंट देने के लिए ही आज के शिकार का आयोजन हुआ था।

वहाँ के तहसीलदार, थानेदार आदि प्रेमवल्लभ का स्वागत करने के लिए इत्र-पान और फूलहार लेकर आये थे। वे स्वागत करके चले गये और दोनो दोस्त आरामकुर्सी में पड़े-पड़े शाम के शिकार की बातचीत करने लगे।

दोपहर का भोजन करने के बाद दोनो रमी खेलने बैठे। करतारसिंह ने आकर खबर दी कि मचान तैयार हो गया है और शाम को पाँच बजे ही मचान पर बैठ जाना ठीक रहेगा।

तीन बजे उन्होंने कुछ देर आराम करने का विचार किया। लैम्बर्ट बोला—प्रेम, अगर शेर न मिला तो आइलीन के लिए रीछ ढूँढ़ना होगा और रीछ भी न मिला तो अपना भैंसा तो है ही। उसने शायद ही कभी भैंसा देखा होगा। हम उसी के चमड़े पर पीली धारियाँ बनवा लेंगे। और क्या हो सकता है ?

'बिलकुल ठीक कहते हो दोस्त, भैंसे का शेर बन सकता है, लेकिन शेर का भैंसा नहीं। खैर, शेर नहीं मिला तो उस रहस्यमयी औरत को ढूँढ़ने चलेंगे।'

'देखना यार, किसी आफत में मत फँस जाना। कहीं तुम्हारा ही शिकार न हो जाये। मैं इसके लिए तैयार नहीं। वहाँ का वह पुजारी, देखा नहीं, कितना डरावना लग रहा था ! वह औरत भी वैसी ही होगी।'

'आधीरात को आकर सवेरा होने से पहले चली जानेवाली औरत तो शेरनी ही होगी ! एक काम करो लैम्बर्ट ! तुम मचान पर जाओ, मैं जाता हूँ मन्दिर में।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैंने तुमसे कहा तो नहीं, लेकिन मैं सोच रहा था कि अगर शेर मेरी गोली से न मरकर तुम्हारी गोली से मरा तो मेरा उत्साह ठंडा हो जायेगा। तुम्हारा मारा हुआ शेर मैं अपनी पत्नी को भेंट दूँ इससे अधिक लज्जा

की बात और कोई नहीं। ठीक है प्रेम, तुम मचान पर न आओ।'

आखिर यही तय हुआ कि प्रेमवल्लभ आधीरात को मन्दिर में जाकर उस रहस्य-मयी का पता लगाये और लैम्बर्ट मचान पर बैठा-बैठा शेर की प्रतीक्षा करे। चाय पीकर वे लोग साढ़े चार बजे निकले और लैम्बर्ट ठीक पाँच बजे मचान पर चढ़ गया। वृक्ष के पास ही एक ठूँठ से भैंसा बाँध दिया गया था।

'लैम्बर्ट, शेर और भैंसे की पहचान अच्छी तरह कर लेना। कहीं ऐसा न हो कि शेर के पहले भैंसे को गोली मार दो! यह सारा परिश्रम भैंसे के लिए नहीं है।' प्रेमवल्लभ ने हँसकर कहा।

लैम्बर्ट हँसते-हँसते पेड़ पर चढ़ गया और प्रेमवल्लभ उसकी सफलता की कामना करके चपरासी के साथ बँगले पर लौट आया। एक चौकीदार तथा दूसरे दो आदमी भी पासवाले पेड़ पर छिपकर बैठ गये।

घंटों पर घंटे बीतने लगे। घोर अन्धकार चारों ओर छा गया। सब ओर सन्नाटा था। इसी तरह रात का एक बज गया। लैम्बर्ट आतुरतापूर्वक शिकार की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ देर बाद एक सेही और दो-तीन बन्दरों की आवाजें सुनाई दीं। दूर-दूर, नाले के उस पार, नदी की ओर एक चीतल भी बोल उठा। लैम्बर्ट समझ गया कि वह सब शेर के आगमन की सूचना थी। उसने बन्दूक सँभाली और निशान ताककर चुपचाप देखता रहा।

करीब पन्द्रह मिनट तक कुछ भी दिखाई नहीं दिया। वे आवाज़ें भी बन्द हो गई। सिर्फ झींगुरों की झंकार सुनाई देती थी। लैम्बर्ट की दृष्टि भैंसे पर लगी थी, लेकिन वह तो आराम से बैठा-बैठा जुगाली कर रहा था।

उसी समय नाले की ओर, झाड़ी में, कुछ खरखराहट सुनाई दी और तुरन्त बन्द हो गई। लैम्बर्ट चौकन्ना था ही। उसने एकदम झाड़ी की ओर आँखें गड़ा-कर देखा और फिर भैंसे पर दृष्टि डाली तो एक विशालकाय भयंकर शेर उसके सामने बैठा था। भैंसे के कान तन गये थे, पूँछ खड़ी हो गई थी, यमराज के दर्शन करता हुआ मानो वह स्तब्ध हो उठा था।

लैम्बर्ट ने शेर के कन्धे का निशाना लेकर घोड़ा दबा दिया। सनसनाती गोली और बन्दूक के सिरे की फ्लेश लाईट साथ ही छूटी और शेर भयंकर गरज के साथ उछलकर देखते-ही-देखते पास की झाड़ी में अदृश्य हो गया। लैम्बर्ट ने सोचा

कि शिकार मारा गया। उसने एक लम्बी साँस ली। रात काफी बीत गई थी, इसलिए सुबह की प्रतीक्षा में वह मचान पर ही लेट गया और सोने का प्रयत्न करने लगा।

३० : मन्दिर की लीला

आधीरात के समय प्रेमवल्लभ ने बन्दूक उठाई और मन्दिर की ओर चल पड़ा। चारों ओर नीरवता का साम्राज्य था। कभी कोई खरगोश किसी झाड़ी से निकल भागता तो कभी किसी वृक्ष पर पक्षियों की फड़फड़ाहट सुनाई दे जाती थी। प्रेमवल्लभ कुशल शिकारी और पक्का निशानेबाज था, इसलिए उसके मन में दहशत नहीं थी, फिर भी आगामी कौतुक की जिज्ञासा से उसका हृदय धड़क उठता था। कौन होगी वह औरत? कोई राक्षसी या जोगिनी या कोई देवी? कोई सामान्य पागल औरत तो नहीं?—ऐसी अनेक कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में उठतीं और रात्रि की भीषण निस्तब्धता उन्हें भयावह बना देती। वह सोचने लगा कि मूढ़ और वहमी लोगों की किंवदन्तियाँ सुनकर यह साहस क्यों कर बैठा? उसे स्वयं अपने पर हँसी आ गई।

करीब साढ़े बारह बजे वह मन्दिर के द्वार पर पहुँच गया और अधखुला किवाड़ धीरे-से खोलकर भीतर प्रवेश किया। मन्दिर में सर्वत्र अन्धकार था; सिर्फ गर्भगृह के द्वार पर एक घी का दीया जल रहा था। प्रेमवल्लभ दबे पाँवों कोने में जाकर दुबक गया और फिर दीवार के सहारे गर्भगृह की ओर बढ़ने लगा। कुछ ही देर में उसने गर्भगृह के निकट आकर देखा तो दीये के उजाले में माताजी की भयानक मूर्ति उसे दिखाई दी।

गर्भद्वार के एक ओर, कोने में, एक भारी नगारा रखा था, जिसके पीछे वह करीब पन्द्रह मिनट चुपचाप बैठा रहा। नीरवता, अन्धकार, झींगुरों की झंकार और मूर्ति की भयंकरता के सिवा उसे कुछ भी नहीं दिखाई दिया। वहाँ का कौतुक देखने की तीव्र इच्छा थी, किन्तु धैर्य थक चला था। एक चमगादड़ उड़ा और वह चौंक पड़ा, किन्तु फिर स्वस्थ होकर बैठ रहा। उसने निश्चय कर लिया था कि भले ही सारी रात बिताना पड़े, लेकिन आँखों से देखे बिना वह टलेगा नहीं। ऐसी ही स्थिति में एकाध घंटा बीत गया और दो-चार चमगादड़ों की फड़फड़ाहट के सिवा उसे कोई आहट नहीं सुनाई दी

उसके धैर्य का अन्त हो ही रहा था और स्वयं को अपनी मूर्खता के लिए वह कोस ही रहा था कि चें-चें करता हुआ मन्दिर का द्वार खुला और एक भयानक आकृति अन्दर आती दिखाई दी। जब वह आकृति मन्दिर के मध्यभाग में आ गई तो उसने देखा कि आगन्तुक एक विशालकाय प्रचण्ड पुरुष था। उसे देखते ही प्रेमवल्लभ काँप उठा। एक लंगोटी के सिवा उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था और गले में तीन खोपड़ियाँ लटक रही थीं। उसका मस्तक, छाती और दोनों हाथ खून से तर थे। उसके एक हाथ में भैंसे का लोहूलुहान सिर था और दूसरे में लोटे-जैसा एक पात्र। उसकी कमर से तलवार लटक रही थी।

वह भयंकर आदमी गर्भद्वार के पास आया और भैंसे का सिर मूर्ति के सामने फेंककर उन्मत्त की भाँति पाँव फैलाकर, छाती फुलाकर और सिर तानकर खड़ा हो गया। उसकी आँखों से मानो अंगारे झर रहे थे। प्रेमवल्लभ के होश उड़ गये, हृदय काँपने लगा; वह जीवन में कभी इतना भयभीत नहीं हुआ था।

फिर उस आदमी ने इतना भयंकर गर्जन और अट्टहास किया कि मन्दिर की दीवारें हिल उठीं! प्रेमवल्लभ भी थर्रा गया, किन्तु साहस करके चुपचाप बैठा रहा।

हँसने के बाद वह आदमी कुछ विचित्र स्वर निकालने लगा। वे स्वर इतने विकराल थे कि कोई साधारण मनुष्य तो मूर्च्छित ही हो जाता! उच्चारण के बाद हाथ के पात्र में से गले में लटकती हुई खोपड़ी में उसने कुछ उँडेला और पीकर मदोन्मत्त की भाँति कूदने लगा। उछल-कूद और हुँकारों के कारण उसके गले की खोपड़ियाँ टकराने लगीं। फिर उस पात्र को जोर से मूर्ति की ओर फेंककर उसने भैंसे का सिर उठाया और उसे खाने लगा। दृश्य बड़ा भयानक था।

आखिर वह थक गया, रुक गया और मुर्दे की भाँति जमीन पर लुढ़क गया। पड़े-पड़े रोनी आवाज में उन्हीं स्वरों का उच्चारण करने लगा। फिर दयाजनक रीति से सिर उठाकर उसने देवी की ओर देखा। दीये के उजाले में प्रेमवल्लभ को कोई आता दिखाई दिया।

दीये के प्रकाश में उसे वहाँ एक-एक कर किलकती हुई आठ नवयुवतियाँ प्रकट होती दिखाई दीं। प्रेमवल्लभ की अक्ल गुम हो गई। आठों युवतियाँ मस्तानी दशा में थीं; उनके अंग बिलकुल नंगे और उघाड़े थे। एक के हाथ में मदिरा

का पात्र था, दूसरी के हाथ में प्याला, तीसरी के हाथ की थाली में मांस के व्यंजन थे, चौथी के हाथ में फूलों की मालाएँ, पाँचवीं के हाथ में महकते हुए इत्र, छठवीं के हाथ में स्वर्ण तथा हीरा-मोती के आभूषण, सातवीं के हाथ में ज़रीदार पोशाकें थीं और आठवीं के हाथ में अबीर-गुलाल और चन्दन था।

युवतियों को देखते ही वह पुरुष उठकर बैठ गया। उसके चेहरे पर आनन्द की छटा थी। प्रेमवल्लभ हतबुद्धि की भाँति बैठा सोच रहा था कि कहीं यह उसके चित्त का भ्रम तो नहीं!

उन्मत्त व्यक्ति और कोई नहीं वह दिनवाला पुजारी ही था।

फिर प्रेमवल्लभ ने उन युवतियों को शृंगार की अनेक नई-नई चेष्टाएँ करते देखा। पुजारी उन्मत्त होकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। युवतियों ने पुजारी को खिलाया-पिलाया, सुन्दर वस्त्र पहिनाये, इत्र लगाया और अबीर-गुलाल से पूजा करके उसे ले चलीं। धीरे-धीरे वह जुलूस बाहर निकल गया। तब प्रेमवल्लभ को लगा कि शायद वह सो रहा था।

युवतियाँ पुजारी को लेकर चली गईं तब प्रेमवल्लभ ने सन्तोष की साँस ली। उसका सिर चकरा रहा था और हृदय जोरों से धड़क रहा था। वह मानुषी तथापि राक्षसी दृश्य उसकी समझ में नहीं आ रहा था। अपने शरीर पर हाथ फेरकर उसने विश्वास किया कि वह होश में है या नहीं। उसे उठकर भागने की इच्छा हो आई, किन्तु भाग न सका। उसके अंग शिथिल हो गये थे। वह अचम्भे में डूब रहा था कि उसी समय फिर चें-चें करता हुआ मन्दिर का द्वार खुला।

दो आकृतियों ने मन्दिर में प्रवेश किया। धीरे-धीरे वे आगे बढ़ने लगीं और देवी के सामने आकर रुक गईं। एक पुरुष था, दूसरी स्त्री। स्त्री आगे खड़ी थी और पुरुष उसके कन्धों पर हाथ रखकर पीछे। स्त्री के नेत्र बन्द थे। उसकी मुखाकृति सुन्दर थी। पुरुष तो मानो ध्यान में लीन था। उसकी मुखाकृति भव्य और तेजस्वी थी और आँखों में भक्ति का समुद्र उमड़ रहा था।

'मैं आ गया हूँ, मा!'

उसने धीर-गम्भीर स्वर में कहा और बोलते-बोलते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। किन्तु उस अश्रुधारा के बीच भी उसके चेहरे पर भक्तिभाव झलक रहा था।

दीपक का प्रकाश सहसा झलमला उठा और सारे मन्दिर में आँखों को चका-

चौंध करती हुई एक ऐसी आभा फैल गई, मानो बिजली स्थिर हो गई हो! उस अलौकिक आभा में से एक नितान्त सुन्दर, भव्य और जाज्वल्यमान नारी-मूर्ति प्रकट हुई। इतनी अपूर्व छटा थी कि आश्चर्य और कुतूहल से प्रेमवल्लभ का मुँह खुल गया और हृदय की गति मानो रुक गई! उसके अन्तःकरण में ऐसी दिव्य चेतना प्रसरित हुई कि यह मानुषी शरीर नहीं, केवल आभास है।

देवी ने प्रसन्न मुद्रा में पुरुष की ओर देखा और दोनो के मस्तक पर कोमलता से हाथ रखा।

आभा धीरे-धीरे संकुचित होकर दीपक के प्रकाश में लीन हो गई और वे स्त्री-पुरुष आये थे उसी प्रकार लौट गये। द्वार चें-चें करता हुआ बन्द हो गया।

द्वार बन्द होते ही दीपक बुझ गया। प्रेमवल्लभ अर्द्ध मूर्च्छित अवस्था में बैठा रहा। उसकी आँखें मुँद गईं और अंग इतने शिथिल हो गये कि वह हाथ-पाँव सिकोड़कर वहीं निद्राधीन हो गया।

प्रभात का पंछी बोला और उसकी आँख खुली तो उसने पाया कि वह रात-भर नगारे के पीछे सिकुड़ा पड़ा रहा था। रात के दृश्यों का स्मरण होते ही वह एकदम उठा और माताजी की मूर्ति के सामने साष्टांग दण्डवत् करके पड़ गया। उसके हृदय में किसी अलौकिक शक्ति का संचार हुआ; आश्चर्यचकित नेत्रों से वह भगवती की मूर्ति को देखता रहा। अंत में उठा, नमस्कार किया और डाकबँगले की ओर चल दिया।

३१ : शिकार

सवेरा होते ही लैम्बर्ट मचान से नीचे उतरा। चौकीदार भी उतर आये। भैंसा अब भी उसी तरह बैठा जुगाली कर रहा था। शेर की जगह खून के निशान थे। खून की लकीर के सहारे चौकीदार उन झाड़ियों की ओर आगे बढ़े और हाके मारते-मारते अन्दर घुसकर देखा तो कुछ ही दूरी पर वह विशालकाय शेर मुर्दे की तरह पड़ा था। चौकीदारों ने चार-पाँच कंकर फेंककर विश्वास कर लिया कि वह मर गया था।

लैम्बर्ट को बड़ी खुशी हुई। बरसों बाद आनेवाली पत्नी को भेंट देने के लिए अमूल्य चमड़ा उसे मिल गया था। उसने ईश्वर का आभार माना। चौकीदार शेर

के पास पहुँचे और देखा तो खून अभी जमा नहीं था; चमड़ा भी अच्छी हालत में था। लैम्बर्ट ने छुरी निकाली और पेट के पास से सीधी लकीर में चीरकर चमड़ा उतार लिया। शेर की लम्बाई पूँछ से लेकर नाक तक ग्यारह फुट थी।

ग्रामीण लोग इकट्ठे हो गये और उस भयंकर राक्षस को मरा देखकर खुशी से नाचने लगे। उसके नाखून और बाल सब लोगों ने आपस में बाँट लिये।

लैम्बर्ट ने चमड़ा साफ़ करवाया, धुलवाया और धूप में सूखने के लिए डलवा दिया। करीब एक घण्टे बाद वह चमड़ा उठवाकर चलने लगा। प्रेमवल्लभ को बधाई देने के लिए उसका हृदय आतुर हो रहा था।

लैम्बर्ट बँगले पर पहुँचा तो प्रेमवल्लभ गहरी नींद में सोया पड़ा था। रात के अनुभवों ने उसे विचारों में डाल दिया था; चमत्कारों से उसका मन अस्त-व्यस्त हो उठा था।

'साहब तो अभी सो रहे हैं; सुबह ही तो लौटे हैं।' करतार ने कहा।

लैम्बर्ट ने उसे झकझोर डाला। प्रेमवल्लभ ने आँखें खोलीं। कुछ देर तक वह लैम्बर्ट को देखता रहा और फिर उठकर बैठ गया।

'भैंसा मार लाया हूँ।'

भैंसा शब्द सुनते ही प्रेमवल्लभ को वह भैंसे का सिर याद आ गया। उसने सोचा कि कहीं सो तो नहीं रहा हूँ! कुछ देर वह चुपचाप इधर-उधर देखता रहा। लैम्बर्ट को आश्चर्य हुआ। वह बाहर चला गया और शेर का चमड़ा लेकर लौट आया।

'देखो, भैंसे को मारकर उसकी खाल पर धारियाँ बनवा ली हैं।'

प्रेमवल्लभ अब पूरी तरह होश में आया। वह खड़ा हुआ और लैम्बर्ट से हाथ मिलाकर इतना ही बोल सका—बधाई! हार्दिक बधाई!

'तुम थके हुए मालूम होते हो, प्रेम!'

'हाँ, अभी एक घण्टे पहले ही लौटा हूँ।'

'अच्छा, सो जाओ।'

प्रेमवल्लभ सो गया। उसका सिर भारी था।

लैम्बर्ट भी थक गया था। वह भी चाय पीकर सो गया।

प्रेम की आँखें अब भी वही दृश्य देख रही थीं। वे स्त्रियाँ और वह युगल

कौन था ? ऐसे अनेक विचार उसके मस्तिष्क में घूम रहे थे ।

लैम्बर्ट की आँखें आइलीन को देख रही थीं। उसके बाहुपाश की उष्मा उसकी कल्पना को उत्तेजित कर रही थी । अपनी पत्नी के गुदगुदे विचारों के साथ वह आनन्द-सागर में तैर रहा था। चिरवियोग के पश्चात् मिलन की मादकता के विचार उसे उत्तेजित कर रहे थे। उसके आगमन के घण्टे नहीं, मिनट वह गिन रहा था। विरह की कारा से छूटने के क्षण उसे असह्य प्रतीत हो रहे थे। प्रेमवल्लभ के एकाकीपन और शून्यता का विचार करता हुआ वह अपने को सुखी और सन्तुष्ट अनुभव कर रहा था । सुख का अनुभव तुलना से, चाहे वह वास्तविक हो या काल्पनिक, अधिक उत्कट बनता है, इस सिद्धान्त के अनुसार लैम्बर्ट उत्कट सुख का अनुभव कर रहा था ।

स्वप्न, दिवास्वप्न और जागृति का अनुभव करते हुए दोनो दोस्त दस बजे बिस्तर से उठे ।

लैम्बर्ट ने अपनी विजय का रोमांचक वर्णन किया । प्रेमवल्लभ उसे चुपचाप, फिर भी सहृदयता से, सुनता रहा, सहन करता रहा। उसका चित्त शेर में या शेर के शिकार में नहीं था, फिर भी वह वाह-वाह कर रहा था ।

'यह तो बताओ, तुमने क्या किया ?'

'मन्दिर देखा ।'

'लेकिन वह औरत भी देखी ?'

'एक नहीं, बहुत-सी देखीं । पहले एक आदमी देखा, फिर आठ युवतियाँ देखीं । फिर दूसरा एक आदमी और उसके साथ एक युवती को देखा । और अन्त में एक अलौकिक युवती देखी ।'

'तुम्हारा भी कोई काम सिद्ध हुआ ?'

'ना भई, ना ! और सिद्ध करने का विचार भी नहीं है । मेरा तो उत्साह ही ठंडा हो गया ।'

और उसने सारी घटना संक्षेप में कह सुनाई ।

लैम्बर्ट ने सारा हाल ध्यान से सुना और प्रेमवल्लभ की ओर ताककर बोला—तुम्हारा दिमाग तो ठिकाने पर है ?

'मैं समझता हूँ कि है ।'

'तुम मुझे पागल तो नहीं समझते ?' लैम्बर्ट ने फिर पूछा।

'हरगिज नहीं।'

'तो अब तुम सो जाओ; बहुत थके मालूम होते हो।'

'तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं आता ?'

'अरे यार, इसे कौन सच मान सकता है ?'

'क्यों नहीं मानेगा ? जिसने आँखों से देखा है वह तो जरूर मानेगा।'

'भ्रम है, भ्रम !'

'हो सकता है। मैंने तो जो देखा वही कह रहा हूँ।'

'माफ करना दोस्त ! लेकिन तुम हिन्दुस्तानी लोग कुछ अधिक कल्पनाशील होते हो। और फिर पहाड़ी लोग तो इसी तरह की बातें करते हैं।'

'ठीक है। अच्छा, अब ब्रेकफास्ट की तैयारी की जाये।'

'जरूर। जरा "हेम और एग" होने दो; भूख जोर से लग रही है। यह कम-बख्त शेर जब जिन्दा था तब तो बड़ा डरावना लगता था।'

'किस्मत समझो कि दूर नहीं भागा; नहीं तो ढूँढ़ते-ढूँढ़ते दम निकल जाता।'

'अब तो आइलीन के आ जाने पर दूसरी शिकार पार्टी का आयोजन करेंगे। मुझे अफसोस है प्रेम, कि मैंने तुम्हारा शिकार छीन लिया। तुम्हारा आभार मानता हूँ। तुम होते तो मेरी गोली का पता ही नहीं चलता।'

'ऐसी कोई बात नहीं है। तुम भी अच्छे शिकारी हो। मेरी राय में तो तुम मुझसे अच्छा निशाना लगाते हो।'

'यह बिलकुल गलत है। उस दिन रेजीमेण्ट की प्रतियोगिता में तुमने सबको हरा दिया था।'

'उसमें तीन-चार फायर तो मैंने भगवान के भरोसे ही किये थे। उस प्रति-योगिता के आधार पर यह मत बनाना कि मैं अच्छा निशानेबाज हूँ, ठीक नहीं।'

'मुझे तो खाना खाकर अलमोड़ा जाना है; तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ?'

'मैं कौसानी जाकर तहसील के मुकदमे सुन आऊँगा; फिर कुछ दिन की छुट्टी लेकर नैनीताल जाऊँगा।'

'मैं भी एक महीने की छुट्टी लेकर नैनीताल रहना चाहता हूँ। आइलीन परसों आ रही है।'

'आओ, सरकारी बँगला दिला दूँगा।'

'कृतज्ञ हुआ, लेकिन मैं तो कर्नल के बँगले में रहूँगा। वह खाली भी है और उन्होंने आग्रह भी किया है। तुम मेरे साथ जरूर रह सकते हो।'

'ठीक है; लेकिन जहाँ तुम्हें पत्नी के साथ आनन्द करना हो वहाँ मैं परछाईं की तरह शोभा नहीं दूँगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा; लेकिन रोज मिलेंगे तो जरूर। याट क्लब अच्छा है। लो, नाश्ता आ गया।'

दोनो ने नाश्ता किया और चलने की तैयारी करने लगे। करतारसिंह ने घोड़े कसवा दिये।

'लैम्बर्ट! कोसी के पास मेरी मोटर खड़ी होगी, उसमें तुम्हें अलमोड़ा छोड़कर मैं कौसानी चला जाऊँगा। तुम्हारी इच्छा हो तो कौसानी चलो।'

'नहीं, मुझे अलमोड़ा छोड़ दो। वहाँ का सारा काम खत्म करके रेजीमेण्ट के काम से मुझे जल्दी रानीखेत जाना है। मैंने अपनी मोटर अलमोड़ा मँगवाई है। तुम कौसानी से रानीखेत आ जाओ। रेजीमेण्ट का डान्स है, बड़ा मज़ा आयेगा।'

'देखा जायेगा। न आ सका तो नैनीताल में ही मिलूँगा। चलो चलें।'

और दोनो जिस तरह आये थे उसी तरह लौट गये।

३२ : आइलीन का आगमन

काठगोदाम स्टेशन पर लैम्बर्ट आइलीन के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। सुबह के साढ़े नौ बजे थे; गाड़ी आने में आध घण्टे की देर थी। लैम्बर्ट की अधीरता प्रतिक्षण बढ़ती जाती थी—कैसी है? कितना हँसेगी? कितना स्नेह प्रदर्शित करेगी? इस तरह सोचता हुआ वह सिगरेटें फूँक रहा था। दस बजने में अधिक देर नहीं थी, फिर भी उसे लग रहा था कि अभी बहुत देर है; और न जाने कब दस बजेंगे!

आखिर दस भी बजे, लेकिन तभी पता चला कि गाड़ी आध घण्टा लेट है। उसने रेल-विभाग को मन-ही-मन तीन-चार भारी-भरकम गालियाँ दीं और स्टेशन के रेस्तराँ में जाकर चाय मँगवाई। एक-एक मिनट वह गिन रहा था। आखिर पाँच मिनट बाकी रह गये। वह उठा और फिर प्लेटफार्म पर घूमने लगा। उसके पैरों में स्फूर्ति और हृदय में उत्साह था।

गाड़ी आती दिखाई दी। धीरे-धीरे रेंगती हुई वह प्लेटफ़ार्म पर आ पहुँची। खिड़कियाँ खुलने लगीं। उसकी दृष्टि फ़र्स्ट क्लास के डिब्बों पर थी। आखिर एक खिड़की खुली और आइलीन, स्वस्थ और प्रसन्न, प्लेटफ़ार्म पर उतरी। लैम्बर्ट दौड़-कर उसके पास पहुँचा और उसे अपनी बाँहों में भर लिया। आइलीन ने देखा तो लैम्बर्ट की आँखों से प्रेम के निर्झर झर रहे थे।

'आखिर तुम आ गईं!' वह इतना ही कह सका।

'थक गई हूँ इस मुसाफ़िरी से। चलो, सामान उतरवा लें।'

कुली प्रतीक्षा कर रहे थे। लैम्बर्ट ने सामान बराबर गिन लिया और कैरियर में बाँधने का हुक्म दिया। जब सामान अच्छी तरह रख दिया गया तो ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट की।

'ठीक एक वर्ष बाद मिल रहे हैं!' उसने आइलीन का हाथ पकड़कर कहा।

'क्या हाल है तुम्हारा?'

'तुम्हारे बिना बिलकुल बेहाल!'

'मेरा तार कब मिला था?'

'कल शाम को। तब से एक-एक मिनट गिन रहा हूँ।'

'हम कहाँ चल रहे हैं?'

'नैनीताल। मैंने छुट्टी ले ली है। कर्नल का बँगला बड़ा अच्छा है, तुम खुश हो जाओगी!'

'सर्दी खूब है।'

'हाँ, अभी तो और बढ़ेगी। घर सब मजे में हैं?'

'सब अच्छी तरह हैं। मेरी मा ने तुम्हें खूब-खूब याद किया है। तुम्हारी मा भी मजे में हैं। फिलहाल तो वह बरमिंघम गई हैं, वहाँ तुम्हारी बहिन बीमार हो गई थीं। मैंने कहा तो है कि इप्स्विचवाले अपने घर आकर रहें। शायद आ भी जायें। दूसरे सभी सम्बन्धियों ने तुम्हें याद किया है।'

'तुम क्यों नहीं आ रही थीं?'

'डाक्टर कहते थे कि छः महीने तक इंग्लैण्ड नहीं छोड़ना चाहिए। मैंने तुम्हें सब विस्तारपूर्वक लिखा तो था।'

'आइलीन, तुम मुझे याद करती थी?'

'ज़रूर। लेकिन ऐसा क्यों पूछ रहे हो?'

'न जाने क्यों, तुम्हारे न आने से मुझे तरह-तरह के विचार आते थे! मैं बेचैन हो जाता था!'

'मैं तो तुम्हें हमेशा पत्र लिखती थी।'

'पत्रों से कहीं मिलन का आनन्द प्राप्त हो सकता है?'

'अच्छा स्थान है। पहाड़ कितने सुहावने मालूम होते हैं!'

कहकर वह गिरिमालाओं की ओर देखने लगी। मोटर ऊपर चढ़ रही थी और आँखों के सामने नित नूतन सृष्टि की रचना होती जा रही थी। आइलीन का मन रंतिनाथ की ओर दौड़ने लगा। उसका विरह उसे असहनीय हो गया था। आइलीन जानती थी कि बगल में बैठा लैम्बर्ट उसे टक लगाये देख रहा है; किन्तु उसका मन तो हजारों मील दूर रंतिनाथ का स्मरण कर रहा है। उसे रंतिनाथ से लगाव था। पहुँचते ही तार देने की बात वह भूली नहीं थी।

'आइलीन! तुम्हारे लिए मैंने एक अद्भुत वस्तु तैयार कर रखी है।'

'अच्छा! मैं चाहती हूँ कि वह सचमुच अद्भुत हो।'

'देखोगी, तो आप ही मान जाओगी।'

'कितनी दूर है अभी?'

'बस, आधी दूर आ चुके हैं।'

'ओह, कितने विशाल पर्वत! यही है हिमालय?'

'नहीं, ये तो उसके पैरों की उँगलियाँ हैं।'

'तब तो पैर, पेट और सीना न जाने कितने विशाल होंगे!'

'कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे बँगले से पहाड़ों की एक लम्बी कतार दिखाई देती है। नन्दादेवी, त्रिशूल, नन्दाकोट—ये सब तुम्हारा स्वागत करने खड़े हैं। अपने रानीखेत के बँगले से बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई देता है।'

'इतनी गनीमत है कि लखनऊ-जैसी गर्मी नहीं है! उस गर्मी को मैं कभी नहीं भूल सकती।'

'वह तो भट्टी थी, भट्टी!'

'वहीं मेरी तबियत खराब हुई थी।'

लैम्बर्ट मन-ही-मन सोच रहा था कि आइलीन जरूर कुछ बदल गई है। उसके

सान्निध्य में पहले-जैसी गरमाहट और उल्लास नहीं मिल रहे थे। निकट होने पर भी वह दूर मालूम होती थी। लेकिन उसने यह सोचकर मन को मना लिया कि मुसाफिरी की थकावट और नये-नये वातावरण का ही यह प्रभाव होना चाहिए।

'तुम बहुत थक गई हो ?'

'बहुत ही। बम्बई से यहाँ तक की रेल-यात्रा ने मुझे चूर कर दिया है।'

'लो यहाँ सिर रखकर सो जाओ।' कहते हुए लैम्बर्ट ने आइलीन का सिर अपनी जाँघ पर रख लिया।

आइलीन ने उसकी जाँघ पर सिर रखते ही आँखें बन्द कर लीं। वह मौन चाहती थी। बन्द आँखों से वह रंतिनाथ को देखना चाहती थी। उसकी इच्छा पूरी हुई। लैम्बर्ट ने उसका सिर चूम लिया और माथे पर हाथ फेरने लगा।

इसी तरह वे नैनीताल पहुँचे। उनका बँगला पहाड़ पर था। लैम्बर्ट ने आइलीन के लिए दाँडी मँगवाई और स्वयं घोड़े पर बैठ गया। पहाड़ पर खड़े हुए असंख्य वृक्षों और सुन्दर सरोवरों की शोभा देखती हुई आइलीन कुछ देर खड़ी रही। यकायक उसका मन शान्त हो गया और शरीर में ताज़गी आ गई।

देवपाटा के एक कोने में खड़े हुए शिखर पर वे एक एकान्त बँगले में आ पहुँचे। उत्तर की ओर हिमालय के विशाल शिखर बर्फ़ के मुकुट धारण किये बैठे थे। आइलीन वह दृश्य पहली बार देख रही थी। उसके मन में आया कि रंतिनाथ भी होता तो कितना अच्छा होता! वह भी तो उन सुदूरवर्ती हिमाच्छादित शिखरों-जैसा ही उच्च है!

विचारमग्न दशा में वह खड़ी थी कि लैम्बर्ट ने पीछे से आकर उसे बाँहों में भर लिया। आइलीन को यह अच्छा न लगा, किन्तु अरुचि को मन में दबाकर वह स्थिर खड़ी रही। नौकर को भेजकर उसने अपनी मा और मार्था को तार दिला दिये। चाय-नाश्ते से निवृत्त होकर वह नहाने चली गई। लैम्बर्ट अखबार पढ़ रहा था। सोच रहा था कि आइलीन के नहाकर लौटने पर शेर का चमड़ा भेंट करना कैसा रहेगा?

गर्म पानी के टब में पड़ी हुई आइलीन ने अपने हृदय से कई उचित-अनुचित प्रश्न किये—क्या वह लैम्बर्ट के साथ रहेगी? कथित विवाह-बन्धन में बँधकर क्या उसने अपना बलिदान नहीं किया? यह आदमी इतना भला और भावुक

है, फिर भी उसे उससे सन्तोष क्यों नहीं होता ? रतिनाथ में ऐसा कौन-सा गुण है जिसकी अनुपस्थिति उसे इतनी खल रही है ? वह कितना अगम्य, अस्पृश्य और कुछ अंशों में अमानुषी है, फिर भी उसके हृदय पर उसने क्यों अधिकार जमा लिया ? कौन है वह ? लैम्बर्ट को वह नहीं चाहती, फिर भी साथ रहकर उसका जीवन अधूरा रखना क्या धोखा नहीं ? क्या वह उसे ठग नहीं रही ? वह उससे प्रेम करता है; लेकिन क्या उसे यह भ्रान्ति नहीं कि वह भी उससे प्रेम करती है ? और लैम्बर्ट का प्रेम क्या घृणा में परिवर्तित नहीं हो जायेगा ? कुछ समय बाद मालूम होने पर वह दुःखी हो, इससे तो अच्छा है कि अभी ही सब-कुछ बता दिया जाये। उचित यही होगा। एक दिन जब उसका दिल तोड़ना ही है तो देर करने से क्या लाभ ? लेकिन जल्दी कहकर भी मुझे कौन-सा सुख मिल जायेगा ? जल्दबाजी क्या बुरी न होगी ? रतिनाथ को उससे या किसी और से विवाह तो करना नहीं है। वह तो उसी तरह दूर और अस्पृश्य रहने को है। तो क्या रतिनाथ से पूछे बिना कोई कदम उठाने का साहस उसमें नहीं ? लैम्बर्ट को छोड़कर रतिनाथ के कार्य में लगाने की अपेक्षा लैम्बर्ट के साथ रहकर कार्य करने में क्या बुराई है ? लेकिन ऐसा करने में क्या उसकी स्वतंत्रता पर रोक नहीं लग जायेगी ? ऐसा करके क्या वह लैम्बर्ट की कैद में नहीं पड़ी रहेगी ? उसकी पत्नी बनी रहकर घर-बार और रोटियों की सुख-सुविधा की मुहताज न रहेगी ? इस तरह वह स्वयं क्या सुख पा या दे सकती है ? तो लैम्बर्ट के किसी दूसरी नारी का सुख प्राप्त करने में वह क्यों अन्तराय बने ?

करीब पौन घंटे तक टब में पड़ी वह इसी तरह के विचार करती रही। यहाँ तक कि पानी भी ठंडा हो गया।

'कितनी देर और है आइलीन ?' अन्त में लैम्बर्ट ने दरवाजा खटखटाकर पूछा।

'थोड़ी-सी।'

उसने उत्तर तो दिया, किन्तु सोचा कि क्या रोज इसी तरह इस व्यक्ति के प्रश्नों का उत्तर देना होगा, और क्या वह असह्य नहीं हो जायेगा ? वह तो प्रश्न करेगा ही, क्योंकि पति के अतिरिक्त वह प्रेमी भी था। लेकिन वह स्वयं उससे प्रश्न पूछने के लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि उसे उससे प्रेम नहीं था। प्रेम का अर्थ है

दोनो ओर से प्रश्नों का पूछा जाना, जब कि यहाँ तो एकतरफा प्रश्न ही थे। उसे लैम्बर्ट से प्रेम होता तो क्या यह न कहती कि 'आओ प्रिय, तुम भी नहा लो'? उससे प्रेम होता तो क्या नहाने के टब में इतनी देर पड़ी रहती? प्रेम होता तो अपनी गरदन से उसके हाथ क्यों छुड़ाती? प्रेम होता तो क्या इस घर-बार को अपना न समझती? घर में आकर मालकिन की भाँति हुक्म न चलाने लगती? सफ़ाई करवाकर सारा सामान व्यवस्थित रखने में न लग जाती? लैम्बर्ट की अलमारियों, बक्सों और काग़ज़-पत्रों की तलाशी नहीं लेने लगती? प्रेम होता तो प्यार-भरे स्वर में तरह-तरह के प्रश्न न पूछती? प्रेम ही होता तो शरीर की ठंड क्या टब के गर्म पानी से दूर करने का प्रयत्न करती? प्रेम ही होता तो स्नान की घड़ियों का एकाकीपन भी क्या हृदय को विह्वल नहीं कर देता?

उसे लैम्बर्ट पर तरस आने लगा। उसे लगा कि वह उस निर्दोष व्यक्ति को फाँसी दे रही है। वह बेचारा प्रेम-जल के लिए तड़प रहा था। स्वयं एक चुल्लू भी नहीं दे सकती तो इनकार क्यों नहीं कर देती? इस तरह आशा में रखकर क्या वह उसे ठग नहीं रही है? इसे ठगना नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? क्या निराश्रित हो जाने का भय इस छलना के लिए प्रेरित किये हुए है? हो सकता है! भय! आवास और रोटियों का भय! सुरक्षा के लिए छल और प्रवंचना! ओह भगवान! हाय रे मनुष्य-जाति! ओ झूठे संसार! रोटी, आवास और चिथड़ों के लिए तू जीवन के आधार प्रेम को ही बेचकर खा रहा है!

उसे अपने-आप पर घृणा हो आई! उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं और आत्म-ग्लानि के आवेश में आँखों से गर्म-गर्म आँसू टपकने लगे।

'कितनी देर है आइलीन?' लैम्बर्ट ने फिर पूछा।

एक सिसकी भरकर वह टब में से निकली। उसे अपने शरीर के प्रति विराग उत्पन्न हुआ। मेज़ के आगे बैठकर वह शरीर पोंछने लगी। उसने शरीर पोंछ लिया, लेकिन आँखें न पोंछ सकी। ज्यों-ज्यों पोंछती थी वे उतनी ही भीग जाती थीं। उसने गाउन पहिना और बाहर आई। आँखों से पानी अब भी बह रहा था।

लैम्बर्ट शेर की खाल लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसका हृदय प्रेम से छलक रहा था।

'प्राणप्यारी! देखो, यह तुम्हारे लिए।'

आइलीन ने फीकी हँसी हँसकर खाल अपने हाथ में ले ली। प्रेमावेश में लैम्बर्ट ने उसे बाँहों में भर लिया।

३३ : सवेरे का आनन्द

आइलीन के लिए पति का वह ललक-भरा प्यार असहनीय हो गया। उसका शरीर काँप उठा। रुदन करते हुए हृदय से उसने लैम्बर्ट के प्यार को सह लिया। उसे लैम्बर्ट पर दया हो आई और दया के ही वशीभूत उसने उसके गाल और होंठ चूम लिये। करुणापूर्वक उसकी ओर देखकर उसने मन-ही-मन कहा, 'बेचारा लैम्बर्ट!' और मन-ही-मन रोई।

प्रेम और दया के विनिमय का वह व्यापार दोनो के लिए हानिकारक था। कोमलता, सरलता और चतुराई के साथ उसने लैम्बर्ट को दूसरी बातों में लगा दिया। उसकी रेजीमेण्ट की, उसके वरिष्ठ अधिकारियों की, उसके मातहतों की, नौकरों की, शिकार की, घोड़े की, उसके कुत्ते की, मित्रों की और मुख्यतः प्रेम-वल्लभ की बातें एक के बाद एक निकलती चली गईं। उस प्रान्त के निवासियों की, युद्ध की आशंका की, ब्रिटेन के विरुद्ध राजनीतिक आन्दोलन की, क्लबों में आने-वाले अँग्रेज स्त्री-पुरुषों की, नये-नये पक्षियों और वृक्षों की, हिमालय में बसे हुए ग्रामों की, हिमालय के शिखरों पर आरोहण करनेवाले दलों की, अपने प्रमोशन की, दूसरों की उन्नति-अवनति की, नये प्रकार की बन्दूकों और कारतूसों की, हिन्दु-स्तानी रीति-रिवाजों की, नैनीताल के यॉट क्लब की, यॉट प्रतियोगिता की, राजाओं और जमींदारों की शान-शौकत की—ऐसी अनेक बातें सुबह से रात तक चलती रहीं। लंच, टी और डिनर के समय तक लैम्बर्ट की बातों का ताना-बाना बड़ी सरलता से बुना जाता रहा। जब दोनो शयन-कक्ष में गये तो कड़ाके की ठंड थी। आइलीन की आँखें बिस्तर पर पड़ते ही मुँद गईं। एकटक देखता हुआ लैम्बर्ट उसके सिर और गालों को सहलाने लगा, किन्तु आइलीन ने आँखें न खोलीं। लैम्बर्ट ने उसका मस्तक चूमा और सुख-सन्तोषपूर्वक सो गया।

वास्तव में आइलीन सोई नहीं थी, आँखें मूँदकर गहरे विचार में डूबी हुई थी। थोड़ी ही देर बाद वह मन की किसी नई सृष्टि में विलीन हो गई। वह सृष्टि उसे सत्य मालूम हुई, प्रकाशवान लगी। थोड़ी देर में उस सृष्टि पर भी अकस्मात्

पर्दा गिर गया। पर्दे के पीछे जाकर उसने देखा तो वहाँ रंतिनाथ खड़ा था। वह उसके गले में झूम गई। बर्फीली ठंड धधकती हुई अग्नि बन गई। रंतिनाथ का हाथ उसके मस्तक पर और पीठ पर फिरने लगा। आइलीन की छाती भूकम्प की तरह धड़क उठी, उसकी नाड़ियों में रक्त किसी तेज धारा की भाँति दौड़ने लगा और उसकी इन्द्रियों में किसी विशेष सुखानुभूति का आविर्भाव हुआ।

'कहाँ हो तुम?'

'तुम्हारे पास ही हूँ।'

'पास ही रहो।'

रंतिनाथ ने उसकी ओर देखा। आइलीन के हृदय ने तादात्म्य का अनुभव किया और वह मनश्चेतना की किसी दूसरी ही भूमिका में पहुँच गई।

सवेरे जब वह सोकर उठी तो प्रसन्न थी। उसका मन और शरीर फूल की तरह हलका था। वह लैम्बर्ट के साथ हँसकर, खिलखिलाकर बातें करने लगी।

प्रातःकाल का सुहावना समय था। लैम्बर्ट और आइलीन घोड़ों पर सवार घूमने निकले। वातावरण में चित्त को प्रफुल्लित करनेवाली ताजगी थी। ढाल उतरकर वे नीचे आये और लैम्बर्ट एड़ लगाकर घोड़े को दौड़ाने लगा। आइ-लीन को भी घुड़सवारी का शौक था, इसलिए उसने भी अपना घोड़ा दौड़ाया। मल्लीताल से तल्लीताल और तल्लीताल से मल्लीताल तक उन्होंने दो-तीन चक्कर लगाये और फिर यॉट क्लब में जाकर कॉफी पीने बैठे।

'मैं यहाँ कोई सेवा-कार्य आरम्भ करना चाहती हूँ।'

'क्या मतलब?'

'लन्दन में मैं एक मंडल की सदस्या बन गई हूँ। कल मैंने तुमसे कहा तो था। वे सिद्धान्त मुझे बहुत पसन्द हैं।'

'क्रिश्चियन एसोसियेशन है, साल्वेशनवाले हैं, रामकृष्ण मिशन है; उन्हीं में एक तुम्हारा मंडल भी बढ़ गया, और क्या!'

'हमारे मंडल की तो बात ही अलग है। वह तो तुम्हें तब मालूम होगा जब उसके सदस्यों से और अध्यक्ष से मिलोगे।'

'न भई, मेरी अध्यक्ष तो तुम्हीं हो।'

'तो फिर मेरी बात माननी होगी। अलमोड़ा, रानीखेत, नैनीताल यहाँ हम

लोग, भूली हमारे लोग, सफल हो सकेंगे ?'

'क्यों नहीं; लेकिन करना क्या है, यह तो बताओ ।'

'यहाँ के लोगों की स्थिति का अध्ययन करके उनकी सेवा करेंगे ।'

'किस तरह की सेवा ? यहाँ तो लाखों आदमी हैं । भयंकर भुखमरी है । लाखों रुपये चाहिए ।'

'सेवा केवल शरीर की नहीं होती, मन की और आत्मा की भी होती है ।'

'आइलीन, तुम तो पादरियों-जैसी बातें करने लगी हो । मन और आत्मा की सेवा की बात तो मेरी समझ में नहीं आती । हाँ, मेरी मानो तो इन्हें कुछ हस्त-उद्योग सिखलाओ । इनका माल अपने देश में खपाने का प्रयत्न करो । तीन-चौथाई मज़दूरी नकद दो और एक चौथाई ट्रस्ट बनाकर उसमें से इन लोगों के लिए दूसरे काम शुरू करो ।'

'लैम्बर्ट, मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने बुद्धिमान हो । तुम्हारा विचार व्यावहारिक है । और तफ़सील में बताओ ।'

'यहाँ ऊन की कमी नहीं है । उसे धोकर केमिकल द्वारा साफ करके बुनाई का काम शुरू करो । यहाँ अनेक वनस्पतियाँ भी हैं । उन्हें खोजकर प्रयोग करके रंग और दवाएँ बनाओ । पहले स्थानीय आवश्यकताएँ पूरी करो । खनिज-पदार्थ भी बहुत हैं । देखो आइलीन ! जिसे नफे का लालच नहीं है वही इस दुनिया में ठोस कार्य कर सकता है ।'

'तुम तो हमारे नेता की तरह बोल रहे हो । वह भी कहते हैं कि "जहाँ नफा वहाँ आत्मा का अन्धकार, जहाँ सेवा वहाँ आत्मा का प्रकाश" । उनके वाक्य बड़े प्रभावोत्पादक होते हैं ।'

'यह वाक्य तो सचमुच प्रभावोत्पादक है । दूसरे और कौन-से वाक्य हैं ?'

'त्याग के बिना सिद्धि नहीं । त्याग से ही विश्व-बन्धुत्व की भावना उत्पन्न होती है । साम्राज्य विश्व-राज्य का विरोधी है ।'

'इनमें तो कोई विशेषता नहीं मालूम होती ।' लैम्बर्ट ने लापरवाही से कहा ।

'कैसी बात करते हो ! इन वाक्यों में कितना गूढ़ अर्थ भरा है । मनुष्य और देश की महानता उनके त्याग करने की शक्ति में निहित है । त्याग से ही सेवा होती है । साम्राज्यवादी कभी सेवा नहीं कर सकता । सेवा-आत्मा की शुचिता प्राप्त करने

का साधन है। साम्राज्य में लाभ की वासना होती है, इसलिए साम्राज्य प्रकाश नहीं, अन्धकार है।'

लैम्बर्ट उसे देखता रहा; क्योंकि आइलीन की बातों का ढंग तो स्पष्ट ही राजनैतिक था।

'आइलीन, सेवा के नाम पर तुम्हारा मंडल राज्य के विरुद्ध विद्रोह की बातें करता प्रतीत होता है।'

'नहीं, इसमें विद्रोह की कौन-सी बात हुई ? हमारा मंडल तो कहता है कि राष्ट्रवाद संकुचितता है। विश्वव्यापी सेवाभाव ही विकास है। आत्माभिमान, देशाभिमान यह सब मिथ्या हैं। धर्माभिमान भी मिथ्या है। अभिमान से आत्मा संकुचित हो जाती है, भ्रान्ति उत्पन्न होती है, शान्ति नष्ट हो जाती है।'

'ओहो-हो....' कहकर लैम्बर्ट ने सीटी बजाई और बोला, 'आइलीन, तुम सचमुच बदल गई हो !'

'निरे उपदेश से मैं नहीं बदली हूँ और उपदेशों से कोई बदलता भी नहीं। तुम शायद हँसोगे और इसे ढोंग भी कहोगे, किन्तु हमारे अध्यक्ष में चेतन-तत्व का ऐसा सबल प्रवाह है कि हमारी [illegible] हमें विशेष चेतनावाली भूमिका में ले जाते हैं। उनके सिद्धान्त केवल नीति और सेवा के स्थूल स्तर पर आधारित नहीं, चेतना के विशिष्ट अनुभवों पर आधारित हैं।'

'जरा ठीक से समझाकर कहो तो कुछ समझ में आये। एकदम मेरी समझ में नहीं आ सकता। मेरे स्तर का भी तो विचार करो।'

'वह कहते हैं कि जब तक चेतन-तत्व का प्रबल अनुभव न हो नीति और धर्म के आचार-विचार सदैव अपूर्ण और अज्ञान-मिश्रित होते हैं। आचरण की मूल प्रेरणा विचार है और विचार जब तक चेतन-तत्व के पूर्ण प्रकाश में नहीं आता उससे प्रेरित आचरण अन्धकार की परछाईं के ही समान होता है।'

'कौन है तुम्हारा अध्यक्ष ?'

'एक भारतीय हैं। नाम है रंतिनाथ। बिल्कुल गरीब हैं। कहाँ के हैं, कौन थे, इसका भी किसी को पता नहीं।'

'विवाहित हैं ?'

'ऐसा लगता तो नहीं ?'

३४ : तुमको कहीं देखा है !

लैम्बर्ट के लिए पुलओवर बुनती हुई वह बरामदे में बैठी थी। दोपहर का समय था; धूप फैल रही थी। कुछ सैनिक सामान काठगोदाम उतर रहा था, जिसे लेने के लिए लैम्बर्ट गया हुआ था। वह शाम को लौटेगा। कल शाम मार्था का तार आया था कि रतिनाथ, वह और दूसरे मित्र हिन्दुस्तान के लिए चल पड़े हैं। तार के आनन्द में वह जल्दी-जल्दी गूँथ रही थी। सूर्य भी मानो प्रफुल्लित होकर चमक रहा था।

सामने की गिरिमालाओं को देखती हुई वह आनन्द में मग्न बुनाई कर रही थी कि नौकर ने आकर खबर दी, कोई मिलने आया है। उसने नौकर को आज्ञा दी कि आगन्तुक को अन्दर ले आये। कुछ ही देर में एक व्यक्ति ने नौकर के साथ अन्दर प्रवेश किया।

'आप ही हैं प्रेमवल्लभ ! मेरे पति ने आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है। आइए, बैठिए !'

प्रेमवल्लभ ने हाथ आगे बढ़ाया और दोनो ने हाथ मिलाये। कुछ क्षण तक प्रेमवल्लभ एकटक उसकी ओर देखता रहा, लेकिन बोल न सका।

'कब आये आप ? लैम्बर्ट तो काठगोदाम गये हैं। मालूम नहीं कब तक लौटेंगे। वैसे कह तो गये हैं कि शाम को लौट आयेंगे।'

प्रेमवल्लभ उसे एकटक देखता और उसकी बातें सुनता रहा। फिर मानो कुछ होश में आया तो उसे लगा कि वह आवश्यकता से अधिक देर तक एकटक देखता रह गया है। बोला—मैं आज ही आया हूँ। लैम्बर्ट ने आपके आने की बात कही थी। चलिए अच्छा हुआ आप आ गईं। बेचारा आपके बिना तड़प रहा था।

आइलीन प्रेम की ओर देखकर मुस्कराई और फिर सिर झुकाकर बुनने लगी। प्रेमवल्लभ विचारों में तल्लीन हो गया। उसके मन में अत्यधिक आश्चर्य था। उसे लग रहा था कि इस युवती को उसने कहीं देखा है ! लेकिन मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था।

'कितने आश्चर्य की बात है ! मुझे ऐसा लगता है कि मैंने आपको पहले कभी देखा है !'

'हो सकता है; यद्यपि मुझे याद नहीं आता।'

'मैं सिगरेट पीयूँ तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं ?'

'नहीं, जरूर पीजिए; लीजिए मैं ही देती हूँ।' कहकर आइलीन ने अपना सिगरेट-केस उसकी ओर बढ़ाया। वह उसे बारीकी से देख रहा था।

'कितनी विचित्र बात है ! लगता है कि कहीं देखा है, फिर भी याद नहीं पड़ता।'

'दुनिया में कई बार ऐसा होता है। सम्भवतः हमारा सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरों का भी हो !'

इतना कहकर उसने भी एक सिगरेट ली और सुलगाई। प्रेमवल्लभ सिगरेट फूँकता हुआ उसकी ओर देख रहा था। आइलीन की दृष्टि सामने के शिखरों पर स्थिर हो गई थी। उसके चेहरे के बायें भाग पर दृष्टि पड़ते ही प्रेमवल्लभ चौंककर उछल पड़ा। आइलीन ने चेहरा घुमाकर उसकी ओर देखा।

'क्यों, क्या हुआ ?'

'जी....नहीं तो, कुछ यों ही....माफ कीजिए।'

आइलीन की समझ में न आया। कुछ विचित्र-सा भी मालूम हुआ। उसने सोचा कि प्रेमवल्लभ को अवश्य कोई बात याद आ गई है।'

'मुझे ऐसा लगा जैसे कुछ देखकर आप चौंक पड़े हैं।'

'जी नहीं, वह तो यों ही।'

लेकिन उसका वह उछलना यों ही नहीं था। आइलीन भी समझ गई थी कि कोई-न-कोई बात अवश्य है। फिर भी दोनो चुपचाप बैठे सिगरेट पीते रहे। प्रेमवल्लभ का आश्चर्य और उद्वेग शान्त नहीं हुआ था। वह सोच रहा था, कौन है यह स्त्री ? याद क्यों नहीं आता ? फिर उसने मन पर संयम किया और बात को बदलने का प्रयत्न करता हुआ [illegible] - [illegible] आपके लिए एक भारी शेर मारा [illegible] आपको उसकी खाल पसन्द आई ?

'बहुत पसन्द आई। हमने आज ही उसे बम्बई "टेक्सीडर्मिस्ट" के यहाँ पकाने लिए भेज दिया है। लैम्बर्ट स्वयं पार्सल लेकर काठगोदाम गये हैं।'

'हम एक और शिकार-पार्टी का आयोजन करेंगे। आप रानीखेत कब आयेंगी ?'

'एक महीने के बाद। बीच में एक बार जरूर आ जाऊँगी। घर देख आने विचार है।'

'आपका रानीखेत का मकान बहुत अच्छा है; मैं वहाँ मेहमान रहा हूँ ।'

'भविष्य में भी उसी तरह मेहमान बनते रहिए । नई-नई आई हूँ इसलिए सचमुच तो मैं आपकी और लैम्बर्ट की मेहमान हूँ !'

'कुछ ही दिनों में पुरानी हो जायेंगी ।'

'कॉफी पीयेंगे न ?' और उसने नौकर से कॉफी लाने को कहा ।

'आपने तो लैम्बर्ट को खूब प्रतीक्षा करवाई !'

'जी, क्या करती ! तबियत ही ठीक नहीं थी ।'

'हिमालय की जलवायु आपको स्वस्थ और ताजा बना देगी ।'

'मुझे भी इन पाइन, देवदार और ओक के वृक्षों में विश्वास है ।'

'जलवायु तो रानीखेत की भी बहुत अच्छी है ।'

'आप कहाँ रहते हैं ?'

'अलमोड़ा ।'

'काम तो बहुत होगा ।'

'जी हाँ, काम काफी रहता है । जिला बहुत-बड़ा है ।'

'अकेले ही हैं ?' इतना पूछकर आइलीन ने उसकी ओर देखा ।

'जी ।' प्रेमवल्लभ ने संक्षिप्त उत्तर दिया ।

'इन पर्वतों में एकाकीपन का विशेष अनुभव होता होगा ?'

'होता है; लेकिन उपाय ही क्या है ?'

'उपाय क्यों नहीं है !' आइलीन ने कहा और हँसने लगी । प्रेमवल्लभ भी हँस दिया ।

'क्या चल रहा है इंग्लैण्ड में ?'

'युद्ध की भनक सुनाई देने लगी है । हिटलर चुप नहीं रहेगा ।'

'सब यही कहते हैं । मौका तो काफी दिया है आपके चैम्बरलेन साहब ने ।'

'यह तो हम लोगों का स्वभाव है । हमें लड़ाई पसन्द नहीं । जब तक समाधान की सम्भावना होगी अँग्रेज कभी झगड़ा मोल नहीं लेंगे ।'

'आप ठीक कहती हैं; लेकिन हिटलर नहीं समझ सकता ।'

'तो फिर समझाना पड़ेगा । लेकिन मुझे तो यह सब पाश्चात्य फिलॉसफी का ही परिणाम मालूम पड़ता है ।'

'आपकी यह बात भी असत्य नहीं है।'

'साम्राज्यों का लोभ मनुष्य को बिगाड़ देता है।'

'ऐसा तो नहीं है। ब्रिटेन के पास साम्राज्य है फिर भी वह आक्रान्ता नहीं।'

'रहने भी दीजिए। मैं जानती हूँ कि आप यहाँ के हाकिम हैं। साम्राज्य नफ़ा-खोरी के लिए बना है और नफ़ाखोरी मनुष्य की आत्मा को हिंसक और आक्रमक न कर दे, यह कभी माना नहीं जा सकता।'

'लाभ को एक सीमा में रखा जा सके तब तक तो कोई हानि नहीं होती।'

'नफ़ा और नशा समान हैं। उनकी कोई सीमा नहीं होती।'

'यह पुलओवर लैम्बर्ट के लिए बुन रही हैं?'

'जी हाँ; आपको यह रंग पसन्द है?'

'बहुत अच्छा है! मैं बड़ी देर से देख रहा हूँ।'

'इसके बाद आपका नम्बर आयेगा।'

'बहुत-बहुत धन्यवाद! लेकिन मैं आपका समय नहीं ले सकता।'

'मुझे तो समय देना है; नहीं तो समय आखिर बीतेगा कैसे?'

'समय बिताने के लिए क्लब में ताश खेलिए, टेनिस खेलिए, घोड़े दौड़ाइए, शिकार कीजिए।'

'इन खुराफ़ातों की अपेक्षा किसी के कपड़े बुनूँ, सिलाई करूँ, पढ़ाऊँ या सेवा करूँ तो क्या बुरा है?'

'वाह, आप तो सेवाभावी आत्मा हैं! लेकिन यहाँ तो सब आपकी सेवा के लिए तैयार हैं।'

'सेवा का आदान-प्रदान तो होना ही चाहिए। आप हाकिम लोग जब तक सेवा करते हैं तभी तक आपको सेवा कराने का अधिकार है।'

आइलीन के शब्दों का मीठा और चुभता व्यंग्य प्रेमवल्लभ समझ गया। कॉफ़ी आई और दोनो पीने लगे।

'आप मानती हैं उसी तरह सब मानने लगें तो पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आये।'

'मानना एक बात है और आचरण करना दूसरी। जब तक मैं अपनी मान्यता को कार्यरूप में परिणत न करूँ तब तक दुनिया की बात छोड़िए, स्वयं मेरे लिए भी स्वर्ग नहीं उतर सकता।'

प्रेमवल्लभ ने आइलीन के शब्द आश्चर्य और श्रद्धा से सुने। उसने समझ लिया कि आइलीन रोब-दाब और चटक-मटकवाली सामान्य अँग्रेज मेम नहीं, एक असाधारण महिला है।

'मिसेज़ लैम्बर्ट, आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। मुझे आपकी बातें बहुत अच्छी लगती हैं; बिलकुल गले उतर जाती हैं।'

'आप तो हँसी उड़ाने लगे।'

'नहीं-नहीं! आपकी बातें बिलकुल सच हैं, लेकिन क्या करना चाहिए, यह बतलाइए।'

'मुझे क्या मालूम? आप ही सलाह दीजिए। आप यहाँ के लोगों से भली-भाँति परिचित हैं।'

'हुकूमत करनेवाले सेवा नहीं कर सकते।'

'आप तो हमारे मंडल के अध्यक्ष की भाँति बोल रहे हैं। वह कहते हैं कि तुम हमें मास्टर—अध्यक्ष—न कहो। मैं अध्यक्ष बनूँगा तो सेवक मिट जाऊँगा; स्वार्थी और संकुचित हो जाऊँगा। सेवा की दुनिया में कोई अध्यक्ष नहीं है। वही हम लोगों का निर्माण कर रहे हैं।'

प्रेमवल्लभ ध्यान से सुनता रहा; उसकी जिज्ञासा बढ़ रही थी।

'कृपया आप अपने मंडल और अध्यक्ष की बातें विस्तार से सुनाइए।'

आइलीन ने संक्षेप में सब कह सुनाया। प्रेमवल्लभ शान्तिपूर्वक सुनता रहा। उसने आनन्दित होकर कहा—अद्भुत व्यक्ति है!

'हम भी ऐसा ही मानते हैं।'

'कौन हैं?'

'इसी देश के हैं। और तो उनके बारे में कोई कुछ नहीं जानता।'

'अच्छा-खासा मंडल जमा लिया है उन्होंने।'

'मंडल उन्होंने नहीं जमाया उनके आसपास स्वयं जम गया है। उन्हें प्रसिद्धि का मोह नहीं। वह तो कहते हैं कि जो प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता है वह अन्धकार में डूबता है। प्रकाश को प्रसिद्धि की आवश्यकता ही नहीं होती।'

'आपको क्या लगता है? जो कुछ वह देख और अनुभव कर रहे हैं वह क्या इस धरती पर उतर आवेगा?'

'जरूर उतर आयेगा। मैं तो ऐसा ही मानती हूँ।'

'क्या वह कभी इधर भी आयेंगे?'

'कुछ ही दिनों बाद आनेवाले हैं। हमें यहाँ एक शाखा स्थापित करनी चाहिए।'

'मैं आपकी पूरी मदद करने को तैयार हूँ।'

'आपकी मेहरबानी!'

'उस व्यक्ति के सम्बन्ध में क्या कोई कुछ भी नहीं जानता?'

'जी नहीं; हममें से तो कोई नहीं जानता।'

'इस ज्ञान के अतिरिक्त भी उनमें कोई शक्ति है?'

'प्रेमवल्लभ, आप मानें या न मानें, लेकिन एक बात कहती हूँ। वह दिशा और काल को भेदकर देख सकते हैं और दिखला भी सकते हैं।'

प्रेमवल्लभ चौंक पड़ा। बोला—क्या कह रही हैं आप?

'हाँ, वह कहते हैं कि स्थूल अणु-परमाणुओं को इच्छानुसार एकत्रित किया और बिखेरा भी जा सकता है। यह शक्ति कैसे प्राप्त होती है, इसका वर्णन आपके वेदों में है।'

'लेकिन क्या आपको भी स्वयं ऐसा कोई अनुभव हुआ है?'

'मुझे ऐसे अनुभव हुए हैं जिन्हें मैं चमत्कार के सिवा दूसरी कोई संज्ञा नहीं दे सकती। वे अनुभव उनकी प्रबल शक्ति से ही हुए हैं।'

प्रेमवल्लभ फिर चौंका और एकटक आइलीन की ओर देखने लगा।

'ये बातें सुन-सुनकर जी ऊब गया हो तो क्षमा चाहती हूँ।'

'जी नहीं, जरा भी नहीं। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। शाम को क्लब में लैम्बर्ट से मिल लूँगा। आप तो साथ होंगी ही?' कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

'देखा जायेगा।' कहती हुई आइलीन उसे दरवाजे तक पहुँचा आई।

३५ : नैनी देवी में

मल्लीताल उतरकर बाजार में होता हुआ प्रेमवल्लभ यॉट क्लब की ओर जा रहा था। उसके मस्तिष्क में आइलीन के विचार घूम रहे थे। क्लब का मार्ग एकदम निर्जन था।

वह अपने विचारों में खोया हुआ आगे बढ़ा जा रहा था कि सामने एक आदमी

दिखाई दिया। वह व्यक्ति रास्ता लाँघकर नैनी देवी के मन्दिर की ओर जा रहा था। उसके शरीर पर सफेद शाल, सिर पर सफेद साफ़ा और मस्तक पर लाल तथा काले तिलक लगे थे। उसे देखते ही प्रेमवल्लभ ने घोड़ा रोक दिया। यह व्यक्ति वही पुजारी था।

'क्यों महाराज, आप यहाँ कैसे ?'

पुजारी ने नैनी देवी के मन्दिर की ओर उँगली उठाई और नमस्कार करके चलने लगा।

'चलिए, मैं भी दर्शन करने चलता हूँ।'

उसने प्रेमवल्लभ के शब्द सुने और उसकी ओर एक दृष्टि डालकर चल पड़ा। प्रेमवल्लभ ने भी उसका अनुसरण किया।

पुजारी ने मन्दिर में प्रवेश किया और एक गुफा-जैसी कोठरी की ओर बढ़ गया। प्रेमवल्लभ उसके पीछे-पीछे चल रहा था। कोठरी के दरवाजे पर आकर उसने देखा तो वहाँ पुजारी नहीं था, किन्तु एक साधु धूनी रमाये बैठा था।

'बाबाजी, अभी-अभी एक आदमी आपकी कोठरी में घुसा है, वह कहाँ गया।'

कोठरी बिलकुल छोटी थी और साधु के सिवा उसमें कोई नहीं था। यह देख प्रेमवल्लभ के आश्चर्य का पार न रहा।

साधु बूढ़ा था। उसका शरीर बिलकुल दुबला-पतला और कृश होते हुए भी नेत्र बड़े दारुण थे। उनमें उतनी भयंकरता थी कि सामनेवाला व्यक्ति डर के मारे काँप उठे। उसने प्रेमवल्लभ की ओर आँखें गड़ाकर पूछा—क्या काम है ?'

उसका स्वर धीमा, किन्तु डरावना था। प्रेमवल्लभ को भी अपनी सत्ता का गर्व था। वह डरा नहीं; बोला—बाबाजी, मेरी बातों का जवाब देते हो या पुलिस को बुलाऊँ ?

बाबाजी आँखें गड़ाये उसकी ओर देखते रहे; लेकिन उत्तर नहीं दिया।

'बाबाजी, बतलाते हो या आफ़त ही मोल लेनी है ?'

बाबा की आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। [illegible] को कष्ट देनेवाला इस दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। योगी तो राजाओं का भी राजा है।

प्रेमवल्लभ ने देखा कि धमकी देने से काम नहीं चलेगा इसलिए उसने मोरचा बदल दिया।

'आप ठीक कहते हैं। लेकिन मैं तो आप से इतना ही पूछ रहा हूँ कि एक व्यक्ति अभी-अभी इस कोठरी में आया, वह कहाँ चला गया? मेरा आपसे या उससे कोई झगड़ा तो है नहीं।'

'लेकिन काम क्या है?' बाबा ने फिर पूछा।

'मुझे उसी से काम है, आपसे नहीं। आप क्यों नाहक ज़िद करते हैं?'

'ज़िद तो तू ही कर रहा है, बच्चा!'

उत्तर सुनकर प्रेमवल्लभ को लगा कि सारा हाल इस बाबा को सुनाना पड़ेगा। बोला—देखिए बाबाजी, उस आदमी को मैंने एक मन्दिर में पूजा करते देखा था। मुझे उसमें कुछ विशिष्टताएँ दिखाई दीं। अभी क्लब जा रहा था तो उसे इधर आते देखा। मुझे उससे कुछ बातें करना है।

'क्या बातें करोगे?'

'बाबाजी, अगर आपको उससे कुछ वास्ता हो तो मैं आपसे कह सकता हूँ; लेकिन आपको कोई वास्ता तो है नहीं।'

'अच्छा बच्चा, तुझे वास्ता नहीं है तो समझ ले कि तुझे भी वास्ता नहीं है।'

'यह क्यों नहीं कहते कि मैं उससे मिलूँ ऐसी आपकी इच्छा नहीं; तो लीजिए, मैं यह चला।'

और प्रेमवल्लभ उठकर खड़ा हो गया। बाबा ने उसकी ओर देखा और इस तरह हँसा जैसे कुछ हुआ ही नहीं। फिर बोला—बैठो।

और तब उसने शंख बजाया। एक छोटी-सी उम्र का साधु-जैसा व्यक्ति कोठरी के द्वार पर आ खड़ा हुआ।

'शिवमित्र को भेजो।' बाबाजी ने कहा।

वह आदमी चला गया और थोड़ी देर बाद वही पुजारी आ पहुँचा।

'शिवमित्र! यह तुमसे मिलने आये हैं। तुम मिलना चाहते हो इनसे?'

'जी नहीं।'

'तुम इन्हें पहिचानते हो?'

'जी नहीं।'

'कभी देखा है?'

'जी नहीं।'

'कुछ कहना चाहते हो ?'

'जी नहीं।'

प्रेमवल्लभ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस आदमी को कोठरी में घुसते देखा था और अब वह बाहर से आ रहा था। दूसरे, वह 'जी नहीं' के सिवा कुछ बोलता ही नहीं था।

'क्यों, हम लोग अष्टभुजा देवी के मन्दिर में मिले नहीं थे?' प्रेमवल्लभ ने पूछा। वह आदमी चुप रहा।

'बोलो, तुम इनसे मिले थे?' बाबा ने पूछा।

'जी नहीं।'

बाबा ने प्रेमवल्लभ की ओर देखकर पूछा—तुम्हें इनसे क्या काम है?

'इसे देखकर मुझे आश्चर्य होता है। क्या इस आदमी को जरा भी स्वतंत्रता नहीं?'

'तुम्हें यहाँ बैठना है?'

'जी नहीं।'

बाबा ने प्रेमवल्लभ की ओर देखा। प्रेमवल्लभ को लग रहा था मानो वह आदमी निरा पुतला ही हो।

'बाबाजी, यह आदमी कभी "जी हाँ" भी कहता है या नहीं?' प्रेमवल्लभ ने बाबा से पूछा।

बाबा ने शिवमित्र की ओर देखकर कहा—'बोलो, यह ठीक कह रहे हैं?

'जी हाँ!'

अब प्रेमवल्लभ को विश्वास हो गया कि वह मनुष्य नहीं, यंत्र ही था। बाबा ने ताली बजाई और शिवमित्र चला गया।

फिर प्रेमवल्लभ और बाबा एक-दूसरे को ताकने लगे।

'कौन हो तुम?' प्रेमवल्लभ ने धीमे स्वर में पूछा।

'जानकर क्या करोगे?'

प्रेमवल्लभ समझ गया कि यहाँ सभी-कुछ चमत्कार और रहस्यपूर्ण है। बोला—अच्छा बाबाजी, आप चमत्कारी हैं तो बने रहिए।

'बोलो, और कुछ पूछना है?'

'क्या पूछूँ ? न तो आप स्वयं जवाब देते हैं और न दूसरे को बोलने देते हैं !'

'बोलो, क्या पूछना है ?'

'यह सब क्या है ? यह व्यक्ति अष्टभुजा के मन्दिर में नहीं था ?'

'तुम वहाँ जाते हो ?'

'एक बार गया था। शिकार की जगह देखकर लौटते समय मैं और मेरा अँग्रेज दोस्त मन्दिर देखने गये थे। वहाँ यह व्यक्ति पूजा कर रहा था।'

'पूछना क्या चाहते हो ?' कहकर बाबा ने घूरकर प्रेमवल्लभ की ओर देखा।

'मैंने अपने चपरासी से सुना है कि उस मन्दिर में कुछ भेद-वेद है। कोई युवती आधीरात के बाद आती है और सवेरा होने से पहले चली जाती है। इस आदमी से मैंने पूछा था, लेकिन इसने कोई उत्तर नहीं दिया।'

बाबा समझ गया कि यह कोई हाकिम है। -

'तुम्हीं अलमोड़ा के डिप्टी कलक्टर हो ? तुम्हारे पिता मेरे पास आते थे। मैंने उनसे कहा था कि तुम्हारा पुत्र बड़ा हाकिम बनेगा।'

'हाँ, मुझे याद आ रहा है। मेरे पिता किसी घोरानन्द साधु की बात करते थे। क्या आप ही घोरानन्द हैं ?'

'हाँ, मिलते रहा करो कभी-कभी।'

'लेकिन क्या वह औरतवाली बात सच है ?'

'जिसने देखा है उसे देखने दो। तुम ऐसी बातों में मत पड़ो।'

'क्यों ?'

'पड़ना ठीक नहीं।'

'मेरा तो विचार है कि क्यों न खुद ही एक रात वहाँ जाकर देखूँ।'

'किस लिए ? क्या तुम्हें औरत चाहिए ?'

'जी नहीं, सिर्फ कुतूहल।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

अब प्रेमवल्लभ ने मूल विषय पर आते हुए कहा—बाबाजी, सुना जाता है कि वहाँ कोई आदमी आता है, देवी को बलि चढ़ाता है और कुछ युवतियों के साथ साधना करता है। क्या यह सच है ?

बाबा आँखें फाड़कर विकराल दृष्टि से प्रेमवल्लभ को घूरने लगा।

'किससे सुना ?' उसके स्वर में रौद्र भयंकरता थी।

'उसी ओर का कोई आदमी कह रहा था।'

'क्या उसने स्वयं देखा ?'

'कहता तो वह यही था ?'

'उसका भाग्य, जो जिन्दा बाहर आ गया।'

'यह सब क्या है महाराज ?'

'उग्र साधनाएँ हैं।'

'लेकिन क्या वे युवतियाँ भी सचमुच की थीं ? वे कहाँ से आती हैं ?'

'वह सृष्टि स्वयंभू है।'

'देवी को वह सब पसन्द है ?'

'जैसी वृत्ति वैसी सृष्टि। देवी तो प्रकाश हैं।'

'दिखती भी हैं या नहीं ?'

'वृत्तियाँ वशीभूत हों तो देखा भी जा सकता है।'

'लेकिन ऐसी साधनाओं से वृत्तियाँ वश में नहीं होतीं, बहकती हैं।'

'यही तो भूल है। बहकी हुई वृत्तियों को वश में लाने की यह विपरीत क्रिया है। विपरीत है इसी लिए उसे वाम कहते हैं। लेकिन यह चर्चा का विषय नहीं।'

प्रेमवल्लभ सुनता रहा। उसके मस्तिष्क से उस रातवाला दृश्य हट नहीं रहा था। उसने प्रश्न किया—ऐसा भी सुना है कि माताजी स्वयं दर्शन देती हैं। वह आदमी कहता था कि उसने आधीरात के बाद एक पुरुष और एक स्त्री को मन्दिर में देखा जिन्हें माताजी के साक्षात् दर्शन हुए।

घोरानन्द विचारमग्न हो गया। उसकी आँखें मुँद गईं। उसके मुँह पर दीनता छा गई, उसने मन्द स्वर में कहा—मुझे कभी नहीं हुए भाई, बहुत तप किया, बहुत रोया, बहुत अनुनय-विनय की, लेकिन मुझे माता कभी दिखाई नहीं दीं। सिद्धियों की चमक-दमक देखी, तुच्छ कोटि के लाभ हुए, किन्तु भगवती का दिव्य वैभव नहीं देख पाया! एक ही व्यक्ति ने उसे देखा है, सिर्फ एक ही व्यक्ति ने। वह उसका सच्चा भक्त था, उसे सिद्धि प्राप्त थी।

'क्या वह भी इसी प्रकार वाम-साधना और विपरीत क्रिया करता था ?'

'नहीं भाई, मैंने उसे साधना करते नहीं देखा। जिस प्रकार बालक मा से माँगता है उसी प्रकार वह माँगता था। भूला, मागता नहीं, मा को दे देता था। वह केवल ध्यान करता था। जब वह दर्शन करता तो मैं भी भगवती के धुँधले दर्शन कर लेता था, लेकिन वे दर्शन मुँह के नहीं पीठ के होते थे।' घोरानन्द की आँखों में आँसू भर आये थे।

प्रेमवल्लभ बाबा के चेहरे की ओर देखकर रह गया। बाबा के नेत्रों से विषाद झाँक रहा था। उसने बूढ़े के हाथ पर अपना हाथ रख दिया।

'बाबाजी, मैं आपकी वेदना को समझ तो नहीं सकता, किन्तु देख जरूर सकता हूँ। कहाँ है वह व्यक्ति ? क्या मैं उससे मिल सकता हूँ ?'

'कोई पता नहीं है उसका; लेकिन इतना अवश्य मानता हूँ कि जहाँ भी होगा वहाँ से वह आता अवश्य होगा। वह तो सिद्ध है, सच्चा सिद्ध। अहा-हा! मा के लिए उसने कितना त्याग किया। ओह, कितना! त्याग से वह महान हुआ, त्याग से सिद्ध बना, त्याग से ही अमर भी हो गया।'

वृद्ध की आँखों से चौधार आँसू बह रहे थे।

'बाबाजी, आप अपने शिवमित्र को कुछ बोलने क्यों नहीं देते ?'

'साधना में सारी शक्ति लगानी और उसकी रक्षा भी करनी पड़ती है। यही हमारा नियम है।'

'वह कब जी खोलकर बोल सकेगा ?'

'जब उसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।'

'लेकिन आप ही तो कह रहे हैं कि इस मार्ग से स्वयं आप भी दर्शन नहीं कर सके, तो वह कैसे करेगा ?'

'कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'तो फिर सीधा मार्ग क्यों नहीं बतलाते ?'

'मुझे मार्ग का पता नहीं; मैं तो केवल वाम जानता हूँ।'

देर हो गई थी। प्रेमवल्लभ ने बाबा से आज्ञा ली और क्लब की ओर चल पड़ा। सारी बातें उसके मस्तिष्क में घूम रही थीं। उसके मन में नये-नये विचार उभरने लगे और कुछ ही देर बाद वह फिर आइलीन के विचारों में खो गया।

३६ : याट क्लब में

शाम को प्रेमवल्लभ क्लब में बैठा-बैठा लैम्बर्ट और आइलीन की प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी ही देर में वे भी आ पहुँचे।

'अच्छा हुआ, आप लोग आ गये। मैं आपसे बातें करना चाहता हूँ।'

'बस, सिर्फ बातें ही! कुछ काम कीजिए तो ज्यादा अच्छा हो; मैं तो एक मंडल की स्थापना करना चाहती हूँ।'

'स्थापित हो ही गया समझिए। एक सदस्य तो मैं। और लैम्बर्ट में क्या दम है जो इनकार करे!'

'जहाँ बहुमत वहीं मैं। तुम दोनो एक तरफ और मैं दूसरी तरफ, यह हो ही कैसे सकता है!' लैम्बर्ट ने कहा।

'आप नियमानुसार प्रारम्भ कर दीजिए। आप ही हमारे अध्यक्ष हैं।'

'नहीं, अध्यक्ष-पद पर तो महिलाएँ ही शोभा देती हैं। मैं आपका मंत्री या कोषाध्यक्ष बन सकता हूँ। लैम्बर्ट, तुम क्या बनना चाहते हो?'

'जो भी आइलीन बना दे।'

'पहले हम पचीस-तीस आदमियों की एक मीटिंग करें और उन्हें मंडल की कार्य-प्रणाली समझायें। फिर एक समिति बनाई जाये। आपने किसी से बात की?'

'नहीं, मैं तो आपके घर से आने के बाद यहीं डेरा डाले पड़ा हूँ।'

'मैंने दो-तीन साथियों से बात की है; वे शामिल होने को तैयार हैं।' लैम्बर्ट ने कहा।

'मैं भी अपने स्टाफ के लोगों से बात करूँगा। दो-तीन जमींदारों को भी साथ ले लेंगे।'

'रतिनाथ के यहाँ आने से पूर्व एक छोटी समिति बनाकर स्वागत-समिति की स्थापना कर लें। लेकिन समिति में हाकिम और जमींदार ही क्यों हों? दो-तीन घोड़ेवाले, दो-तीन रिक्शेवाले, दो-तीन डाँडीवाले, दो-तीन मल्लाह, दो-तीन लकड़हारे, दो-तीन दूकानदार—सभी को इकट्ठा करें।' आइलीन ने प्रस्ताव रखा।

'ठीक है। करतारसिंह, पृथ्वीसिंह, मोहनसिंह—यह तीन तो हैं ही।' प्रेमवल्लभ बोला।

'मेरे भी तीन-चार सिपाही गिन लो।'

'इनके अतिरिक्त मैं और भी पाँच-सात आदमी ले आऊँगा। और लैम्बर्ट, तुम भी इतने ही ले आओ, जिसमें गाड़ी चल निकले।'

'तो परसों मीटिंग कर ली जाये। प्रेम, तुम्हें मीटिंग में बोलना होगा।'

'नहीं, बोलने के लिए तो आप ही ठीक रहेंगी।'

'मैं जरूर बोलूँगी, लेकिन मेरा समर्थन करने के लिए आपको बोलना होगा।'

'लैम्बर्ट को भी बोलना चाहिए।' प्रेम ने कहा।

'जी नहीं, सिपाही कभी बोलता नहीं, सुनता है और अनुसरण करता है। बोलना मेरा काम नहीं।'

'ठीक है, मैं अपने सरिश्तेदार से भाषण करने के लिए कह दूँगा। इस सम्बन्ध में वह बहुत पढ़ता रहता है।' प्रेम ने रास्ता निकाला।

'और कोई नया समाचार?' लैम्बर्ट ने पूछा।

'उस पुजारी को देखा; लेकिन उसके मुँह में तो जैसे ताला पड़ा है।'

'कहाँ देखा? यहीं?'

'हाँ, लेकिन वह सब मैं उससे नहीं पूछ सका। उसका कोई गुरु था, उसने जरूर कुछ अनोखी बातें कही हैं। लैम्बर्ट, तुम मानो या न मानो, लेकिन वह मन्दिर, वह पुजारी, उसका गुरु—सब रहस्यपूर्ण चमत्कार मालूम होता है। मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता!'

'जब आप हमारे अध्यक्ष से मिलेंगे तब मालूम हो जायेगा कि रहस्य और चमत्कार क्या वस्तु है।'

आइलीन के शब्द सुनकर वह उसकी ओर स्थिरता से देखने लगा। उसे कुछ कहने की इच्छा हुई, किन्तु यह सोचकर कि इस प्रसंग पर मौन रखना ही ठीक है, वह चुप रहा।

'प्रेम, आइलीन कहती थी कि तुमने उसे कहीं देखा है!'

'मुझे ऐसा ही लगा था और अब भी लग रहा है। अब तो निश्चित रूप से मानता हूँ कि मैंने इन्हें पहले कभी देखा है।'

'हो सकता है। पहले वह लखनऊ रह चुकी हैं। तुम भी तो लखनऊ में थे?'

'हाँ, यह भी हो सकता है।'

'यही होना चाहिए। क्योंकि आप लन्दन तो आये नहीं, जो वहाँ देख लेते।'

इस बीच दूसरे भी चार-पाँच आदमी आ पहुँचे। उनमें एक जमींदार था, दो हाकिम थे और एक था बड़ा व्यापारी। देखते-देखते क्लब में भीड़ हो गई। अधिकांश अँग्रेज थे। रमी और ब्रिज की टेबलें जम गईं और कुछ लोग बिलियर्ड खेलने लगे।

सरोवर के किनारे लगे हुए रंग-बिरंगे दीपकों के प्रतिबिम्ब से वातावरण जगमगा रहा था। लैम्बर्ट बिलियर्ड खेलने चला गया और प्रेमवल्लभ ब्रिज की टेबल पर जम गया। आइलीन और कर्नल कॉटन एक झरोखे में बैठे-बैठे बातें करने लगे।

कॉटन लैम्बर्ट का उच्चाधिकारी था; उसे लैम्बर्ट से स्नेह था। उसी के बँगले में लैम्बर्ट और आइलीन रहते थे। आज रात-भर के लिए वह रानीखेत से आया था और प्रातःकाल उसे जनरल के साथ जाना था। दोनो के सोने की व्यवस्था क्लब में ही की गई थी।

कॉटन शान्त स्वभाव का विनम्र और प्रौढ़ व्यक्ति था। लैम्बर्ट पर उसकी बड़ी कृपा थी और वह उसे मेजर बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

'आप तो हम पर बड़ा उपकार कर रहे हैं कर्नल! हमारे साथ ही रहते तो बड़ी खुशी होती।'

'रहूँगा, एक-दो दिन रुकना हुआ तो अवश्य रहूँगा। तुम एक दिन रानीखेत आओ।'

'जी हाँ; जरूर आऊँगी। सुबह चलकर शाम को लौट आऊँगी। सुना है बड़ा अच्छा स्थान है।'

'तुम्हारे आने से और भी अच्छा हो जायेगा! लैम्बर्ट कहता था कि तुम कोई संस्था स्थापित करना चाहती हो?'

'जी हाँ, उसमें आपकी सहायता भी चाहती हूँ।'

'पुस्तिका मैंने पढ़ ली है। मैं अवश्य ही यथासम्भव सहयोग दूँगा। सुना है कि तुम्हारे अध्यक्ष भी कुछ दिनों में यहाँ आ रहे हैं।'

'जी हाँ! उनके आने से पहले एक मीटिंग बुलाकर समिति बना लेनी चाहिए। आपको उसका प्रमुख बनना होगा।

'तुम्हें कैसे इनकार कर सकता हूँ।'

'परसों शाम को मीटिंग रखी है। आप कहें तो रानीखेत में ही कर लें।'

'यहीं ठीक रहेगी; लेकिन कुछ जल्दी रखो। साढ़े तीन का समय ठीक रहेगा; ताकि मैं साढ़े पाँच बजे खत्म करके लौट सकूँ।'

'ठीक है। लेकिन रात में हमारे यहीं रुकिए।'

'समय हुआ तो जरूर रुकूँगा।'

'आप कहाँ के रहनेवाले हैं?'

'समरसेट का।'

'लैम्बर्ट कहते थे कि आप कुँवारे हैं।'

'हाँ, विवाह नहीं किया सो नहीं ही किया।'

'देर तो अब भी नहीं हुई है कर्नल!'

'अड़तालीस वर्ष तो हो चुके। तुम्हारे-जैसी युवतियाँ तो अब मुझसे विवाह करेंगी नहीं।'

'करेंगी क्यों नहीं? प्रेम और उम्र का क्या सम्बन्ध? और आपकी तो उम्र भी कम मालूम होती है। हमारे अध्यक्ष की उम्र भी आपके जितनी ही है।'

'तो क्या उनसे युवतियाँ प्रेम करती हैं?'

'मुझे-जैसी अट्ठाईस वर्ष से लेकर अड़सठ वर्ष तक की औरतें उनके प्रेम में पागल हैं।' आइलीन ने हँसकर कहा।

'तब तो वह जबरदस्त "डॉन जुआन" होना चाहिए!'

'प्रेम और प्रेमियों के सम्बन्ध में आपके विचार "डॉन जुआन" [illegible] हैं शायद।'

'झूठ तो नहीं है!'

'सच-झूठ तो मैं नहीं जानती, किन्तु इतना अवश्य जानती हूँ कि "डॉन जुआन" से वे बहुत दूर हैं। "डॉन जुआन" तो दस जनम में भी उसकी समता नहीं कर सकता।'

'तब तो वह "डॉन जुआन" का भी दादा है। वरना इतनी युवतियों को लेकर कैसे घूम सकता है?'

'आप भी कमाल करते हैं कर्नल! वह तो दैवी पुरुष हैं; स्थूल के पुजारी नहीं।'

'सुनने में बड़ा अजीब लगता है। लेकिन जैसा तुम कहती हो, आदमी ही अजब ढंग का होना चाहिए।'

कॉटन उसकी ओर देखने लगा। आइलीन की दृष्टि झील की ओर थी। ऐसा लगता था मानो वह वहाँ कुछ देख रही हो। कॉटन की समझ में नहीं आ रहा था कि झील अधिक सुन्दर है या आइलीन। जब आइलीन की सुन्दर आँखों पर उसकी दृष्टि गई तो उसे विश्वास हो गया कि सरोवर से वही अधिक सुन्दर है।

'छोकरी, तू अधिक विचार न कर, नहीं तो झील को तुझसे ईर्ष्या होने लगेगी।'

इतना कहकर वह आइलीन का दाहिना हाथ थपथपाने लगा। आइलीन ने कर्नल की ओर स्नेहपूर्वक देखकर कहा—माफ़ कीजिए, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था।

'नहीं बेटी, नहीं। अच्छा बोलो, क्या खाओगी?'

'टोस्ट, पनीर और मशरूम मँगवाइए।'

कर्नल ने आर्डर दिया और फिर दोनों बातें करने लगे।

'बिटिया, तू तो अपनी धुन की पक्की है।'

'पागल हूँ, यही न?'

'नहीं, जरा भी नहीं। सैनिक की तरह धुन की पक्की।'

'सो तो होना ही चाहिए। मेरे पिता सैनिक थे।' कहते ही उसकी आँखों में विषाद छा गया।

कर्नल ने उसका हाथ थपथपाकर कहा—मान ले कि मैं ही तेरा पिता हूँ।

आइलीन ने कर्नल का हाथ दबाया। उसका चेहरा आशा, उत्साह और आनन्द से खिल उठा।

'आप कितने अच्छे हैं कर्नल!'

प्रेम और लैम्बर्ट भी आ गये। कर्नल ने उनके लिए भी खाना मँगवाया।

'क्या हुआ लैम्बर्ट, हार या जीत?'

'हार गया।'

'और तुम?'

'मैं भी हार गया।'

'कोई बात नहीं; जो जीते हैं उनकी खुशी में खायें-पीयें। क्यों आइलीन?'

'हार और जीत दोनो में आनन्द होना चाहिए। खेल आनन्द के लिए है, इसलिए हार-जीत में आनन्द ही होना चाहिए।'

'सच ही तो कह रही है। तुम लोग इस लड़की की बात को समझो और मुस्कराओ। बोलो, क्या लोगे?'

सैनिकों के उपयुक्त हँसी-विनोद और अट्टहास के बीच सबने खाना-पीना शुरू किया। आइलीन भी उत्साहपूर्वक भाग ले रही थी। वे जमींदार और हाकिम भी इस पार्टी में शामिल हो गये। सबके आकर्षण का केन्द्र आइलीन थी।

'आनन्द! क्यों बेटा, आनन्द क्या चीज़ है? बता सकते हो?' सबकी ओर देखते हुए कर्नल ने पूछा।

'खाना-पीना, कर्नल!' एक ने कहा।

'नहीं।'

'कर्नल की उपस्थिति।' दूसरा बोला।

'अबे जा, ऐसा क्यों नहीं कहता कि इस लड़की की उपस्थिति।' कर्नल ने सुधारा।

'हाँ-हाँ, मिसेज़ लैम्बर्ट की उपस्थिति।' चार-पाँच व्यक्ति बोल उठे। कर्नल ने आइलीन की ओर देखा।

'बेटी, पंच सो परमेश्वर। मानना होगा कि आनन्द तुम्हीं हो।'

'नहीं कर्नल! ऐसा माना जाये तब तो मेरी अनुपस्थिति में यहाँ शोक के बादल छा जाने चाहिए। लैम्बर्ट के लिए कदाचित् ऐसा माना भी जा सकता है, लेकिन सबके लिए तो कदापि नहीं।'

'सुना मूर्खो! दो जवाब। लेकिन कहाँ से दे सकते हो? सब मुझ-जैसे बुद्धू जो हो!'

कर्नल के शब्द सुनकर सब खिलखिला पड़े।

'लैम्बर्ट, तू एक ही बुद्धू है। प्रेम, जेक्सन, राजबिहारी, तुम सभी बुद्धू हो। सुनो यह लड़की क्या कहती है। बोल बेटी!'

'कर्नल मेरे पिता हैं और मेरे पिता बुद्धू हरगिज नहीं हो सकते। मैं मानती हूँ कि उन्हीं की उपस्थिति मेरा और हम सबके आनन्द का कारण है।'

'हीअर-हीअर!' और तालियाँ बज उठीं।

'बेटी, तू बड़ी चतुर है। तू यही कह रही है न कि बुड्ढ़े मियाँ सबके आनन्द का कारण है?'

जोर से ठहाका लगा।

'नहीं, ऐसा मैंने कभी नहीं कहा और न किसी ने सुना। मैं सबकी ओर से आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप हमें आनन्द की परिभाषा समझायें। आनन्द क्या वस्तु है?'

फिर 'हीअर-हीअर' होने लगा।

'देख, सब तेरी बातों पर "हीअर-हीअर" करते हैं। तू मुझे सच ही पिता मानती है तो मैं आज्ञा देता हूँ कि तू ही आनन्द के बारे में बता।'

'कर्नल ठीक कह रहे हैं। कहिए मिसेज़ लैम्बर्ट, आप ही कहिए।' तीन-चार व्यक्ति एक साथ बोल उठे। आइलीन कुछ देर तक हँसती हुई सबकी ओर देखती रही। फिर कर्नल की ओर देखकर मधुर मुस्कान के साथ बोली—आनन्द का अर्थ है अहम् का अभाव। जैसा और जितना अभाव होगा वैसा और उतना ही आनन्द भी होगा।

'हीअर, हीअर।' और तालियाँ बजने लगीं। कर्नल तथा दूसरों ने खड़े होकर 'शाबाश! शाबाश!' कहा।

'हम सब बुद्धुओं ने क्या समझकर तालियाँ बजाईं, इस पर जरा घर जाकर सोचना। अच्छा, आइलीन! परसों होनेवाली बुद्धुओं की मीटिंग का मैं जरूर प्रमुख बनूँगा। ठीक साढ़े तीन बजे।' इतना कहकर कर्नल चल दिया। पार्टी बिखर गई। सब आनन्दित थे।

३७ : स्वागत-समिति

महारात्रि की स्थापना के लिए क्लब के लाउंज में सभा हो रही थी। कर्नल कॉटन तथा अन्य तीन-चार सैनिक अफसर, लैम्बर्ट, प्रेमवल्लभ उसका सरिश्तेदार तथा तीन-चार क्लर्क, दो-तीन जमींदार, वन-विभाग का हाकिम जेक्सन, ठेकेदार राज-बिहारी, चार-पाँच व्यापारी, कुछ रिक्शेवाले, घोड़ेवाले, डाँडीवाले, नाववाले, पुलिस के अफसर, चार-पाँच वकील, तीन-चार डाक्टर—इस प्रकार कुल पचासेक आदमी इकट्ठा हो गये थे।

प्रेमवल्लभ ने अध्यक्ष-पद के लिए कर्नल कॉटन का नाम प्रस्तावित किया। लैम्बर्ट ने उसका समर्थन किया और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कर्नल ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया।

फिर कर्नल ने आइलीन से संस्था के उद्देश्य समझाने का निवेदन किया। आइलीन खड़ी हुई और उसने संक्षेप में उद्देश्य समझाये। उसने कहा कि सेवा की भावना से मनुष्य की आत्मा ऊर्ध्वगामी होती है। रंतिनाथ की अद्भुत शक्तियों के बारे में भी उसने थोड़ा विवरण दिया। आइलीन के बैठने पर राजबिहारी ने दो शब्द कहे और उसके बाद प्रेमवल्लभ के सरिश्तेदार ने सेवाधर्म तथा योगविद्या पर लम्बा भाषण किया। जब वह बोलता ही रहा तो अध्यक्ष ने घंटी बजाकर उसे समाप्त करने का संकेत किया। दो बार घंटी बजने के बाद ही यह बात उसकी समझ में आई। फिर एक वकील साहब ने वाक्चातुर्य दिखलाते हुए अपने शक्ति-सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया।

अन्त में कर्नल कॉटन खड़े हुए और तालियों की पटापट के बीच एक सैनिक के उपयुक्त संक्षिप्त, प्रभावशाली एवं सादा वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा, 'सफलता की कुंजी प्रयत्न है। यहाँ इस मंडल की स्थापना करके हमें भाषण नहीं देना है, किन्तु अज्ञान और लोभ के विरुद्ध लड़ना है। सेवा का पाठ दूसरों को सिखाने से पहले स्वयं सीखना है। उसके लिए हमें बातें कम और काम अधिक करना होगा। सेवा ही मंडल की वाणी है। मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि आप उदारतापूर्वक सहायता दें जिसमें कोषाध्यक्ष को ऐसा न लगे कि उसके पास काम नहीं है।'

फिर एक समिति की स्थापना की गई, जिसका अध्यक्ष कर्नल को और उपाध्यक्ष आइलीन को चुना गया। प्रेमवल्लभ को कोषाध्यक्ष बनाया गया और राजबिहारी तथा लैम्बर्ट की नियुक्ति मंत्री-पद पर की गई। रंतिनाथ का स्वागत करने के लिए एक स्वागत-समिति भी बनाई गई; उसका प्रमुख-पद भी कर्नल को दिया गया। प्रेमवल्लभ उसका अध्यक्ष बनाया गया।

करीब सात-आठ सौ रुपया चन्दा भी वहीं हो गया। लोगों में काफी उत्साह था। एक छोटे-से बँगले में 'महारात्रि' का कार्यालय स्थापित किया गया और एक क्लर्क भी रख लिया गया। मंडल की स्थापना के समाचार अखबारों में प्रकाश-

नार्थ भी भेज दिये गये। रंतिनाथ और मार्था को तार द्वारा इसकी सूचना दे दी गई। इन सब कार्यों से आइलीन बहुत प्रसन्न हुई।

शाम को उसने अपने घर एक डिनर पार्टी का आयोजन किया। समिति के सभी सदस्यों को निमंत्रित किया गया। प्रेमवल्लभ भी डिनर के लिए रुक गया। डाँडीवाले, रिक्शेवाले, नाववाले तथा दूसरे मज़दूर लोगों को भी चाय पिलाई गई। वे लोग इससे बड़े प्रसन्न हुए।

'बड़ी उत्साही महिला है !' जेक्सन ने बरामदे में बैठे-बैठे कर्नल से कहा।

'सैनिक है, सैनिक।'

'आपको क्या लगता है ? क्या यह कार्य अधिक समय तक चलता रह सकेगा ?'

'क्यों नहीं ! लोग स्वयं ही सारा काम सँभाल लेंगे। यह तो लोगों की संस्था है।'

'कहते हैं कि यूरोप, और अमेरिका में भी, उस आदमी के हजारों अनुयायी हैं—जब कि वह स्वयं हिन्दुस्तानी है।' राजबिहारी ने दीनानाथ से कहा।

'आश्चर्य की बात है ! जरूर उस आदमी में कुछ होना चाहिए।' दीनानाथ ने उत्तर दिया।

'उसमें कुछ होगा तभी न औरतें अधिक संख्या में सम्मिलित हुई हैं !' प्रीचर्ड ने प्रेस्टन से कहा।

'सब रंग-ढंग देखना पड़ेगा। कर्नल तो मिसेज़ लैम्बर्ट की वजह से शामिल हुए हैं !' प्रेस्टन ने अपना विचार व्यक्त किया।

'आपने भी खूब रंग जमाया !' प्रेम ने चाय पीते हुए आइलीन से कहा।

'मैं तो जमा चुकी; अब आपको जमाना होगा !'

'तुझे क्या लगता है, प्रिसिला ?' डोरोथी ने पूछा।

'देखें तो सही वह मूर्ति कैसी है !' प्रिसिला ने उत्तर दिया।

रात को भोजन के बाद सब बिखर गये। कर्नल भी सोने चले गये। लैम्बर्ट, आइलीन और प्रेमवल्लभ अकेले रह गये।

'तुम यहीं रुक जाओ, प्रेम !' लैम्बर्ट ने कहा।

'हाँ प्रेम, देर बहुत हो गई है।' आइलीन ने साथ दिया।

'नहीं-नहीं; मैं जाऊँगा।'

'अच्छा तो थोड़ी देर बैठो। ऐसी जल्दी भी क्या है ?'

'पन्द्रह मिनट बैठ सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे लिए बाधक तो नहीं हो रहा हूँ ?'

'नहीं, जरा भी नहीं।' आइलीन ने कहा।

'तुम्हारी लगन के ही कारण यह सब हुआ।' लैम्बर्ट ने आइलीन से कहा।

'तुम्हारी और प्रेम की कृपा का फल है। प्रेम, आज से तुम मेरे भी दोस्त हुए।'

आइलीन ने स्नेहपूर्वक प्रेमवल्लभ का हाथ पकड़ा और दबाया। प्रेम के हृदय में अपने नाम के अनुरूप प्रेम का संचार हुआ। आइलीन के प्रति उसका लगाव बढ़ गया।

'तुम्हारे लिए और कॉफी बनाऊँ, प्रेम ?'

'नहीं, अब जरूरत नहीं। कर्नल भी बड़े अच्छे आदमी हैं, लैम्बर्ट !'

'बहुत ही अच्छे ! मुझ पर उनकी बड़ी कृपा है।'

'और मेरे तो पिता बन गये हैं।' आइलीन बोली।

'आइलीन, कर्नल तुम्हारे पिता बने, मैं क्या बन सकता हूँ ?'

'भाई।'

'ठीक है, लेकिन देखना, भाई के प्रति कहीं विराग न उत्पन्न हो जाये।'

'मुझे तुमसे विराग हो, उससे पहले कहीं तुम्हीं को यह विचार कष्ट न देने लगे कि मैं कहाँ इसका भाई बन बैठा।'

'ऐसा कभी नही हो सकता। तुम्हारे आने के बाद ही हमारे जीवन से विराग दूर हुआ है; क्यों लैम्बर्ट ?'

'बिलकुल ठीक कह रहे हो।'

'तुम कितने अच्छे हो प्रेम ! मुझे ऐसा लगता है कि जन्म-जन्मान्तर से हमारा सम्बन्ध है। तुम्हीं तो कहते थे कि पहले कभी हम मिल चुके हैं। मेरी समझ में तो हम दोनो पूर्व जन्म के भाई-बहिन हैं।'

'यह भी हो सकता है, आइलीन !' कहकर प्रेमवल्लभ विचार में पड़ गया। उसके मन में पुनः वही बात मँडराने लगी कि आइलीन को कहीं देखा है। कुछ धुँधली-सी याद आती थी, परन्तु साफ-साफ समझ में नहीं आ रहा था।

'अब मैं जाता हूँ।' कहकर वह खड़ा हो गया।

'जा रहे हो प्रेम ?' आइलीन ने मृदुता से कहा।

'हाँ, काफी देर हो गई।'

'फिर आना।' कहकर आइलीन ने उससे हाथ मिलाया।

दोनो से हाथ मिलाकर वह चल पड़ा। आइलीन उसे देखती रही। उसके मुँह से हठात् निकला, 'कितना स्नेहशील व्यक्ति है!' लैम्बर्ट उसे फाटक तक पहुँचाने गया।

'बड़ा अच्छा दोस्त है।' लौट आकर लैम्बर्ट ने आइलीन से कहा।

'तुम बड़े भाग्यवान हो!'

'दो वर्षों में मेरी गाढ़ मैत्री हो गई है। एक साथ शिकार किये हैं, खेले हैं और घूमे हैं! दुःख इस बात का है कि बेचारा विवाह नहीं कर सका!'

आइलीन उसकी ओर देख रही थी। विवाहित होने के कारण यह अपने को सुखी मानता है, यही वह सोच रही थी।

'विवाह क्यों नहीं किया?'

'जिस लड़की से प्रेम करता था, वह अचानक चल बसी। उसका आघात आज तक नहीं भूल सका!'

आइलीन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मानव-जीवन के दुःख पर विचार करने लगी थी।

'तुमने ठीक ही कहा है कि आनन्द अहम् के अभाव में है।' लैम्बर्ट ने कहा।

'तुम्हें ऐसा नहीं लगता?'

'लगता तो है?'

'चलो, अब सोया जाये।'

'हाँ, चलो।'

आइलीन और लैम्बर्ट उठे और बरामदे से कमरे में पहुँचे।

'प्रेम ने पहले कभी तुम्हें देखा है, यह बात कहाँ तक ठीक हो सकती है?'

'हो सकता है। जैसा तुम कह रहे थे, शायद लखनऊ में देखा हो।'

'आइलीन, क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि इन सब झंझटों में पड़कर तुम मुझे और अपने घर को भूल जाओगी?'

'जो हमें भूलना है उसे जल्दी भूल जाना ही ठीक है; और जो याद रखना है उसे हमेशा याद रखना चाहिए।'

'लेकिन पति और परिवार तो भूलने की वस्तु नहीं।'

'हैं तो नहीं, लेकिन अधिक सुख प्राप्त होने पर वे भी भूल जाते हैं। तुम इतना डरते क्यों हो?'

'मैं डरता नहीं हूँ; लेकिन इस सब में मुझे दिलचस्पी नहीं है; केवल तुममें दिलचस्पी है। तुम्हारे ही कारण कर्नल, प्रेम और मैं साथ दे रहे हैं।'

'प्रारम्भ में ऐसा ही होता है।'

जम्हाई लेकर वह बिस्तर पर लेट गई। लैम्बर्ट ने उसका हाथ पकड़कर कहा —आइलीन, बच्चे हो जायेंगे तब इन सब कामों के लिए समय कहाँ से निकालोगी?

लैम्बर्ट के ये शब्द सुनकर वह घर और परिवार के बारे में सोचने लगी। उसने सोचा कि विवाहित जीवन में वह पारिवारिक उत्तरदायित्व से नहीं बच सकती। उसमें मातृत्व की भूख तो अवश्य थी, किन्तु लैम्बर्ट के प्रति अनुराग विकसित नहीं हो पाया था।

'तुमने कोई उत्तर नहीं दिया, आइलीन?'

'क्या उत्तर दूँ? जो आयेगा उसे तो भुगतना ही होगा।'

उत्तर सुनकर लैम्बर्ट उसके समीप खिसक आया।

'तुम मुझे कितना चाहते हो लैम्बर्ट?'

'बहुत....बहुत।' और उसने आइलीन को गाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर लिया।

'मान लो कि मैं मर गई?'

'तब भी इतना ही चाहता रहूँगा। लेकिन ऐसा न कहो।'

'तुम किसका आलिंगन करोगे?'

'फिर वही बात! ऐसा न कहो, आइलीन!'

'मेरी मृत्यु का तुम्हें इतना डर क्यों है लैम्बर्ट?'

लैम्बर्ट कुछ बोला नहीं; किन्तु सुख की काल्पनिक समाधि में लीन वह सो गया। आइलीन उसके शरीर पर हाथ फेर रही थी, परन्तु मन उसका रतिनाथ में लगा हुआ था।

३८ : आइलीन का पर्यटन

आइलीन तीन-चार दिनों में रानीखेत, अलमोड़ा, बिनसर, कौसानी आदि स्थानों में घूम आई। रानीखेत में कर्नल तथा अन्य सैनिक अफसरों ने उसका शानदार स्वागत किया। एक बड़ी पार्टी दी गई और मंडल के कुछ नये सदस्य भी बने। रानीखेत में वह चौबीस घंटे रही। उसका बँगला एक ऊँची टेकरी पर था। बँगले में बैठकर हिमालय की मनोहर छटा देखी जा सकती थी। वहाँ के वातावरण में आइलीन को अपार शान्ति का अनुभव हुआ। फर्नीचर की सजावट में उसने कुछ आवश्यक परिवर्तन करवाये। नौकर उसके बोलचाल और सरल व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें तथा उनके बच्चों को उसने इनाम भी खूब दिये। चारों ओर प्रसिद्ध हो गया कि मेम साहब बहुत अच्छी हैं।

वहाँ से वह लैम्बर्ट के साथ अलमोड़ा गई। प्रेमवल्लभ और दूसरे लोगों ने वहाँ भी उसका खूब स्वागत किया। प्रेम के बँगले पर पार्टी हुई। मंडल के कई सदस्य बने और लोगों में उत्साह छा गया। बिनसर जाकर वह नगाधिराज की भव्यता देख आई।

लौटते समय प्रेमवल्लभ उन दोनो को कौसानी ले गया। वहाँ से उसने नंदादेवी, त्रिशूल और नंदाकोट आदि के स्वर्गीय दृश्य देखे। वह स्थान उसे अधिक पसन्द आया। वह सोचने लगी कि अगर रंतिनाथ वहीं रहे तो कितना अच्छा। यहाँ हिमालय देवोपम गरिमा में दिखाई देता था और ऐसा प्रतीत होता था मानो सारा वातावरण गूढ़ सन्देशों से भरा हुआ हो। वह रात उसने कौसानी के डाकबँगले में बिताई और रंतिनाथ के सूक्ष्म संचरण का अनुभव किया। प्रातःकाल चार बजे उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सारा वातावरण गतिशील हो उठा है, पहाड़ भी सचेत और गतिमान हो गये हैं और रंतिनाथ चलता-फिरता दिखाई दे रहा है। यह अनुभव बड़ा ही रोमांचक और अद्भुत था, लेकिन उसने किसी को भी इसके बारे में बताया नहीं।

वहाँ से लौटते हुए वे लोग कोसी नदी के समीप होकर निकले।

'लैम्बर्ट! आइलीन को वह स्थान भी बता दें जहाँ तुमने उस शेर को मारा था!'

'हाँ आइलीन, चलो वह स्थान अवश्य देख लो।'

प्रेम ने मोटर घुमा दी। कुछ दूर चलने पर वह मन्दिर दिखाई दिया।

'इस मन्दिर में, प्रेम का कहना है उसने अनेक कौतुक देखे हैं।'

आइलीन ने मन्दिर की ओर देखा। कुछ ही देर में वे लोग उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ शिकार किया गया था। तीनों उतरे। लैम्बर्ट उत्साहपूर्वक आगे चलने लगा।

'देखो, यह पेड़। इस पर मचान बनाया गया था और ठीक यहाँ मैंने शेर को मारा था।' लैम्बर्ट बतलाता जाता था। कुछ देर बाद वे लोग लौटे। एक साथ चल रहे थे। आइलीन बीच में थी।

'मन्दिर के भीतर चलोगे?' लैम्बर्ट ने प्रेम से पूछा।

'आइलीन का देखने का विचार हो तो जरूर चलो।'

प्रेम ने मोटर को उस दिशा में मोड़ दिया और मन्दिर से करीब एक फर्लांङ्ग के फासले पर उसे रोकते हुए कहा—चलो।

तीनों मन्दिर की ओर चलने लगे। कुछ दूर चलने पर आइलीन खड़ी हो गई और देखने लगी।

'रुक क्यों गई? अन्दर चलो।'

'कुछ नहीं; हाँ, चलो।'

वह फिर चलने लगी। प्रेम ने आगे जाव

पीछे थे।

'यहीं प्रेम ने बड़े विचित्र दृश्य देखे हैं; क्यों प्रेम?'

'हाँ, देखे तो अवश्य हैं।'

तीनों ने धीरे-से भीतर प्रवेश किया। आइलीन धीरे-धीरे विचारमग्न चल रही थी। तीनों गर्भद्वार के निकट आये। दीपक जल रहा था और वही पुजारी चुपचाप बैठा ध्यान-धारणा में लीन था।

आइलीन के मन में उस स्थान पर आते ही नये-नये और अद्भुत विचारों की सृष्टि होने लगी। स्थान एकदम नया होते हुए भी कुछ परिचित-सा लग रहा था। वातावरण में से उसे कोई ध्वनि उठती सुनाई देती थी, जिसे वह स्पष्ट सुन नहीं पा रही था। धुँधला-धुँधला कुछ दिखता भी था, लेकिन वह स्पष्ट नहीं हो

पाता था। उसे उस स्थान में एक प्रकार की अलौकिकता का आभास हो रहा था।

'क्या देखा था तुमने यहाँ ?' उसने प्रेम से पूछा।

'याद न दिलाओ आइलीन।' प्रेम ने कहा।

'स्थान अद्भुत और यहाँ का वातावरण रहस्यमय तो अवश्य है।' आइलीन ने स्वीकार किया। फिर वह पुजारी की ओर देखने लगी। पूछा—कौन हो तुम ?

पुजारी ने फीकी मृतप्राय: हँसी हँस दी, किन्तु कुछ बोला नहीं।

'मुझे पहिचाना महाराज ?' प्रेम ने पूछा।

पुजारी ने उसकी ओर इस तरह देखा मानो अपने होश में न हो।

'तुम्हें यहाँ कुछ विचित्र-सा नहीं लगता ?' प्रेम ने लैम्बर्ट से पूछा।

'कुछ भी नहीं। सिर्फ यह पुजारी और कुछ अंशों में तुम दोनों। तुम लोग अदृश्य को भी देख सकते हो !'

'कोई ऐसी वस्तु भी तो हो सकती है जिसे न हम स्वयं समझ सकें और न किसी अन्य को समझा सकें।' आइलीन ने कहा।

सहसा कुछ दिनों पूर्व देखे हुए दृश्य प्रेमवल्लभ के स्मृतिपट पर आने लगे। आइलीन के मन में भी भाँति-भाँति के विचार उठने लगे थे।

'अच्छा हो कि हम लोग जल्दी-से-जल्दी यहाँ से चल दें। मुझे तो सब रुँधता-सा मालूम होता है।' कहकर लैम्बर्ट चलने लगा।

प्रेम ने देवी को नमस्कार किया और कुछ देर खड़ा रहा। आइलीन उसकी ओर देख रही थी। देखते-देखते वह समाधिस्थ-सी हो गई। उसे कुछ विचित्र-सा अनुभव हो रहा था, किन्तु समझ नहीं पा रही थी कि क्या है ! प्रेम खड़ा क्या कर रहा है, यह जानने की इच्छा भी उसे हुई और उसने पूछा—तुम किसका ध्यान कर रहे थे ?

'माताजी का।'

'कैसा ध्यान ?'

'यह मत पूछो। उस रात के अनुभवों के बाद मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।'

'मुझे ऐसा लग रहा है कि यहाँ के वातावरण में एक प्रकार की चेतना का विशिष्ट बल है।' आइलीन ने कहा।

'हाँ, उसी का नाम शक्ति है और उसी की यह पूजा है। जहाँ ऐसी विशिष्टता होती है वहीं शक्तिपीठ स्थापित किया जाता है।'

'हमारे नेता भी यही कहते हैं कि जहाँ चैतन्य का सबल वेग हो वहीं चमत्कार देखा जा सकता है।'

'सच कहता हूँ आइलीन, जो दृश्य मैंने देखे, उन्हें यदि किसी दूसरे ने देखा होता तो मैं उसे पागल ही कहता।'

'जिसे हम स्वयं नहीं देखते वह होता ही नहीं, इस सामान्य सिद्धान्त पर हमारा अधिकांश व्यवहार निर्भर करता है।'

लैम्बर्ट दरवाजे पर प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सिगरेट जला ली थी।

'समय बर्बाद हुआ हो तो माफ करना लैम्बर्ट! मैं ध्यान करने लगा था।'

'मुझे आश्चर्य होता है प्रेम, कि तुम्हारे-जैसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी ऐसे चमत्कारों और अन्धविश्वासों में मानता है!' लैम्बर्ट ने ताना दिया।

'मुझे भी यही लगता है; लेकिन पूछो आइलीन से कि इस स्थान का वातावरण अद्भुत और रहस्यपूर्ण है या नहीं?'

'पूछ लिया! मैं कहता हूँ कि तुम दोनो का दिमाग खराब हो गया है। चलो, अब सीधे घर।'

तीनों मोटर की ओर आये। सहसा बादल घिर गये और अन्धकार छा गया। मोटर चली और थोड़ी ही देर में वे रानीखेत के मार्ग पर जा रहे थे।

'कौन था वह पुजारी?' आइलीन ने प्रेम से पूछा।

'वाम-मार्ग का एक कट्टर उपासक।'

'वह कुछ बोला क्यों नहीं?'

'बोलता क्या खाक! दिमाग़ में कुछ हो तो बोले या यों ही!' लैम्बर्ट ने कहा।

'ऐसी तो कोई बात नहीं है, लैम्बर्ट! कई लोगों के दिमाग में कुछ नहीं होता फिर भी वे बोलते हैं, और खूब बोलते हैं; कई लोग कुछ भी नहीं बोलते फिर भी उनके दिमाग़ में बहुत-कुछ होता है।' आइलीन ने मध्यस्थता की।

'वह आदमी तो पुतले-जैसा था।' लैम्बर्ट ने फिर कहा।

'लैम्बर्ट, ढोंग की ही तरह चमत्कारों का भी अस्तित्व होता है। कभी-कभी हम चमत्कारों को ढोंग मान बैठते हैं, और ढोंग को चमत्कार!' आइलीन ने कहा।

'बेवकूफ न बनो आइलीन! चमत्कार किसी ने देखे नहीं हैं। सब ढोंग है। माफ करना प्रेम, लेकिन जब तक तुम्हारे देश में यह तंत्र-मंत्र का ढकोसला है तुम मध्य-युग से आगे नहीं बढ़ सकते।'

'प्रेम! यह तो अपने मंडल में फूट डाल देंगे। हमारे मंडल में तो चमत्कारों की, अर्थात् विशिष्ट चेतना की बातों का बड़ा महत्त्व है।'

'एक-आध चमत्कार देखे [illegible] पर आने के नहीं। आइलीन, अपने अध्यक्ष महोदय से कहना कि इन्हें ज़रा अपनी शक्ति का करिश्मा दिखाएँ।'

'मेरी समझ में तो तुम दोनों का अन्त पागलों के अस्पताल में होगा!' लैम्बर्ट ने हँसकर कहा।

इसी तरह हँसते-बोलते वे लोग नैनीताल पहुँच गये। प्रेमवल्लभ थक गया था, इसलिए सीधा अपने बँगले पर चला गया। आइलीन भी थक गई थी। वह भी घर चली गई। लैम्बर्ट बिलियर्ड खेलने के लिए क्लब जाना चाहता था। उधर का रुख करते हुए उसने कहा—तुम खाना खा लेना आइलीन, मेरी प्रतीक्षा मत करना।

'मुझे तो नींद आ रही है, जल्दी सो जाऊँगी।'

३६ : रंतिनाथ का आगमन

रंतिनाथ आज काठगोदाम उतर रहा था। आइलीन प्रेमवल्लभ के साथ ठीक नौ बजे स्टेशन पहुँच गई। गाड़ी दस बजे आती थी। लैम्बर्ट, कर्नल तथा दूसरे सदस्य नैनीताल में स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। रंतिनाथ को ठहराने के लिए एक अलग बँगले की व्यवस्था की गई थी। रंतिनाथ या मार्था ने कुछ लिखा नहीं था, फिर भी आइलीन ने समझ लिया था कि व्यवस्था उसी को करनी है। आज वह बड़ी प्रसन्न थी। उसने सुन्दर कपड़े पहिने थे और कोट के कालर में फूल लगाया था।

स्टेशन पर चार-पाँच आलीशान मोटरें खड़ी थीं। प्रेम और आइलीन ट्रेन की प्रतीक्षा करते हुए विश्रामगृह में बैठे थे।

'आज तुम बहुत खुश हो और तुम्हें खुश देखकर मैं भी खुश हूँ।'

'क्या तुम मानोगी कि वह प्रेम है ?' अत्यन्त धीमे स्वर में प्रेम ने पूछा।

'हो सकता है।' उतने ही मन्द स्वर में आइलीन ने कहा।

'हो सकता है का क्या मतलब ? क्या तुम यह भी नहीं जानती कि वह भावना कौन-सी है ?'

'मैं तो प्रेम ही कहूँगी, लेकिन हो सकता है कि कोई दूसरी ही भावना हो।'

'तुम लैम्बर्ट से प्रेम करती हो ?'

'यह क्यों पूछ रहे हो ?'

'जाने क्यों ऐसे ही पूछ बैठा। तुम चाहो तो उत्तर न भी दे सकती हो।'

कुछ देर तक दोनो चुप बैठे रहे। अन्त में आइलीन ने प्रेम का हाथ पकड़कर उसकी ओर देखा और बोली—तुम विवाह करो तो प्रेम के लिए ही करना।

'प्रेम के लिए ही विवाह नहीं कर रहा, इसे तुम जानती हो।'

'लेकिन अकेलापन अखरता होगा।'

'बिना प्रेम का जीवन भी एकाकी ही होता और अखरता है।'

आइलीन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह घड़ी की ओर देख रही थी।

'आ ट्रेन, आ !' आइलीन के शब्दों में अधीरता थी। प्रेम ने वे शब्द सुने और उनकी ध्वनि में डूब गया। कितनी उत्कंठा, कितनी अधीरता थी उन शब्दों में।

दस बजने में पाँच मिनट शेष रह गये। आइलीन का हृदय धड़कने लगा। उसकी नसों में रक्त की गति बढ़ गई। उसके अंग-अंग में आतुरता व्याप्त हो गई। प्रेम उस सब का मूक प्रेक्षक था। उसने लक्ष्य किया कि आइलीन मानो एकदम बदल गई थी।

आखिर ट्रेन प्लेटफार्म पर आ पहुँची और उसकी धड़धड़ाहट आइलीन के हृदय की धड़कनों के स्वर में स्वर मिलाने लगी। सारा जगत विलीन होकर अकेला रंतिनाथ ही सर्वत्र व्याप्त हो, ऐसा अनन्य भाव उसके हृदय में छा गया। ट्रेन रुक गई। प्रेम और आइलीन प्रतीक्षा में रत आशा से भरे खड़े थे।

दरवाजे खुलने लगे। फर्स्ट क्लास के डिब्बे से एक भारतीय दम्पति के साथ एक बीसेक वर्ष की लड़की उतरी और उसके बाद एक अँग्रेज महिला। उस अँग्रेज महिला को आइलीन ने फौरन पहिचान किया। वह मार्था थी। रंतिनाथ को ढूँढ़ती हुई आइलीन मार्था की ओर दौड़ी।

'मार्था !'

'आइलीन !'

दोनो एक-दूसरे के गले से लिपट गई। वह दम्पति और वह लड़की पास ही खड़े थे। प्रेमवल्लभ दूर खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसके हाथ में तीन-चार मालाएँ थीं।

'नाथ कहाँ हैं ?' आइलीन ने पूछा।

'पिछले डिब्बे में। वह उतर रहे हैं, पहिचान सकोगी ! धोती और कुरता पहिने हैं।'

आइलीन उधर दौड़ी। उसने रंतिनाथ का हाथ पकड़ा और स्तम्भित-सी देखती रही। उसकी आँखों से प्रेम की फुहारें उड़ रही थीं।

'तुमने तो भेष ही बदल लिया !'

'हाँ, जैसा देश वैसा भेष। कैसी तबियत है तुम्हारी ! मजे में तो हो न ? मुझे आने में देर तो नहीं हुई ?'

रंतिनाथ के वाक्यों का मधुर मन्द प्रवाह बह चला। वह दम्पति, मार्था और प्रेमवल्लभ वहाँ आ पहुँचे। लड़की भी साथ थी। रंतिनाथ के पीछे बेसल और दो नौकर खड़े थे।

प्रेम ने रंतिनाथ को ध्यानपूर्वक देखा। सौम्य, शान्त, गम्भीर और मृदुता से भरे हुए विशाल नेत्रोंवाला रंतिनाथ उसके हृदय को अनायास ही जीते ले रहा था।

'यह हैं प्रेमवल्लभ; अलमोड़ा के डिप्टी कलक्टर और अपने मंडल के मंत्री, स्वागत-समिति की ओर से आये हैं।' आइलीन ने परिचय कराया।

'और प्रेम, यह हैं हमारी मार्था; मंडल का एक विशाल स्तम्भ।'

'खूब ! स्तम्भ-जैसी जड़ता मेरे सिवा और कहीं नहीं मिलेगी।' मार्था ने हँसते-हँसते कहा और प्रेमवल्लभ का पहिनाया हुआ हार गले से उतारकर हाथ में ले लिया।

'और यह हैं बेसल; हमारे मित्र और प्राण।' मार्था ने कहा और प्रेम ने हार पहिनाया। मार्था ने बेसल से आइलीन का परिचय कराया। बेसल ने उसे देखा, परन्तु वह तो रंतिनाथ को देख रही थी।

अन्त में रंतिनाथ ने उस दम्पति का परिचय दिया।

'आइलीन, यह हैं रणधीर, यहाँ के एक बड़े जमींदार और यह हैं माया देवी, इनकी धर्मपत्नी। इस लड़की का नाम है रोहिणी—इनकी पुत्री है। इसे अकस्मात ही आना पड़ा। तबियत खराब हो जाने से डाक्टर ने सलाह दी कि हिन्दुस्तान ले जाओ। मेरी भी यही सलाह थी।'

आइलीन उन तीनों से बातें करने लगी। प्रेमवल्लभ एकटक रतिनाथ की ओर देख रहा था; उसके मुँह पर छाया हुआ विस्मय का भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। माया और रोहिणी को भी उसने बार-बार देखा। माया पर दृष्टि स्थिर होते ही उसके मस्तिष्क में प्रश्न उठा—कौन है यह नारी? कहाँ देखा था इसे?

पीले रंग की रेशमी साड़ी में माया बड़ी सुन्दर और शालीन लग रही थी। रोहिणी ने हरे रंग की साड़ी ओढ़ रखी थी जो उस पर खूब खिलती थी। आइलीन ने तीनों से प्रेमवल्लभ का परिचय कराया।

'हम लखनऊ जिमखाना में दो-तीन बार मिल चुके हैं।' रणधीर ने कहा।

'हाँ, मुझे याद आ रहा है।' प्रेम ने कहा।

'हम तो पहले कभी मिले नहीं। आज मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हमारी जागीर भाभर में है। अलमोड़ा और नैनीताल में भी है। नैनीताल में हमारा बँगला है।' माया कह रही थी और प्रेमवल्लभ उसे देख रहा था।

'चला जाये?' आइलीन ने रतिनाथ से पूछा।

'कहाँ ले चलोगी? माया एक ओर घसीटती है, तुम दूसरी ओर।'

'मैंने व्यवस्था की है; मकान का प्रबन्ध भी किया है।'

'यहाँ तो इनका अपना मकान है; आपने क्यों कष्ट किया?' माया ने कहा, लेकिन आइलीन की कुछ समझ में न आया।

'आभार मानती हूँ; लेकिन मंडल ने हर प्रकार की व्यवस्था की ही है, इसलिए आपको कष्ट क्यों दिया जाये।' आइलीन ने कहा।

'जी हाँ, सब तैयारी हो चुकी है।' प्रेम ने भी साथ दिया।

'माया, पहले हम लोग स्टेशन से बाहर तो निकलें, फिर तय करेंगे कि कहाँ जाना चाहिए।' मार्था ने सुझाव दिया।

रतिनाथ, आइलीन और प्रेमवल्लभ आगे, उनके पीछे रणधीर, माया और मार्था तथा सबसे पीछे बेसल और रोहिणी बाहर की ओर चले।

बाहर निकलते ही सफेद पोशाकवाले चार-पाँच चपरासियों और नौकरों ने 'पधारिए हुजूर!' कहकर पहले रंतिनाथ का हार्दिक स्वागत किया और फिर रणधीर तथा माया का। देखकर आइलीन और प्रेम को बड़ा आश्चर्य हुआ।

एक नौकर ने एक बड़ी रोल्सरायस कार की खिड़की खोली। रंतिनाथ बोला—माया, तुम तीनों इसमें जाओ; मैं इन लोगों के साथ जाऊँगा।

'नहीं भैया, आप इन सबके साथ इस गाड़ी में जाइए, हम लोग दूसरी गाड़ी में आ रहे हैं।' रणधीर ने कहा।

रणधीर का यह सम्बोधन सुन आइलीन और प्रेम को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'नहीं; मैं, वेसल और दूसरे लोग बस से आवेंगे। क्यों वेसल?'

'जी साहब!'

'आइलीन, तुम, प्रेमवल्लभ और मार्था हमारी मोटर में चले जाओ।' रंतिनाथ ने कहा।

आइलीन को यह बात पसन्द न आई, किन्तु रंतिनाथ के निश्चय के विरुद्ध वह कुछ न बोली। लेकिन प्रेम से न रह गया। वह बोला—आज आप स्वतंत्र नहीं हैं; स्वागत-समिति के कब्जे में हैं। आपको हमारी मोटर में बैठना ही होगा।

रंतिनाथ प्रेमवल्लभ की इस दलील का उत्तर न दे सका, मंद-मंद हँसने लगा।

'तो फिर मेरे अनुरूप ही स्वागत हो। आप भी बस में चलिए; नौकरों को कार में जाने दीजिए।'

रंतिनाथ का निर्णय सुनकर प्रेम का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। लेकिन साथ ही उसके हृदय में रंतिनाथ के प्रति पूज्यभाव भी उत्पन्न हुआ। रणधीर, माया, रोहिणी, मार्था, सभी ने बस में चलने की इच्छा व्यक्त की और बैठ गये। नौकर कारों से रवाना हुए।

४० : मुकाम पर

मोटरें पहले रवाना कर दी गईं ताकि नौकर जल्दी पहुँचकर पार्टी के आगमन की सूचना दे सकें।

बस में रंतिनाथ और आइलीन, प्रेमवल्लभ और मार्था, रोहिणी और वेसल एक साथ अलग-अलग सीटों पर बैठे। एक सीट पर रणधीर और माया बैठे थे।

'मैं तो चातक की भाँति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। कल्पना भी नहीं थी कि तुम इतनी जल्दी आ जाओगे।'

'सबकी यही राय हुई। सोचा गया कि महायुद्ध आरम्भ हो गया तो जाना असम्भव हो जायेगा और सारी योजना धरी रह जायगी।'

'तुम्हारा क्या खयाल है, युद्ध कब तक होगा?'

'एक-आध साल के अन्दर ही छिड़ जाना चाहिए।'

'दूसरे सब लोग कैसे हैं?' आइलीन ने मार्था की ओर मुड़कर पूछा।

'सब मजे में हैं। रोडनी और जेकब ने तुम्हें बहुत-बहुत याद किया है। सदस्यों की संख्या बढ़ रही है; तुम्हारी प्रगति कैसी है?'

'ठीक है। मंडल स्थापित कर दिया है। कर्नल कॉटन ने खूब सहायता की। प्रेम ने भी पूरा हाथ बटाया।' आइलीन ने प्रेम की ओर मुड़कर कहा।

'यह स्वागत का आयोजन किस लिए?' रंतिनाथ ने आइलीन से पूछा।

'सबका विचार था। मैं क्या करती?'

'यह सब याद आ रहा है न?' माया ने पर्वतों और वृक्षों की ओर देखते हुए रंतिनाथ से पूछा।

'सब ज्यों-का-त्यों है। मैंने और रणधीर ने यहाँ न जाने कितनी बार घोड़े दौड़ाये होंगे।'

'आप यहाँ रह चुके हैं?' प्रेम ने रंतिनाथ से पूछा।

'सारा बचपन यहीं बीता। नैनीताल, रानीखेत, अलमोड़ा, भाभर और तराई का चप्पा-चप्पा मेरा देखा हुआ है।'

'अरे, तुमने बताया क्यों नहीं? तुम्हारा घर कहाँ है?' आइलीन ने पूछा।

'मेरे पिता की जागीर मुख्यतः भाभर में थी; लेकिन अलमोड़ा, नैनीताल और दूसरी जगहों पर भी जमीन-मकान हैं।' रंतिनाथ ने कहा।

'यह राजा साहब आपके भाई होते हैं?' प्रेम ने पूछा।

'हाँ, यह मेरा छोटा भाई है।'

आइलीन और प्रेम आश्चर्यपूर्वक सुनते रहे। उनकी सृष्टि में नये रंग छा रहे थे। बस की घड़घड़ाहट में अधिक बातचीत करना सम्भव भी नहीं था। मस्तिष्क में कड़ियाँ मिलाते हुए आइलीन और प्रेम चुपचाप बैठे रहे।

आखिर नैनीताल दिखने लगा और कुछ ही देर में बस तल्लीताल के पास रुक गई। लैम्बर्ट, कर्नल और दूसरे चार-पाँच मुख्य व्यक्ति आगे खड़े थे और पीछे तीस-चालीस लोगों की टोली थी।

कर्नल ने आइलीन की ओर देखकर मानो पूछा कि कहाँ हैं मुख्य अतिथि?

आइलीन ने रंतिनाथ की ओर इशारा किया। कर्नल कुछ ठिठका, फिर आगे बढ़ा और हार पहिनाकर हाथ मिलाया। लैम्बर्ट ने भी स्वागत किया और दूसरे व्यक्तियों ने भी। रंतिनाथ से कहा गया कि आयरपाटे पर बँगला रहने के लिए निश्चित किया गया है। संयोग से रणधीर का मकान भी आयरपाटा पर ही था।

'अभी तो अपने घर चलो। नहाने-धोने के बाद देखा जायेगा।' माया ने आग्रह किया।

'तुम अपने भाई के यहाँ जाओ। बेसल और मैं मंडल के अतिथिगृह में जाते हैं। क्यों आइलीन, ठीक है न?' मार्था ने आइलीन से पूछा।

'जैसी इनकी इच्छा।'

'पहले तो मंडल के अतिथिगृह में जाता हूँ फिर नहा-धोकर अपने घर आऊँगा। रोहिणी, तू मुझे लेने आना।'

'नहीं ताऊजी, आपको अभी चलना होगा।'

'इन सबके आग्रह को भी स्वीकार करना चाहिए बेटी! माया, तुम लोग जाओ। मेरे लिए आलू का सूप और दो मोटी रोटियाँ रखना। रणधीर और रोहिणी को खाना खिला देना, लेकिन तुम्हें मेरे आने तक भूखा रहना पड़ेगा। मैं दो घण्टे में पहुँच जाऊँगा।' इतना कहकर वह आइलीन और लैम्बर्ट की ओर मुड़ा, 'आप लोग तथा कर्नल साहब और प्रेमवल्लभजी अब देर न करें। आप लोगों को इतना परेशान होने की क्या जरूरत थी? मैं तो फकीर हूँ। फकीर का स्वागत कैसा? मैं मार्था और बेसल के साथ मंडल के अतिथिगृह में जा रहा हूँ। एक आदमी को भेज दीजिए जो हमें वहाँ पहुँचा दे। मार्था और बेसल नहा-धोकर तुम्हारे यहाँ खाना खाने आ जायेंगे, आइलीन।'

लैम्बर्ट, आइलीन, कर्नल और प्रेम ने पाँचेक मिनट तक रंतिनाथ के साथ चलकर उससे विदा ली। माया, रोहिणी और रणधीर अब भी उसके साथ चल रहे थे, क्योंकि उनका रास्ता भी उधर से ही था।

कुछ दूर चलने पर एक आलीशान भवन दिखाई दिया, जिसे दिखलाकर रण-धीर बोला—भैया, यही है अपना मकान। याद आता है ?

'हाँ, याद है। लेकिन यह तो बिलकुल नया बनवाया है। माया, तुमने बग़ीचा बहुत सुन्दर लगाया, वाह ! तुम्हारा शौक मुझे हमेशा पसन्द आता है।'

माया ने हँसकर रंतिनाथ की ओर देखा। फाटक पर एक दरबान खड़ा था जिसने सिपाही की तरह सलाम किया।

'चलो, थोड़ी देर के लिए अन्दर चलो।' माया ने आग्रह किया।

'ऐसी क्या जल्दी है ? फिर आना तो है ही। अब तुम लोग जाओ। और माया, दाल-रोटी की बात मत भूल जाना। कुछ देर तुम्हें प्रतीक्षा भी करनी पड़ेगी। रोहिणी जा, मार्था के लिए एक सुन्दर गुलाब और बेसल के लिए चमेली के चार-पाँच फूल ले आ।'

रोहिणी उत्साह में आकर दौड़ी और फूल तोड़कर ले आई। उसने मार्था और बेसल को फूल दिये। माया के मन में सहसा कुछ स्फुरित हुआ। वह बगीचे में गई और एक गुलाब तोड़कर रंतिनाथ के हाथ में दिया। रंतिनाथ उसे ध्यानपूर्वक देखता रहा।

'याद है, तुम मेरे लिए पेरिस से गुलाब के पौधे मँगवाते थे ?' माया ने उमग-कर कहा।

'याद है।' इतना कहकर उसने वह गुलाब धीरे-से माया की साड़ी में लगा दिया। माया उसे देखती रही। उसे आनन्द तो था, किन्तु उस आनन्द में विषाद की छाया भी थी। रंतिनाथ मार्था और बेसल के साथ चुपचाप आगे बढ़ गया।

कुछ ही दूर चलने पर उनका विश्रामगृह आया। एक छोटा, किन्तु स्वच्छ और सब सुविधाओं से पूर्ण मकान था। दीवानखाना, रसोईघर तथा भोजनालय के अतिरिक्त नौकरों के लिए भी दो कोठरियाँ थीं। रंतिनाथ, मार्था और बेसल बरामदे की आरामकुर्सियों में लेट गये। यात्रा की थकान अब अनुभव हो रही थी।

थोड़ी देर आराम के बाद स्नानादि से निवृत्त होकर वे फिर बरामदे में आ बैठे।

'कैसा लगता है नैनीताल ?' रंतिनाथ ने मार्था से पूछा।

'अच्छा ! लेकिन ग्रीष्मऋतु में अधिक अच्छा लगता होगा। ग़रीबी बहुत है।'

'सारे देश का यही हाल है। लेकिन इस बात की मुझे अधिक चिन्ता नहीं; चिन्ता इस बात की है कि यह देश मन से गरीब होता जा रहा है; अपनी संस्कृति को भूल रहा है, शान्ति से विमुख हो रहा है।'

'पश्चिमी फिलॉसफी का अर्थ ही है अशांति। पश्चिम का अनुकरण करेगा तो दुःखी होगा ही।'

'लेकिन आजकल यही हवा चल रही है। जितना ही अधिक सुखोपभोग करेंगे उतने ही सुधरे हुए—आधुनिक—कहलाएँगे, ऐसी मान्यता हो गई है। आलीशान मकान, बढ़िया रास्ते, शानदार मोटरें, हवाई जहाज, रेलगाड़ियाँ, कपड़े-लत्ते, क्लब, सिनेमा-नाटक, यह सब चकाचौंध ही प्रगति है, ऐसा लोग मानने लगे हैं। शासन-व्यवस्था भी पश्चिमी ढंग की और अधिक खर्चीली चाहते हैं। दुःख तो इस बात का है मार्था।'

'असन्तोष की जगह सन्तोष का आन्दोलन दुनिया में क्यों नहीं किया जाता।'

'सन्तोष ही सुख है, और सुख के लिए कभी आन्दोलन नहीं किया जाता। सुख त्याग में है, ग्रहण में नहीं, यह हमारी मुख्य फिलॉसफी है। ग्रहण में सुख ढूँढने का मतलब है अमावस्या की रात्रि में चन्द्र को ढूँढ़ना।'

'साहब, यह कोई कम आश्चर्य है कि एक छोटी-सी बात भी लोगों की समझ में नहीं आती!' बेसल बोला।

'महान आश्चर्य है बेसल, महान आश्चर्य! लेकिन भ्रान्ति का पार कौन पा सका है! त्याग से ग़रीब हो जायेंगे, निराधार हो जायेंगे, ऐसे विपरीत मार्ग पर संसार अपनी गाड़ी हाँके जा रहा है। और दुःख की बात तो यह है कि संसार को त्याग की भावना पर रचने के बदले ग्रहण की भावना पर ही रचा गया है। इसी लिए तो असन्तोष फैला और आन्दोलन, उपद्रव, दंगा-फिसाद, चोरी, लूट-मार आदि संक्रामक रोग सर्वत्र व्याप्त हो गये।'

'लेकिन तुम्हारी यह बात दुनिया के गले उतरने में सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे।' मार्था बोली।

'तो समझ लो कि दुनिया भी सुख और सन्तोष से सैकड़ों वर्ष दूर ही रहेगी।'

उसी समय रोहिणी आ पहुँची। उसके चेहरे पर गुलाब की मोहकता थी।

'चलिए ताऊजी!'

'मज़े में हैं। बेसल, तुम्हारे प्रति मुझे ज़रा भी रोष नहीं।' इतना कहकर उसने बेसल का हाथ दबाया।

'वे दिन, वह जवानी और वह ब्राइटन अब कहाँ है जो रोष हो!'

'सब स्वप्न हो गया है।'

'हाँ आइलीन, ज़िन्दगी भी एक स्वप्न ही है।'

'बहुत बदल गये हो तुम।'

'सब उम्र और अनुभवों की बदौलत है।'

'यहाँ इन लोगों के साथ कैसे?'

'मैं साहब का भक्त बन गया हूँ।'

'कहाँ से कहाँ पहुँच गये बेसल!'

'पुनर्जन्म कहूँ तो भी चल सकता है।'

'चलो जल्दी, फिर कभी बातें करेंगे।' ऐसा कहकर वह बेसल को अन्दर ले गई। मार्था और लैम्बर्ट हिमालय के बारे में बातें कर रहे थे।

'आइलीन, तुम्हारे पति कहते हैं कि जब तक तुम नहीं थीं, वह हिमालय के सौन्दर्य की बातें किया करते थे। अब इन्हें हिमालय की ओर देखने तक की फ़ुर्सत नहीं है!' मार्था ने हँसकर कहा।

'भूलकर भी विश्वास न करना, मार्था! जो व्यक्ति हिमालय को भूल सकता है, वह मनुष्य को नहीं भूल जायेगा इसका क्या विश्वास? फिर भी यह आशा तो करनी ही चाहिए कि मुझे देखना तो नहीं हो भूलेंगे।'

'मार्था, मैं आइलीन को इतना चाहता हूँ कि यह मुझ पर रोब जमाने लगी है। अपनी ज़िद पूरी कराके रहती है।'

'प्रेम का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है।' मार्था ने अनुभव की बात कही।

'तुम समझदार निकले जो शादी नहीं की!' लैम्बर्ट ने बेसल से कहा।

'लेकिन पागलपन बहुत किये हैं।' बेसल ने परिहास किया।

'सुना लैम्बर्ट? इनका तात्पर्य यह है कि विवाह की अपेक्षा पागलपन अच्छा।'

आइलीन के शब्दों को सुनकर लैम्बर्ट के अतिरिक्त सब हँस दिये।

'मार्था, भूल आइलीन ने की होगी, मैंने तो हरगिज नहीं। मैंने इस दुनिया की अच्छी-से-अच्छी खूबसूरत लड़की से विवाह किया है।'

'बिलकुल ठीक, मैं आपका समर्थन करती हूँ।'

'मैं भी।' बेसल ने कहा।

'और मैंने भी इस दुनिया के ऐसे व्यक्ति से विवाह किया है जो सरलता और प्रेम की मूर्ति है।' आइलीन ने लैम्बर्ट की प्रशंसा की।

'यानी धरती पर स्वर्ग उतरा है। चलो, इस खुशी में खायेंगे।' मार्था ने बात को नया मोड़ दिया।

'मुझे जोरों की भूख लग रही है, यह बात पहले ही कहे देता हूँ।' बेसल ने मार्था के स्वरों में स्वर मिलाया।

कर्नल का बँगला बहुत सुन्दर था। हरएक कमरे में ईरानी और काश्मीरी गालीचे बिछे हुए थे। दीवारों पर शेर, तेंदुए, रीछ, बारहसिंगा आदि प्राणियों के सिर और खालें लटक रही थीं। सुन्दर विलायती चित्रों के सिवा मेंटलपीस तथा कॉर्नर टेबलों पर चीनी के बरतन शोभा दे रहे थे। अधिकांश फर्नीचर विक्टोरिया-कालीन किन्तु उच्च कोटि का और टिकाऊ था।

'अच्छा मकान है आइलीन।' मार्था ने हर्ष प्रदर्शित किया।

'कर्नल कॉटन की महरबानी है। उन्होंने हमें एक महीने के लिए दे दिया है। वैसे हमारा अपना मकान तो रानीखेत में है।'

'बहुत अच्छा किया तुमने यहाँ मंडल स्थापित करके। सदस्य भी काफी बना लिये हैं। और यह सब इतने कम समय में।'

'यह सब लैम्बर्ट और प्रेमवल्लभ की कृपा है। दोनों ने बड़े उत्साह और लगन से काम किया है।'

'सुना है कि अलमोड़ा और रानीखेत में भी सदस्य बनाये जा रहे हैं।'

'हाँ, लेकिन मैं नहीं मानती कि पूरा समय दिये बिना प्रगति हो सकेगी, क लैम्बर्ट?'

'तुम ठीक कहती हो, लेकिन धीरे-धीरे सब काम में लग जायेंगे।'

इतने में प्रेमवल्लभ आ पहुँचा। आइलीन उसे लेने गई।

'अकेले क्यों? कर्नल कहाँ रह गये?'

'कर्नल ने कहलाया है कि उन्हें अचानक एक जरूरी काम से रानीखेत जान पड़ रहा है। बहुत-बहुत माफी माँगी है।'

मार्था, बेसल और प्रेम ने हाथ मिलाये। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर आइलीन मार्था और बेसल को मकान दिखाने के लिए अन्दर ले गई। प्रेम और लैम्बर्ट बैठे रहे। प्रेमवल्लभ का चेहरा गम्भीर था।

'लैम्बर्ट!' इतना कहकर उसने लैम्बर्ट का सिगरेट-केस उठाया और सिगरेट जलाई।

• 'बोलो प्रेम!'

'अध्यक्ष को देखा?'

'देखा तो जरूर।'

'वह स्त्री—उस जमींदार की पत्नी को भी देखा?'

'हाँ।'

'मैंने मन्दिर में जिस दम्पति को देखा था वे यहीं हैं।' प्रेम की बात सुनकर लैम्बर्ट के आश्चर्य का पार न रहा। बोला—तुम क्या कह रहे हो, प्रेम!

'ठीक कह रहा हूँ।'

'भ्रान्ति तो नहीं है?'

'जरा भी नहीं।'

'मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। तुम्हें क्या लगता है?'

'मैं भी कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।'

'कोई रहस्य तो नहीं है?'

'रहस्य कहो, उजागर कहो, लेकिन कुछ है जरूर।'

'तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो?'

'उन्हीं से क्यों न पूछा जाये?'

'जल्दी न करो।'

'कैसा लगा वह आदमी?'

'बुद्धिमान और गम्भीर।'

'ढोंगी तो नहीं?'

'कभी नहीं; इतनी बड़ी जागीर छोड़कर गया है।'

'उसकी बातें भी अद्भुत होनी चाहिए।'

'लेकिन इसे कोई जानता नहीं। वे पति-पत्नी उसके भाई-भाभी होते हैं।"

'अच्छा....'

'हाँ; लेकिन वास्तविकता किसी को मालूम नहीं। मुझसे तो कुछ खास लोगों ने कहा है कि उसके भाई की गणना उत्तर प्रदेश के चार-पाँच मुख्य जमींदारों में होती है। पन्द्रह-बीस लाख सालाना की आमदनी है।'

'इस आदमी ने जमीन-जागीर छोड़ दी?'

'हाँ, और अपने छोटे भाई को दे दी।'

'महान त्याग किया।'

'लेकिन वह मन्दिरवाली बात कुछ मेरी समझ में नहीं आ रही।'

"सचमुच प्रेम, इस व्यक्ति में जरूर कोई खासियत होनी चाहिए।'

'मैं उस नैनी देवी के पुजारी से पूछूँगा।'

'वह क्या बतलायेगा?'

'वह पुजारी नहीं, उसका एक गुरु है, वह अवश्य जानता होगा।'

'प्रेम, यह बात तुम फिलहाल आइलीन से मत कहना।'

'मैं भी यही सोचता हूँ।'

'नहीं तो उसकी भक्ति इतनी बढ़ जायेगी कि वह घर-बार को ही भुला देगी।'

'लैम्बर्ट, इस आदमी की कहानी बड़ी ही अद्भुत और जानने योग्य होनी चाहिए।'

'जरूर। मैं तो कहता हूँ कि उस पर एक बड़ा उपन्यास लिखा जा सकता है।'

'तुम पुजारी से मिलने कब जाओगे?'

'आज शाम को ही।'

'अभी हमें यह बात किसी से कहनी नहीं चाहिए।'

'मैंने भी यही निर्णय किया है। चलो, बात बदल दें, वे लोग आ रहे हैं।' प्रेम ने सिगरेट का ठूँठा दबाते हुए कहा।

भोजन के बाद मार्था और बेसल अपने निवास-स्थान पर पहुँच गये। रतिनाथ भी लौट आया था। शाम को पाँच बजे वहाँ मंडल के सदस्यों तथा अन्य लोगों की एक बैठक बुलाने का निश्चय किया गया। बैठक में रतिनाथ को दो शब्द कहने थे और मार्था को मंडल के विकास एवं प्रचार का ब्यौरा देना था। आइलीन और प्रेम पिछली मीटिंग का विवरण सुनानेवाले थे।

ठीक पाँच बजे बैठक शुरू हुई। विशाल कक्ष में सबके बैठने की व्यवस्था की गई थी। कर्नल के सिवा सब उपस्थित थे। माया और रणधीर भी आ गये थे और रोहिणी भी। रतिनाथ के आगमन के समाचार चारों ओर फैल गये थे। लोग उसे देखने के लिए आने लगे थे। कमरा और दालान खचाखच भर गये थे।

आइलीन और प्रेम की प्रस्तावना के बाद मार्था ने 'महारात्रि' का विस्तृत परिचय दिया। उसके भाषण का अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने करीब पैंतालीस मिनट तक भाषण दिया, जिसका संक्षिप्त सार राजबिहारी ने हिन्दी में समझाया।

अन्त में रतिनाथ ने बैठे-बैठे अपना भाषण प्रारम्भ किया। पहले पाँच मिनट वह अँग्रेजी में बोला ताकि मार्था, बेसल, आइलीन, लैम्बर्ट आदि हिन्दी न जानने-वालों को समझने में सरलता हो। उसमें उसने त्याग और जीवन के सम्बन्ध में सारगर्भित बातें कहीं और तब आधे घण्टे तक हिन्दी में निम्नोक्त प्रवचन किया :

'परमात्मा तो प्रशान्त महासागर है और उसमें जो लहरें उठती रहती हैं वह अहंकार का रंग है। अहंकार से आत्मा को ग्रहण की धुन सवार होती है। उसकी विराटता मिटकर वह छोटे बुदबुदे के समान हो जाती है। अपने को महासागर से पृथक् बुदबुदे के समान अनुभव करने लगती है; बुदबुदे के रूप में अपने को सुखी मानती है। अगर हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो बुदबुदा मिटकर सागर बनना चाहिए, अहं को मिटाकर विश्वरूप होना चाहिए, राग छोड़कर त्याग को अपनाना चाहिए। सबके लिए हम हैं, हमारे लिए सब नहीं हैं, ऐसा निश्चय करके ईश्वर के ऊपर भार न रखते हुए हमें ही उसका कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। सेवा ही महानता का मंत्र है; त्याग ही जीवन है।'

शाम को देर तक मीटिंग चलती रही और फिर सब सोत्साह अपने-अपने घर गये।

४२ : घायल हृदय

प्रेमवल्लभ ने जब से रोहिणी को देखा उसका मन उस पर निछावर हो गया था। स्टेशन पर उसने दो-तीन बार रोहिणी की ओर देखा भी, लेकिन उसकी दृष्टि उस ओर नहीं थी।

बस में भी वह उसी की ओर कनखियों से देखता रहा। उसकी मुखाकृति उसके

हृदय पर अंकित हो गई। उसकी आँखें उसकी रक्तवाहिनियों में नाचने लगीं। उसकी आवाज उसकी प्राणवाहिनियों में ध्वनित होने लगी। उसे ऐसा अनुभव होने लगा मानो अंग-उपांगों में नई चेतना का संचार हो रहा हो।

दो-एक बार दोनो की आँखें मिलीं, स्थिर भी हुईं, लेकिन उसी समय किसी ने बीच में बोलकर विक्षेप डाल दिया। स्टेशन पर हाथ मिलाते [illegible] हाथ की उष्मा का प्रेमवल्लभ को आभास हुआ था। उससे बातें करने की उसे तीव्र इच्छा थी, किन्तु अवसर नहीं मिल पाया था। बस में बैठा-बैठा वह विचारों के बादलों में विचरने लगा था। पर्वतों और घाटियों में उसे कोई नया ही सौन्दर्य दिखाई देने लगा था। रोहिणी नाम पर वह मुग्ध हो गया था, क्योंकि वास्तव में वह थी भी रोहिणी ही।

उसकी गरदन, उसका केश-कलाप, उसकी नाक, आँखें, ओठ—सभी कुछ प्रेमवल्लभ की आँखों को खींचे ले रहे थे। वह अपनी आँखों को समझाता, मनाता, धमकाता, किन्तु वे फिर दौड़ने लगती थीं।

एक बार फिर उसकी दृष्टि रोहिणी से टकराई और आँखों ने मौन वाणी में कुछ कहा। वह कथन संक्षिप्त, क्षिप्र और मधुर था। फिर नैनीताल पहुँचने तक आँखें मिल न सकीं।

महीताल पर तो अवसर ही नहीं मिला। प्रेम के हृदय में भावनाओं का अम्बार लग रहा था किन्तु लोगों की उपस्थिति के कारण उद्घाटन का अवकाश न था।

जब सबने अपना-अपना मार्ग लिया तो उन आँखों ने एक बार फिर मौन संगीत निवेदन कर लिया। अपनी वेणी सहेजने के लिए जब उसने हाथ ऊपर उठाया तो प्रेम ने पाया उसकी आँखें निमंत्रण दे रही थीं।

'क्या कह गईं वे आँखें?' प्रेम ने अपने से पूछा।

'यही कि मिलने में कोई आपत्ति नहीं।' उसने स्वयं ही उत्तर भी दिया।

'लेकिन मिलकर होगा क्या?'

'यह तो मिलने पर ही मालूम होगा।'

प्रेम ने अपने प्रेम-वार्तालाप को वहीं समाप्त कर दिया। लेकिन समाप्त कर देने पर भी वह पुनः आरम्भ हो गया।

'क्या उसे भी प्रेम है?' उसने अपने से पूछा।

'हो भी सकता है और नहीं भी।' उसने स्वयं उत्तर भी दिया।

'तू उसे पसन्द भी होगा ?'

'शायद !'

'तुझे वह पसन्द है ?'

'बहुत ही अधिक।'

'हुँ, नीयत बिगड़ रही है क्यों ?'

'इसमें नीयत बिगड़ने की कौन बात है ?'

'यही कि तू उस पर मोहित हो गया है।'

'हाँ, वह मुझे बहुत अच्छी लगी, मेरे मन में बस गई, हृदय में समा गई।'

लेकिन वह फिर इन वार्तालापों को रोक देता था। किन्हीं-किन्हीं वार्तालापों में शृंगार-रस की मात्रा कुछ अधिक हो जाती थी।

आइलीन के घर पहुँचकर उसने दूसरी बातों में मन लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे आँखें बार-बार उसके सामने आ जाती थीं। वह अपने मन से पूछता था, 'शाम की बैठक में तो वह आयेगी न ?' 'जरूर आयेगी, सन्देह किस लिए करता है ?' मन ने बिगड़कर कहा।

और वह आई। साड़ी बदल गई थी; ब्लाउज़ की जगह चोली थी। कितना मस्त था उसका यौवन और कितना भरा-पूरा ! उसने पाया कि वह उसे देख रही थी। जब वह भाषण देने उठा तो वह उसी को एकटक देख रही थी। उसके शब्द क्या उसे प्रिय लगे थे ? वह बैठ गया तो उसने अपनी वेणी सँवारने के लिए कोमल हाथ ऊपर उठाया। प्रेम को लगा जैसे शीत ऋतु में बसन्त का आगमन हो गया हो। दोनों की दृष्टि मिली। मौन था, किन्तु फिर भी अन्तर के भावों से मुखरित।

बैठक समाप्त हुई और सब बातें करने लगे। उसके आसपास चार-पाँच व्यक्ति बैठे थे; क्योंकि वह हाकिम जो था। लेकिन उसकी दृष्टि माया, रणधीर और रोहिणी पर थी। सब रंतिनाथ की सेवा में लगे थे। आइलीन भी वहीं थी। वहाँ से कोई उठने का नाम नहीं लेता था।

वह भी उधर सरक गया और माया से धीरे-धीरे बातें करने लगा।

'आपने तो खूब कष्ट किया !' रंतिनाथ ने प्रेम की ओर देखकर कुछ उच्च-स्वर में कहा; जिसमें सब सुन सकें।

'नहीं-नहीं साहब, इसमें कष्ट क्या ? हमें तो बड़ी खुशी हुई।'

'आजकल तो यहीं हैं न ?'

'जी हाँ; एक सप्ताह की छुट्टी ली है।'

'छुट्टी में भी आपको कोई आराम से नहीं बैठने देता।'

प्रेमवल्लभ कुछ न बोला; वह नम्रतापूर्वक खड़ा रहा। उसके मुँह पर मधुर मुस्कान थी।

माया और रणधीर ने भी उसके साथ थोड़ी देर बातें कीं। सब चले गये। माया ने रतिनाथ से अपने घर चलने का आग्रह किया; लेकिन उसने कहा कि आज तो वह खूब थक गया है। मार्था और बेसल ने भी आभारपूर्वक इनकार कर दिया।

'अब मुझे जाने की आज्ञा है ?' प्रेम ने रतिनाथ से पूछा।

'क्यों, बहुत जल्दी है क्या ?'

'आप भी तो आराम करना चाहेंगे ?'

'कहाँ ठहरे हैं ?'

'डाकबँगले में।'

'मैंने बहुत कहा कि हमारे साथ ही रहो, लेकिन माना नहीं।' आइलीन बोली।

'आइलीन अभी कुछ ही दिन पहले आई है, इसलिए इन्हें और लेम्बर्ट को अकेला छोड़ना अधिक उचित प्रतीत हुआ।'

प्रेम का उत्तर सुनकर सब मुस्कराने लगे

'लेकिन हमारे यहाँ तो ऐसा कुछ है नहीं,

माया ने कहा।

प्रेम विचार में पड़ गया कि क्या उत्तर दे। बोला—जी नहीं, मुझे कोई तकलीफ तो है नहीं, फिर आपको क्यों कष्ट दूँ ?

'अकेले हो। वहाँ की अपेक्षा इनके यहाँ रहोगे तो अकेलापन कम लगेगा। और पास भी रहोगे।'

प्रेम को रतिनाथ के शब्दों में कोई विचित्र व्यंजना प्रतीत हुई। रोहिणी को भी ऐसा ही लगा।

'आप हमारे ही घर चलिए।' रणधीर ने आग्रह किया।

प्रेम का मन जाने को तैयार हो रहा था, किन्तु उसने उसे समझाया। थोड़ी देर वह नम्रतापूर्वक मुस्कराता खड़ा रहा। फिर बोला—आप लोगों का आभारी हूँ। दूसरी बार आऊँगा तो जरूर आपको कष्ट दूँगा।

बात समाप्त हो गई थी; लेकिन इसी बीच रोहिणी वहाँ आई और बोली—जल्दी जाकर क्या कीजिएगा! चलिए हमारे यहाँ। आप, मम्मी, पापा और मैं ब्रिज खेलेंगे।'

'हाँ-हाँ, ठीक तो है। हमारे यहाँ खाना खाकर चले जाइएगा।' माया ने भी कहा।

प्रेम को यह प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा। लैम्बर्ट और आइलीन को जल्दी जाना था, इसलिए उन्होंने साथ जाने से इनकार कर दिया।

रणधीर का मकान अच्छा-खासा महल ही था। सुन्दर उद्यान, संगमरमर का हौज, कई फव्वारे तथा शानदार प्रवेश द्वार दृष्टि को सहज ही आकर्षित कर लेते थे। अन्दर प्रवेश करते ही लक्ष्मी मानो नृत्य करती दिखाई देती थी। कीमती गालीचे, मूल्यवान प्राचीन वस्तुएँ, चुने हुए चित्र, आधुनिक ढंग का फर्नीचर, जरी के पर्दे, चाँदी के फूलदान, फ्रेमें और मखमली तथा रेशमी गद्दी-तकिये, चारों ओर जगमगाहट तथा वैभव का बाहुल्य था।

प्रेमवल्लभ को बिठाकर रणधीर ने अपना सोने का सिगरेट-केस उसकी ओर बढ़ाया और फिर सोने के लाइटर से सिगरेट सुलगाई। सफेद पोशाक में सज्ज एक नौकर ट्रे में प्यालियाँ और विभिन्न प्रकार की शराब के तीन-चार शीशे ले आया।

'क्या लेंगे?' रणधीर ने पूछा।

'कुछ नहीं। इस मंडल में शामिल होने के बाद तो कुछ भी नहीं।'

'तो हम सब कॉफी पीयें।' माया ने फैसला किया।

'मैं स्वयं या हम लोग कदाचित् ही शराब को छूते हैं। लेकिन हम ठहरे क्षत्रिय; अगर कोई सम्बन्धी या रिश्तेदार आ जायें और उन्हें न पिलायें तो अच्छा नहीं लगता।' रणधीर ने सफाई दी।

'यह सब आपके भाई साहब का प्रभाव है! आइलीन कहती है कि वह तो

बहुत पीती थीं और मायाँ भी, लेकिन जब उन्होंने कहा कि शराब स्वतंत्र नहीं, परावलम्बी बनाती है, तो कहते हैं कि उन लोगों ने उसी दम छोड़ दी। मंडल का कोई सदस्य शराब नहीं पीता।'

'भाई साहब तो पहले भी शराब नहीं छूते थे।'

'आपके भाई साहब ने क्यों सब-कुछ छोड़ दिया, यह जानने के लिए सब आतुर हैं। सचमुच बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं।'

'हाँ, हैं तो बिलकुल अद्भुत। यह सब उन्हीं का था; मैं तो छोटा भाई हूँ लेकिन ये बातें फिर कभी बताऊँगा आपको।'

'मैं ज़रा अन्दर व्यवस्था कर आऊँ।' यह कहकर माया चली गई।

'आपको शिकार का शौक है?' रोहिणी ने प्रेम से पूछा।

प्रेम ने उसकी ओर देखा। आँखें मिलीं। बोला—बहुत ज्यादा। और आपको

'कभी-कभी पापा के साथ चली जाती हूँ। मैंने अभी तक तीन तेंदुए मारे हैं दो के सिर तो वे लटक रहे हैं उस कोने में।'

'इसकी मा भी अच्छी निशानेबाज हैं। उन्होंने दो शेर और पाँच तेंदुए मा हैं। सज्जनसिंह!' ऐसा कहकर उन्होंने नौकर को आवाज़ दी।

'हुज़ूर!'

'रानी साहिबा का शिकार का एलबम तो लाओ।'

सज्जनसिंह एलबम ले आया। एलबम माया और रणधीर के शिकार-चित्रों से भरा था। माया शेर और तेंदुए को मारकर खड़ी थी।

'मेरा एलबम मेरी अलमारी में है; ठहरिए मैं ले आऊँ।' कहकर रणधीर एलबम लेने चला गया।

एलबम देखते-देखते प्रेम और रोहिणी ने एक-दूसरे की ओर देखा।

'आपको शिकार का शौक है!

'हाँ, मैं चलाती हूँ।'

'तेंदुए को क्या मारना?' प्रेम ने उसकी ओर देखकर विनोद किया।

'शेर शायद मुझसे डरते हैं!'

रोहिणी ने भी मुँहतोड़ उत्तर दिया। प्रेम उसके शब्दों का मर्म समझ गया और हँसने लगा।

'मेरे साथ शिकार करने चलेंगी ?'

'नहीं।'

'मुझे अपने साथ शिकार खेलने ले चलेंगी ?'

प्रेम का प्रश्न सुनकर वह उसे ताकने लगी। कितना तेज था उसकी आँखों में ! प्रताप भी था और लालसा भी।

'यहीं आ जाइए।'

इतना कहकर वह एलबम पलटने लगी। प्रेम की उँगलियाँ उसके हाथ को छू गई। दोनो एलबम देखने लगे।

'आ तो जाऊँ, लेकिन फिर जाने की इच्छा न हुई, तो ?'

'यहीं रह सकते हैं। इतने आदमी काम करते हैं, उनमें एक आप भी।' रोहिणी ने मजाक किया और फिर उसकी ओर देखकर हँसने लगी।

'आपकी नौकरी मिल जाये तो अपनी किस्मत सराहूँ।'

'आटे-दाल के भाव मालूम हो जायेंगे।'

इतने में रणधीर एलबम लेकर आ पहुँचा। दोनो ने ऐसा अभिनय किया मानो एलबम देखने में निमग्न हों।

माया भी आ गई और शिकार की बातें होने लगीं।

'क्यों, ब्रिज खेलोगी ?' रणधीर ने पत्नी से पूछा।

'हाँ। प्रतापसिंह, जरा ब्रिज की टेबल तो लगाओ।' माया ने नौकर को आज्ञा दी।

'जी हुजूर !' कहकर प्रतापसिंह ब्रिज-रूम में गया।

कॉफी आई। माया ने तैयार करके सब को दी। प्रतापसिंह ने आकर खबर दी कि टेबल तैयार है। चारों व्यक्ति ब्रिज खेलने उठे। पार्टनरों के पत्ते डाले गये। माया और प्रेम पार्टनर हुए। पत्ते बाँटना प्रेम के जिम्मे आया।

माया ब्रिज की पक्की खिलाड़ी थी और प्रेम कच्चा। रणधीर और रोहिणी दोनो कुशल थे। प्रत्येक प्वाइंट का एक रुपया था। रणधीर ने देखा कि प्रेम कच्चा खिलाड़ी होने से हार रहा है तो वह खेल में लापरवाही करने लगा, नहीं तो प्रेम की जेब खाली हो जाने का अन्देशा था। उसने जान-बूझकर दो-तीन कॉल करके सब बराबर कर दिया। माया समझ गई, उसने पति की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से

देखा। इस तरह खेल खत्म हुआ। इस बीच खाना तैयार हो गया था।

'पापा, आज तो आप बड़ी लापरवाही से खेले, नहीं तो मजा चखा देती। मिस्टर प्रेमवल्लभ की पूरे एक महीने की तनख्वाह जप्त हो जाती।'

'जिसे भगवान बचाता है उसका आप कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं।' प्रेम ने रोहिणी पर व्यंग्य कसा।

'अजी साहब, पता लग जाता! आप और आपके भगवान धरे रह जाते!'

'सच बात यह है, रानी साहिबा, कि मैं ब्रिज शायद ही कभी खेलता हूँ। लेकिन आपकी इच्छा देखकर इनकार न कर सका। राजा साहब का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे बचा लिया।' प्रेम ने सच बात कह दी।

रणधीर ने हँसकर उसके कन्धे पर धौल जमा दी।

'आपनें पहले ही बता दिया होता तो कुछ और खेलते।' माया बोली।

'मुझे तो शिकार और घोड़ों के सिवा कुछ नहीं आता।' कहकर उसनी तिरछी नजर से रोहिणी की ओर देखा।

'वह तो देखने पर ही पता चलेगा कि कितना कुछ आता है।' रोहिणी ने मुँह बिचकाकर कहा।

प्रेम को लगा कि रोहिणी अपमान कर रही है, लेकिन फिर भी उससे वह खुश ही हुआ।

मेज पर तरह-तरह की चीजें आ गईं। राजाओं का भोजन राजसी तो होगा ही।

रोहिणी और प्रेम खुलकर बातें कर रहे थे। भोजन के बाद जब वह जाने लगा तो रोहिणी बोली, 'ब्रिज सीखना हो तो कल आइए।' माया और रणधीर ने भी आग्रह किया। प्रेम प्रसन्न मन विदा हुआ।

३२ : यौवन का सत्य

उसके मुँह से निकले हुए शब्दों को दुहराता हुआ वह अपने निवास की ओर चला जा रहा था। हर मोड़ पर वह मन-ही-मन कह उठता था, 'ब्रिज सीखना हो तो कल आइए।' चढ़ाई उतरकर वह समतल भूमि पर आया और झील के रंग-बिरंगे दीपक उसे लुभाने लगे। 'ब्रिज सीखना हो तो कल आइए।' इस एक पंक्ति को वह तरह-तरह के रागों में गाने लगा। भारतीय संगीत के स्वरों में, पश्चिमी संगीत के स्वरों

में और तन दोनो का मिश्रण करके। आखिर बात तो एक ही थी और वह थी 'ब्रिज सीखना हो तो कल आइए।' फिर वह तालपूर्वक पैर उठाने और गाने लगा, 'ब्रिज....ब्रिज....ब्रिज; सीखना हो तो....कल....कल....कल आइए....ब्रिज सीखना हो तो कल आइए....!'

गाते-गाते उसे तीन-चार ठोकरें भी लगीं, गिरते-गिरते बचा, फिर भी 'ब्रिज.... ब्रिज....ब्रिज' का गीत उसने नहीं छोड़ा। आखिर अपने निवास पर पहुँचा और अपने-आपसे बोला : 'जा रे पागल!' फिर उसी में से संगीत की धुन बह चली : 'जा....रे पा....आ....गल, जा रे पागल जा, तू पागल घर जा!'

और वह पागल अपने कमरे में पहुँचा। वहाँ रोहिणी नहीं थी, फिर भी है, ऐसा मानकर उससे बातें करने लगा :

'मैं तुझे चाहता हूँ रोहिणी।'

'फिर?'

'फिर क्या, शादी कर लेना चाहिए।'

'पहले ब्रिज सीखो, ब्रिज!'

'अरे, भाड़ में गया ब्रिज। उसमें क्या सीखना है?'

'मैं कह रही हूँ ब्रिज सीखो।'

'अच्छा चल थ्री हार्ट्स्।'

'गलत; एक हार्ट से शुरू करो।'

'नहीं, मेरे दो हैं एक तेरा एक मेरा।'

'नहीं, दो मैं बोलूँगी; फिर तुम चुप रहना। तीन हार्ट्स् हुए हैं कहीं!'

'दो हार्ट एक नहीं हो सकते रोहिणी?'

'नहीं, ब्रिज में एक के दो हो सकते हैं, दो का एक नहीं।'

'तो मैं ब्रिज नहीं खेलता। तू मुझे दो को एक करनेवाला ब्रिज सिखा।'

'मेरा खयाल है कि तुम ब्रिज नहीं सीख सकते।'

'और तू सिखाएगी भी नहीं। सिखाना ही हो तो एक हार्टवाला सिखा।'

स्लीपिंग सूट पहिनकर मोजड़ी में पैर डालते हुए फिर उसे ठोकर लगी।

'रोहिणी, तू मुझे ठोकर मत मार।'

'चलो, सो जाओ, चुपचाप और याद रखो। ब्रिज तुम्हें सीखना होगा।'

'एक हार्टवाला, दो हार्टवाला नहीं।'

'ठीक, रजाई ओढ़ लो; अच्छी तरह ओढ़ो, नहीं तो ठंड लगेगी। सो जाओ, जागना ठीक नहीं।'

और वह चुपचाप सो गया।

स्वप्न में वह ब्रिज खेला, रोहिणी का उलहना सुना और अपने सिर पर ताश का बँगला बनाया। बँगले में रोहिणी रहने आई।

'रोहिणी, मुझे अन्दर आना है।'

'आओ।'

'कैसे आऊँ? बँगला सिर पर जो है!'

'मूर्खों-जैसी बातें न करो। चलकर ऊपर नहीं आ सकते?'

रोहिणी ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया और वह ऊपर पहुँच गया। दोनो बँगले में घूमने लगे।

'कोई गीत गाओ न?'

'मुझे गाना नहीं आता, तुम गाओ।'

'जाओ, तम्बूरा ले आओ।'

वह नीचे उतरने लगा और चौंक पड़ा। उसका पैर पलंग से नीचे लटक रहा था। आँखें मलता हुआ वह पलंग पर बैठ गया।

'साहब, एक मेम साब मिलने आई हैं। घोड़े पर सवार हैं।' नौकर ने कहा।

प्रेमवल्लभ ने देखा तो सुबह के नौ बज रहे थे। वह एकदम उठा और ड्रेसिंग गाउन पहनकर बरामदे में आया। बरामदे के पास रोहिणी घोड़े पर सवार थी। उसने ब्रिजिस पहनी थी और हाथ में चाबुक था।

'नौ बजे तक सोते हैं! मैंने तो सोचा था कि कब के उठ गये होंगे, इसलिए चलूँ, राइडिंग पर साथ लेती चलूँ।'

'आइए, आइए!'

'जी नहीं, मुझे राइडिंग करना है। आप भी तैयार हो जाइए। मैं आध घंटे में झील का चक्कर लगाकर आती हूँ।' कहकर उसने घोड़े को एड़ लगाई और चली गई। प्रेम उसकी पीठ देखता रहा। कितनी शान से वह घोड़ा दौड़ाती थी!

प्रेम जल्दी-जल्दी तैयार होने लगा। हाथ-मुँह धोकर चाय पी, दाढ़ी बनाई,

नहाया और कपड़े पहनकर रोहिणी की प्रतीक्षा करने लगा। फिर ताश लेकर बँगला बनाने लगा। उसकी छाती धक्-धक् कर रही थी। उसकी व्यग्रता का पार न था।

थोड़ी देर बाद वह घोड़े पर आती दिखाई दी। प्रेम ने ताश का चार मंजिला बँगला बना लिया था। वह उछलकर घोड़े से उतर पड़ी। प्रेम उसे लेने गया। बोली—तैयार हैं?

'हाँ, चलिए नाश्ता करें।'

'जी नहीं, मैं तो छः बजे उठकर सात बजे तैयार हो जाती हूँ। फिर भी चलिए, चाय पीयूँगी।'

दोनों अन्दर आये। प्रेम के मुँह पर आनन्द था, रोहिणी की आँखों में उत्साह।

'रात बहुत देर हो गई थी?'

'हाँ।'

'आकर तुरन्त सो गये थे?'

'हाँ; और आप?'

'मैं भी।'

'फिर क्या हुआ?'

'फिर सवेरे उठ गई। आपसे पहिले।'

'तो जल्दी आना चाहिए था।'

'घोड़े पर सवार हुई, तब तक तो आने का विचार नहीं था।'

'फिर कब विचार हुआ?'

'इधर घोड़ा दौड़ा रही थी कि आपका पता याद हो आया। सोचा, चलो मिलती चलूँ।'

'ऐसा विचार रोज आ जाया करे तो कितना अच्छा!'

'जी नहीं, कल तो उस ओर जाना है।'

'तो फिर इस ओर का क्या होगा?'

प्रेम का यह भोला प्रश्न सुनकर वह हँस पड़ी।

'सोता रहेगा!' कहकर उसने चाबुक नचाया।

प्रेम ने उसका चाबुक पकड़ लिया और देखता रहा। बोला—कल भी आना पड़ेगा और रोज आना पड़ेगा।

'अच्छी बात है। मगर जल्दी उठना। ब्रिजिस पहनकर तैयार रहना।' इतना कहकर वह खिड़की के पास जा खड़ी हुई। प्रेम उसके पीछे गया। उसके दोनो हाथ पकड़कर दबाये। वह कुछ न बोली। उसका मुँह खिड़की की ओर था और पीठ प्रेम की ओर। प्रेन उसके हाथों को कन्धे से कलाई तक दबाता रहा—खिलाता रहा। फिर कन्धों से पकड़कर पीछे खींचा। रोहिणी की पीठ प्रेम की छाती से लग गई। प्रेम ने बाहुपाश को कस दिया और रोहिणी उसमें बँध गई। उसने गरदन घुमाकर प्रेम की ओर देखा। प्रेम के होठ उसकी गरदन से लग गये, फिर भी उसने गरदन नहीं हटाई।

प्रेम के होठ उसके गले पर फिरते रहे। कितनी कोमल, शीतल और शान्तिदायिनी थी उसकी त्वचा। प्रेम को अपनी क्लान्ति उतरती और जीवन का रस उमड़ता, छलकता प्रतीत हुआ।

'मैं तुम्हें हमेशा इसी तरह रखना चाहता हूँ।'

उसके शब्दों में गरमाहट, गहनता और मस्ती थी। रोहिणी को वे शब्द बड़े सुहावने लगे। उसने धीरे-धीरे अपना गाल प्रेम के होठों से सटा दिया। प्रेम ने उस पर स्नेह-चुम्बनों की झड़ी लगा दी। वे गाल नहीं, यौवन की मखमली सेज थी। प्रेम के होठ उस पर सो गये। रोहिणी के नेत्र मुँद गये। प्रेम ने अपने स्वप्निल ओठों को जगाया और उन्हें तरुणाई के अमृत से भरे रोहिणी के अधरों पर सुला दिया। दोनो को लगा कि यही स्वर्ग है।

'बस।' इतना कहकर वह छूट गई। प्रेम उसे देखता हुआ स्थिर खड़ा रहा।

वे एक-दूसरे की ओर देखते हुए नेत्रों द्वारा सम्भाषण करते रहे। नौकर चाय-नाश्ता रख गया। रोहिणी ने दोनो के लिए चाय तैयार की और टोस्ट पर मक्खन लगाया।

'लो।' उसने प्रेम की ओर प्याला बढ़ाते हुए कहा। प्रेम ने उसे रोहिणी के होठों से लगाया और फिर स्वयं घूँट भरा। रोहिणी ने टोस्ट का टुकड़ा प्रेम के होठों से लगाया। प्रेम ने थोड़ा सा काट लिया और रोहिणी उसे खाने लगी।

यौवन अपने नित्य-सत्य का उच्चारण कर रहा था। वाणी निरुपयोगी हो गई थी; आँखें हार गई थीं; केवल अन्तरेन्द्रियाँ कार्य कर रही थीं। हृदय की धड़कनें एक-दूसरे को सम्बोधित कर रही थीं। अन्तर्भाव एक-दूसरे से कनफुसकियाँ करते कोई

नूतन कथा कह रहे थे। सामान्य और विशेष के सन्धि-स्तरों पर चेतना क्रीड़ा कर रही थी। समाधि नहीं थी, जाग्रत स्वप्न नहीं थे, और सुषुप्ति भी नहीं थी।

रस कौन-सा है, यह विश्लेषण करना कठिन ही था। विश्लेषण की सम्भावना ही नहीं रह गई थी। सम्भवतः वह कोई नया ही रस था। शृंगार था तो हास्य भी था और कुछ-कुछ वीभत्स भी था; थोड़ा-थोड़ा करुण भी था और शान्तिदायी होने के कारण शान्त तो था ही। पुरुष और प्रकृति की प्रेम-चेष्टा शास्त्रीय पुस्तकों के आधार पर अथवा रस-मीमांसकों द्वारा निर्धारित सीमा में नहीं हो रही थी। कोई सीमा ही नहीं थी उसकी और होती भी कहाँ से? चेतन-तत्व के रंग तो अभिनव ही होते हैं। टोस्ट ठंडा हो गया था; उसे गर्म करने वह कहाँ जाता? स्थूल अग्नि पर गर्म न करके उसने उसे रोहिणी की छाती पर रखा तो वह गरमागरम मालूम हुआ। शृंगार था? वीभत्स था? जो भी हो। वह मीमांसाचार्यों की ठंडी छाती का रस नहीं, चेतन-तत्व का अभिनव रंग था। आत्मा की मुक्ति थी, अहंकार का पतन था, वियोग का विध्वंस था।

वियोग को समूल विध्वंस करने के उद्देश्य के अनुप्राणित उसने उन्हें बाहु-पाश में कस लिया। दोनो की शिराओं का रक्त महासागर में विलीन होने के लिए तीव्र गति से दौड़ने लगा। शृंगार, हास्य, करुण, वीभत्स की तुच्छ बालुका-राशि बिखर गई। यौवन के उस झंझावात में नीति-रीति-भीति की सीमियाँ जाने कहाँ उड़ गईं। यौवन ने तादात्म्य की प्रथम अनुभूति का दर्शन किया। वह दर्शन स्थायी नहीं, विद्युत् के कौंधने की तरह था। परन्तु दर्शन अवश्य था।

'अब मैं जा सकती हूँ?' उसने प्रेम से पूछा।

'कहाँ जाओगी?'

कुछ भी बोले बिना वह प्रेम की गोद में बैठ गई। उसके होठों को उसने चूम लिया।

बारह बज गये, लेकिन वह न गई—न जा सकी। चेतना का प्रचंड वेग आता और शान्त हो जाता था। लज्जा, संकोच, दुराव सब विलीन हो गये विलुप्त हो गये। वह कोई सामान्य कविता नहीं थी; चौदह पंक्ति का सॉनेट नहीं था; खण्ड-काव्य का अर्द्ध-कृत्रिम उफान नहीं था—वह था चेतन-तत्व का निःशब्द महाकाव्य। नाटक नहीं, वह जीवन का नाटक था।

आखिर उस नाटक का भी अन्त हुआ। आत्मा ने बन्धन के शासन को स्वीकार किया। एक बजे वह बाहुपाश से मुक्त हुई। उसने कपड़े ठीक किये, प्रेम का मस्तक चूमा, चाबुक उठाया, घोड़े पर सवार हुई और आई थी उसी तरह चली गई। दौड़कर जाते हुए घोड़े की पीठ पर से उसने मुड़कर देखा और मधुर-मधुर मुस्करा दी।

४४ : मुझे पहिचाना ?

मार्था, बेसल और राजबिहारी दो-तीन दिन के लिए हलद्वानी तथा आसपास के ग्रामों में प्रचार के लिए गये थे। निवास-स्थान पर रंतिनाथ अकेला था।

रात के दस बजे वह अँगीठी के पास बैठा-बैठा विचार कर रहा था कि किसी ने द्वार खटखटाया। रंतिनाथ ने उठकर द्वार खोल दिया।

नैनी देवी के मन्दिर का वह वृद्ध साधु दरवाजे में खड़ा था। थोड़ी देर तक दोनो एक-दूसरे को देखते रहे। फिर साधु अन्दर आया।

'मुझे नहीं पहिचाना भैया ?'

'कौन रतनसिंह !'

'जी।'

'आओ-आओ रतनसिंह! तुमने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया। यह वेश कब से धारण किया ?'

'आपके जाने के बाद।'

'आओ, बैठो आग के पास।'

साधु को लेकर वह अँगीठी के पास आया। साधु ने बैठकर रंतिनाथ के पैरों पर सिर रख दिया।

'अरे-अरे! यह क्या कर रहे हो रतनसिंह ? यह शोभा देता है ? यहाँ इस कुर्सी पर बैठो।'

'नहीं भैया! मेरा स्थान आपके चरणों में ही है।'

बड़े आग्रह के बाद वह कुर्सी पर बैठा।

'कैसे पता चला कि मैं आया हूँ ?'

'सारा गाँव जानता है।'

'कहाँ हो आजकल ?'

'नैनी देवी में रहता हूँ भैया ! अलमोड़ा जाता हूँ तब नन्दा देवी में और कभी-कभी अष्टभुजा के मन्दिर में भी ।'

'मैंने पूछा था रणधीर से तुम्हारे बारे में। परन्तु उन्हें कोई पता ही नहीं था।'

'आपने घर छोड़ा, फिर मैंने भी छोड़ दिया ।'

'कहो, कैसी है मन की स्थिति ?'

'आपसे वह कहाँ छिपी है। देख तो रहे ही हैं !'

'कौन-सी उपासना में लगे हो ?'

'अघोर उपासना में ।'

'कैसा लगता है ?'

'प्रकाश की किरण कभी कौंध तो जाती है, लेकिन मेरे मन को सन्तोष नहीं होता। पूर्णता नहीं प्राप्त हो रही है ।'

'इसमें और हो भी क्या सकता है रतनसिंह ! तुम सबको सिद्धियों का बड़ा मोह है ।'

'मन को शान्ति नहीं है भैया !' वृद्ध के स्वर में दीनता थी ।

'उपासना का ढंग बदल दो ।'

'यही तो पूछने आया हूँ ।'

'मैं इस समय तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था ।'

'सच कह रहे हो भैया ! मैं मन्दिर में बैठा था और अकस्मात् जैसे आपको कहते सुना—मेरे पास चले आओ । और मैं चल पड़ा ।'

'अघोर नहीं, सात्विक उपासना करो, रतनसिंह ।'

'आप तो जानते हैं भैया, मैं सात्विक उपासना ही करता था। आपके जाने के बाद किसी ने अघोर उपासना में लगा दिया । कहने लगा कि जल्दी-से-जल्दी फल मिलेगा ।'

'और तुमने मान भी लिया। परिणाम यह हुआ कि तुमने थोड़े-से जादू-मंत्रों के चमत्कार तो सिद्ध किये, किन्तु मन अशान्त और उद्विग्न रहने लगा । कुछ शिष्य भी बनाये होंगे ?'

'हाँ भैया, एक शिष्य है। उसे कुछ-कुछ दिखाई देता है ।'

'खाक दिखाई देता है! मन के रागों की निरी चकाचौंध होगी वह।'

'उसे अनुभव हुआ है भैया!'

'कैसा अनुभव?'

'आठ शक्तियाँ उसे प्राप्त हुई हैं।'

'समझ गया। आठ स्त्रियाँ आकर उसके साथ रमण कर जाती हैं या और कुछ?'

'यही!'

'रतनसिंह, सम्भोग की उपलब्धि के लिए मनुष्य को यंत्र-तंत्र सिद्ध करने की क्या आवश्यकता?'

'तो आप ही कुछ समझाइए।'

'मंत्र में बिजली होती है। वह अणु-परमाणु को तोड़ भी सकता है और उसकी रचना भी कर सकता है। तुम्हारे अघोर-मंत्र में विशिष्ट प्रकार की रचना करने की शक्ति है तो साथ ही मस्तिष्क को खोखला बनाने की शक्ति भी है।'

साधु सुनता रहा। रतिनाथ एकटक उसकी आँखों में देख रहा था।

'विश्व के चेतन रूप के साथ मनोवांछित आवागमन ही सच्च शक्ति है। वह शक्ति मंत्रों में नहीं, हृदय में निहित है। जिस व्यक्ति का हृदय से तादात्म्य हो जाता है उसी के मंत्र वायु की गति धारण करते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए संकल्प ही मंत्र हो जाता है।'

'अब तो आप ही मेरा हाथ पकड़ें भैया, तो उबर सकता हूँ।'

'सिद्धि की वासना छोड़ दो। चेतन-तत्व में निमग्न होने का उद्यम करो। सिद्धि चेतन-तत्व की होती है—व्यक्ति की नहीं। देवी का चिन्तन करो, किन्तु कामना छोड़कर। उससे कहो कि तू ही मेरी कामना को उत्पन्न करनेवाली है; यह कामना तेरी ही है, इसलिए तुझी को मैं समर्पित करता हूँ। वह तुझे ही शोभा देती है। रतनसिंह! यह हुआ सद्विचार का स्वरूप। विचार-रहित प्रवृत्ति से तो विपरीत फल ही उत्पन्न होगा।'

इतना कहकर वह शान्त मन अग्नि की ओर देखने लगा। वह इतना एकाग्र चित्त हो गया मानो इस जगत का ही न हो।

'सिद्धि, सिद्धि, सिद्धि! कौन-सी सिद्धि और किसकी सिद्धि! जहाँ चेतन-तत्व

के महासागर लहरा रहे हों वहाँ सिद्धि की एक बूँद के लिए भाग-दौड़ कैसी ? बूँद लेकर समुद्र की उपलब्धि कैसे होगी ? शरीर की प्रत्येक शिरा में समुद्र की बूँदें भरी हैं; लेकिन उन बूँदों का क्या उपयोग ? उन्हें कब तक समुद्र से अलग रखा जा सकेगा ?'

उसने एक गहरी साँस लेकर छोड़ दी।

'मेरे या तुम्हारे पास काल का यही नाप है या कोई दूसरा ?' इतना पूछकर उसने फिर एक लम्बी साँस ली और छोड़ी।

'क्यों रतनसिंह, चेतन-तत्व के साथ हमारा यही परिचय है या कोई दूसरा ?'

'यही है भैया !'

'नाड़ियों का प्रदेश भी इसी लेने-छोड़ने में है या कहीं अन्यत्र ?'

'इसी में।'

'तुम कौन हो रतनसिंह ?'

रतनसिंह चौंक उठा। उसने रंतिनाथ की ओर देखा।

'तुम कौन हो रतनसिंह ?' उसने फिर पूछा।

'मालूम नहीं भैया !'

'तुम नाड़ी-चक्रों में भरी हुई चेतना हो—रतनसिंह नहीं। चेतन-तत्व रूप नहीं बदलते। नाड़ी-चक्रों के कंप बढ़ते हैं, घटते हैं; इसी घट-बढ़ में संसार के रंग हैं। जब चक्रों में चेतना का पूर्ण बल आता है तो संसार का लोप होकर विश्व-दर्शन होता है, जल-प्लावन होता है। कौन-सी सिद्धि चाहते हो रतनसिंह ?'

रंतिनाथ रुक गया; उसके नेत्र स्थिर हो गये। वह चेतना की सामान्य मर्यादा को लाँघकर समाधि में पहुँच गया था। नेत्र खुले थे, किन्तु ऐसा नहीं लगता था कि वे कुछ देख रहे हों। उसके मुखमण्डल पर तेज के वर्तुल थे। रतनसिंह की आँखें चमक उठीं, चौंधिया गईं। उसने रंतिनाथ के अँगूठों पर अपना सिर रखा और नमस्कार करके बैठ गया।

करीब आध घंटे तक यही स्थिति रही। फिर रंतिनाथ ने धीरे-धीरे सामान्य चेतना की मर्यादा में प्रवेश किया और इस प्रकार देखने लगा जैसे किसी नई सृष्टि में आ गया हो।

'बहुत गहरे उतर गये थे भैया !'

'किसे खबर ! कोई पता नहीं कि वह कितना गहरा है—कोई पता नहीं।'

कुछ देर दोनो मौन रहे। फिर रतनसिंह बोला—यहाँ आने के बाद अष्ट-भुजा के दर्शन कर आये भैया?'

'रतनसिंह! जो सारे विश्व में समाई है उसके दर्शनों के लिए कहाँ जाऊँ? आकाश उसका मस्तक है और पाताल उसके चरण।'

'उस शिष्य का क्या करूँ, भैया?'

'कह दो कि अघोर पूजा-अर्चना बन्द करे। कह दो कि यह सब अज्ञान है। सिद्धि का मोह चेतन-तत्व के अज्ञान का ही दूसरा नाम है।'

'उसे यहाँ ले आऊँ?'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

रतनसिंह गया तो रात के ठीक बारह बज रहे थे। कड़ाके की ठंड थी। दरवाजा बन्द करके वह बैठा ही था कि फिर किसी ने खटखटाया। उसने दरवाजा खोला। माया और एक बन्दूकधारी सिपाही खड़े थे। माया ने जरी की गरम शाल ओढ़ी थी; उसके हाथ में एक कटोरा था। नौकर को बाहर बिठाकर वह अन्दर आई। रतिनाथ उसे देखता रहा। दोनो सोफे पर बैठे।

'इस समय कैसी आई माया?'

'माताजी की पूजा करके आ रही हूँ। देखो, अभी रेशमी कपड़े भी नहीं बदले। लो, यह केशरिया दूध पी लो, माताजी का प्रसाद है।'

उसने कटोरा रतिनाथ के मुँह की ओर बढ़ाया। जरा भी आनाकानी किये रतिनाथ ने दूध पी लिया और माया की ओर देखकर हँसने लगा। बोला—बस, अब तो सन्तुष्ट हुई?

'नहीं, यह पान भी खा लो। माताजी को चढ़ाया हुआ है।' कहकर उसने पान रतिनाथ को दिया।

'बोलो, अब क्या हुक्म है?'

'बस! बड़ी कृपा हुई जो इतना मान गये।'

'माया, माया, माया! तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण है, सोने का है।'

'मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ।'

'जरूर पूछो।'

'रोहिणी प्रेमवल्लभ की ओर आकर्षित हुई है। आपको क्या लगता है?'

'संसार का नियम है।'

'तो अब महात्मा की भूमिका से उतरकर बतलाओ कि विवाह कर दूं ?'

'जो साक्षात् शक्ति है उसके समक्ष महात्मा की भूमिका कैसी ! दोनो को एक-दूसरे से प्रेम हो तो बुरा ही क्या है ?'

'यह तो ठीक; लेकिन कोई जल्दबाजी तो नहीं हो रही है ?'

'नहीं; चिन्ता न करो, वह मेरी तरह फकीर नहीं होगा।'

शब्दों की थाह पाने के लिए वह रतिनाथ की ओर देखती रही। उसकी दृष्टि में राग और विराग दोनो ही थे।

'तो फिर आपकी स्वीकृति है ?'

'उसके पिता की स्वीकृति है या नहीं ?'

'वह तो कहते हैं कि मैया से पूछो।'

'तब तो तुम रणधीर के कहने से आई हो।'

'ऐसी उल्टी बातें न करो। मुझे तो अच्छा लगता है; तुम्हारी राय क्या है ?'

'दोनो एक-दूसरे को जरूर चाहते हैं, लेकिन कितने प्रेम में हैं, इसे कौन नाप सकता है ?'

'कोई नहीं। अच्छा, अब मेहरबानी करके गर्म मफलर कानों से लपेट लो, नहीं तो सर्दी लग जायेगी।'

'अच्छी बात है; लपेट लूंगा। और कोई हुक्म है ?' इतना कहकर उसने जम्हाई ली और उठा।

'बस, इतना ही मान लेना। कल जल्दी आओ तो अच्छा। आज तो ठीक डेढ़ बजे आये थे। महात्मा क्या ऐसे ही होते हैं ?'

'महात्मा अब सुधर जायेगा, जाओ।'

माया चली गई। रतिनाथ भी सोने की तैयारी करने लगा।

४५ : विवाह की धूमधाम

शीतकाल समाप्त होने लगा। पिछले दो-तीन महीने से सारे कुमायूँ प्रदेश में 'महा-रात्रि' का प्रचार हो रहा था। उसका प्रभाव उत्तर प्रदेश, पंजाब और बंगाल तक फैल चला था।

मार्था, आइलीन और बेसल के अतिरिक्त दूसरे सदस्यों में भी प्रचुर उत्साह था। रंतिनाथ ने रानीखेत, अलमोड़ा, कौसानी, भाभर और आसपास के प्रदेश में घूमकर लोगों में उत्साह और प्रेम उत्पन्न कर दिया था। लैम्बर्ट और कर्नल भी लगनपूर्वक कार्य कर रहे थे। प्रेमवल्लभ के कारण रोहिणी भी भाग ले रही थी। माया को रंतिनाथ की व्यक्तिगत सार-सँभाल से ही अवकाश नहीं था। रणधीर ने स्वेच्छापूर्वक अपनी आय का दसवाँ भाग मंडल को देने का निर्णय किया था।

छोटे-बड़े जमींदार, व्यापारी तथा अन्य लोग भी आकर्षित हुए और आमदनी बढ़ने लगी।

एक बार रंतिनाथ अष्टभुजा के दर्शनार्थ गया; उस समय माया साथ थी। प्रेम और रोहिणी भी गये थे। जब प्रेमवल्लभ ने अपने उस चमत्कारपूर्ण अनुभव की बात कही तो माया को आश्चर्य हुआ, किन्तु रंतिनाथ हँसने लगा।

'याद है माया, उस दिन मैंने लन्दन में तुमसे आरती उतारने को कहा था?'

'हाँ; और तुम एकदम समाधि में लीन हो गये थे।'

'उस समय मेरे चित्त का सम्पूर्ण प्रवाह बचपन के इस स्थान की ओर हो गया था। प्रेम ने जो दृश्य देखा वह मेरी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ था।'

'ऐसा भी हो सकता है ताऊजी?'

'होता है और हुआ था। ऋषि विश्वामित्र ऐसी अनेक सृष्टियाँ उत्पन्न कर देते थे; तो क्या तेरा ताऊ एक छोटा-सा दृश्य भी खड़ा नहीं कर सकता!'

वहाँ से लौटते समय वे लोग रात-भर कौसानी में रहे। आइलीन और लैम्बर्ट भी साथ थे। प्रातःकाल वह नन्दा देवी पर दृष्टि लगाये ध्यान में बैठा था कि आइलीन ने समीप आकर कहा—जब मैं यहाँ पहली बार आई तब मुझे विचित्र अनुभव हुए थे। ऐसा लग रहा था मानो तुम यहीं हो।

'वातावरण में शब्दों और विचारों की लहरें घूमती रहती हैं। पहले मैं इसी स्थान पर उपासना कर चुका हूँ।'

'ऐसा ही अनुभव मुझे उस मन्दिर में भी हुआ था।'

'वहाँ भी मैंने बचपन में पूजा की है। हृदय में विद्युत् होती है जो वातावरण को संस्पृश्य करती है?'

'सभी को ऐसा अनुभव होता है?'

'जैसा जिसका डायनुमा।'

कौसानी से सब नैनीताल आये। 'महारात्रि' और 'गूढ़ज्ञान' का कार्य जोर-शोर से चलने लगा। निवृत्त अँग्रेज और भारतीय उसमें शामिल हो गये। जेकब, रोडनी, मेगी, जेसिका, रॉबर्ट—सभी के पत्र और तार हमेशा आते रहते थे। वहाँ का कार्य भी अच्छी तरह चल रहा था।

इधर रोहिणी और प्रेम के हृदय पूरी तरह मिल गये थे। सगाई पक्की हुई और चैत्र मास में विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाया गया। श्रीराज भी लन्दन से आनेवाला था।

'क्यों, यहाँ आने से लाभ हुआ न?' एक दिन रंतिनाथ ने रोहिणी से विनोदपूर्वक कहा।

'क्यों नहीं ताऊजी!'

'वहाँ रहती तो प्रेम मिल सकता था?'

'नहीं; लेकिन कोई दूसरा प्रेम मिल जाता।'

'लेकिन वह इसकी बराबरी कर पाता?'

'यह तो सच है।'

माया का विचार था कि विवाह धूमधाम से हो; रणधीर सादगी के पक्ष में था।

'पूछो भैया से; उन्हें तो सादगी पसन्द है।' रणधीर ने कहा।

'पूछ लिया उनसे। वह तो शंकर भगवान हैं, उन्हें भभूत लगाकर बैठ रहने दो। मेरी बेटी का विवाह धूमधाम से होगा।'

रात में जब वह दूध लेकर गई तो रंतिनाथ आग के सामने ध्यानावस्थित बैठा था। माया ने दूध का प्याला आगे बढ़ाया। रंतिनाथ ने उसकी ओर देखा।

'माया, तुम मेरा कितना ध्यान रखती हो!'

'दूसरा और कौन है?'

'रोहिणी से विवाह का समय निकट आ रहा है। धूमधाम से विवाह करना।'

माया चौंकी।

'आपके भाई तो कहते हैं कि आपको धूमधाम अच्छी नहीं लगती।'

'तुम दोनो को दुनिया में रहना है, मुझे नहीं रहना है। तुम लोग धूमधाम क्यों न करो।'

'तो क्या आप इसी कमरे में बैठे रहेंगे? यह भूलने से कैसे काम चलेगा कि विवाह आपके घर है।'

'मेरा घर तो सारा संसार है माया! लेकिन मैं विवाह में जरूर आऊँगा।'

पन्द्रह दिन बीत गये। श्रीराज लन्दन से आ गया। चैत्र लगते ही विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गईं और धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। बड़ी-बड़ी पार्टियाँ हुईं, जिनमें राजा-महाराजा और हाकिमों तथा रईसों ने भाग लिया। रंतिनाथ हर समय उपस्थित रहा और साथ ही उसकी मंडली भी। उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई थी, इसलिए स्वागत उल्टे मेजबान का ही हो रहा था।

रंतिनाथ ने भी सभी मेहमानों का खूब आदर-मान किया। रघुवीर पीछे रहता था; माया और रंतिनाथ ही सब-कुछ करते थे। मार्था, आइलीन, बेसल—सब अपना समझकर काम में जुट गये थे। रंतिनाथ बिलकुल सादी धोती और कुरता ही पहने रहा। इस सम्बन्ध में उसने माया की कोई बात न मानी। गवर्नर ने बड़े सम्मानपूर्वक उससे बातचीत की। पुराने परिचय फिर ताजे हुए। जो भी मिलने आता आदर-मिश्रित आश्चर्य से उसे देखता था।

रोहिणी को विदा करते समय उसने खूब दुलार किया। रोती हुई माया को सान्त्वना दी और काफी रात तक उसकी पीठ पर हाथ फेरता रहा। पुराने नौकर राजा भैया के आने से प्रसन्न थे। रंतिनाथ ने पहचान-पहचानकर सब की पीठ ठोकी। रतनसिंह भी आया, जो साधु बनकर 'अघोरानन्द' हो गया था। पुराने सगे-सम्बन्धियों को उसने एक-एक करके याद किया और सबके कुशल-समाचार पूछे। उस दिन वर्षों बाद उसने मिष्ठान्न खाया और सारे मेहमानों को आग्रह-पूर्वक खिलाने के लिए घूमता रहा। वर-पक्ष का उसने उचित सम्मान किया और माया की इच्छानुसार सब को भेंट-सौगात दी। माया ने सारा कार्य उसी के हाथों सम्पन्न करवाया।

'अब तो तुम सन्तुष्ट हो न?' विवाहोत्सव समाप्त होने पर उसने माया से पूछा।

'जी हाँ। आपने मुझे सेवा का बदला दे दिया।'

'अच्छा, तो अब मैं अपने स्थान पर चलूँ?'

'मैं दूध लेकर आऊँगी।'

'थक गई हो; व्यर्थ परेशान मत होओ।'

'प्रेम में परेशानी नहीं होती।'

सुनकर, हँसकर वह चला गया।

पिछले कुछ दिनों से वह आइलीन को एकान्त में गूढ़ ज्ञान समझाता था। आइलीन आकर बैठी थी।

'आइलीन, कैसा लगता है संसार ?'

'आप हैं इसलिए भरा हुआ।'

'हम लोग तो सदा साथ ही हैं।'

'नाथ ! प्रेम तो मैंने आप में ही देखा; लैम्बर्ट के प्रति तो केवल भावुकता।'

'आइलीन ! मुझमें अर्थात् मेरी इच्छा-अनिच्छा में या क्षण-क्षण जीर्ण होते हुए मेरे इस शरीर में ?'

'आपकी प्रत्येक वस्तु में, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म।'

'हम कभी पृथक् हैं ही नहीं आइलीन, साथ ही हैं। महारात्रि को अमर करने के लिए साथ ही हैं। देह की उत्पत्ति के लिए साथ नहीं हैं, किन्तु विशिष्ट चेतना की उत्पत्ति के लिए साथ हैं और रहेंगे।'

दोनो बातें कर रहे थे कि मार्था आ पहुँची। वह रात्रि-पाठशाला चलाने गई थी।

'आओ मार्था, आओ। तुम और आइलीन मेरे दोनो ओर बैठो। मैं तुम्हें अपनी बाँहों में भरकर बैठूँ। तुम दोनो मेरी शक्तियाँ हो। माया भी मेरी शक्ति है। तुम्हारा प्रेम ही मेरा जीवन है। हमारा मिलन देह की उत्पत्ति के लिए नहीं, किन्तु चेतन-तत्व की उपलब्धि के लिए है। तुम्हारे अंगों में चेतना है इसलिए अपना मिलन है। मैं तुम्हारी शक्ति लूटने आया हूँ।'

मार्था और आइलीन के कपोल रंतिनाथ के कन्धों से लगे थे।

'मैं तो आपको ही अपना चैतन्य मानती हूँ !' मार्था ने धीरे-से कहा।

'यही तो विशेषता है ! जो आधार है वह अपने को निराधार मानता है। वास्तव में देखा जाये तो तुम्हारे बिना मैं स्वयं मृत हूँ।'

माया दूध का प्याला लेकर आ पहुँची। उसे तीनों की पीठ दिखाई दी। दो स्त्रियों को आराम से रंतिनाथ की बगलों में बैठा देख उसे क्रोध आया। उसने गला खँखारा।

'आओ माया, आओ! तुम्हारी ही कमी थी।' उसने मुँह फेरे बिना उसी स्थिति में कहा। माया क्रोध में भरी सामने आई और दूध का प्याला लेकर खड़ी रही।

'आओ दूध! बोलो, कहाँ बैठोगी? एक ही स्थान बाकी है—मेरी गोद।'

माया बैठी नहीं, किन्तु कुछ क्रोध और कुछ हर्ष से देखती खड़ी रही।

'माया! मैंने कब से कहा है कि मेरी तीन शक्तियाँ हैं। दो मेरे पास बैठी हैं और तीसरी बैठने से इनकार कर रही है। मैं नहीं डरता, लेकिन शक्ति तुमसे डर रही है। माया, तुम मेरी प्रथम शक्ति हो; तुम मेरी जननी हो। मैं तुम्हारी गोद में खेला हूँ; अब तुम मेरी गोद में बैठो।'

रंतिनाथ के नेत्रों से प्रकाश की किरणें फूटने लगीं। माया की ओर देखता हुआ वह साक्षात् शंकर प्रतीत हो रहा था। माया धीरे-धीरे उसके पास आई। उसका चेहरा खिल उठा। उसने रंतिनाथ के गले में दोनो हाथ डाल दिये और निःसंकोच उसकी गोद में बैठकर उसे देखने लगी।

'तुम किसे देख रही हो माया! मेरे हृदय की ग्रंथियाँ टूट गई हैं। मैं अमर हूँ। सत्व, रजस्, तमस् का मेरे हृदय में अभाव हो गया है; मैं चैतन्य का सागर हूँ।'

तीनों नारियाँ उसे ममतापूर्वक देखती रहीं।

'अब तो सुनाओ अपनी कहानी।' मार्था ने प्रार्थना की।

'हाँ, अब तो जरूर सुनाओ।' आइलीन ने आग्रह किया।

रंतिनाथ ने माया की ओर देखा।

'सुनाओ।' अत्यन्त कोमल स्वर में वह भी बोली।

'मार्था, जाओ, वह गुप्त पुस्तक ले आओ।' रंतिनाथ ने मार्था से कहा।

मार्था अन्दर गई और पुस्तक ले आई।

'आइलीन, दरवाज़ा बन्द कर दो और मार्था, तुम पढ़ो।'

आइलीन ने दरवाज़ा बन्द किया और मार्था उस पुस्तक पर लिपटा हुआ आवरण खोलने लगी। पुस्तक रंतिनाथ के हाथ की लिखी हुई थी।

'यह कहानी तुम तीनों के लिए है। दूसरों से न कहना।'

'तो मैं प्रारम्भ करूँ?' मार्था ने पूछा।

'करो।' आइलीन ने कहा।

'हाँ-हाँ।' माया ने भी सम्मति दी।

४६ : धर्मवीर

यह कहानी रतिनाथ की नहीं, धर्मवीर की है।

धर्मवीर के पिता उत्तर प्रदेश के एक बड़े जागीरदार थे। उनका नाम था मंगलसिंह। उनकी जागीर तराई के उत्तर में, मुख्यतः भाभर जिले में थी। उसके सिवा अलमोड़ा और नैनीताल जिलों में भी उनकी जमीनें थीं। उत्तर प्रदेश के चार-पाँच बड़े जागीरदारों में उनकी गणना होती थी।

मंगलसिंह स्वभाव के तेज़, शौकीन और रोबीले आदमी थे। शिकार खेलने में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। खान-पान का भी उन्हें बड़ा शौक था, इसलिए गवर्नर तथा बड़े-बड़े अफसरों को बार-बार शिकार का निमंत्रण देकर विशाल पार्टियों का आयोजन करते रहते थे।

जागीर की आमदनी लाखों की थी और मंगलसिंह का खर्च भी उतना ही था। नाच-मुजरे होते, विलायत की यात्राएँ होतीं, बार-बार नई-नई मोटरें आतीं, फर्नीचर आता, नये-नये घोड़े आते और नये कुत्ते भी खरीदे जाते।

मंगलसिंह की दो पत्नियाँ थीं। बड़ी क्षेमकुँवर और छोटी राजकुँवर। उनकी तीन-चार उपपत्नियाँ भी थीं, जो लखनऊ और इलाहाबाद में रहती थीं। मंगलसिंह वर्ष का अधिकांश लखनऊ या इलाहाबाद में ही बिताते थे। बड़े जागीरदार थे इसलिए गवर्नर के दरबारों और पार्टियों में भी भाग लेते थे।

मंगलसिंह देवी के परमभक्त थे। वे सच्चे हृदय से माताजी की भक्ति करते थे। यों भी धार्मिक और परोपकारी थे। असत्य से उन्हें अरुचि थी, न्याय के पक्षपाती थे; हृदय के साफ, सरल और अत्यन्त भावुक थे। क्रोध था, किन्तु साथ ही दया भी थी।

खर्च भारी होने से लाखों की आमदनी भी उन्हें कम पड़ती थी। कभी-कभी बैंकों के कर्जदार बन जाते थे। किसानों के प्रति क्रूर नहीं थे, फिर भी लगान कम नहीं कर सकते थे, क्योंकि खर्च कम होने पर ही वह सम्भव था।

संक्षेप में कहा जाये तो उनकी दार्शनिकता ग्रहण की सर्वमान्य दार्शनिकता

थी—त्याग की नहीं। उनकी उदारता त्याग की दार्शनिकता से नहीं, किन्तु 'मेरे पास बहुत है,' इस अभिमान से उत्पन्न हुई थी। इसी लिए उनका औदार्य जीवन के निर्माण में उपयोगी नहीं था।

क्षेमकुँवर ने जब पुत्र को जन्म दिया तो जागीरदार साहब ने पैसा पानी की तरह बहाकर उत्सव मनाया। रियासत का उत्तराधिकारी जन्म ले और रागरंग तथा जलसे न हों तो रियासत की शोभा ही क्या! वह आनन्द प्रकृत था, निर्दोष था किन्तु किसानों के लिए वह भयंकर भार हो गया। उस खर्च की पूर्ति के लिए एक अतिरिक्त कर लगाना पड़ा। बालक का नाम रखा गया धर्मवीर।

उसके ठीक डेढ़ वर्ष बाद रानी राजकुँवर के भी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रखा गया रणधीर। उस समय भी उत्सव तो मनाया गया, किन्तु धर्मवीर के जन्मोत्सव-जैसा नहीं।

धर्मवीर और रणधीर बढ़ रहे थे, लाड़-प्यार से उनका लालन-पालन हो रहा था। किसी बात की कमी नहीं थी।

क्षेमकुँवर का स्वभाव ममतामय किन्तु तेज़ था। राजकुँवर भोली और विनम्र थी। क्षेमकुँवर के मन में यह अभिमान था कि उनके पुत्र की बराबरी ही कौन कर सकता है! रणधीर को वह लाड़-प्यार करती थीं अवश्य, लेकिन कुछ भी हो, आखिर तो जीगारदार का छोटा भाई ही बनेगा! छोटा बनकर पैदा हुआ और छोटा ही रहेगा, ऐसा भाव बार-बार उनके मन में आ जाता था।

जब मैं कुछ समझदार हुआ तो माँ से कहने लगा कि डेढ़ वर्ष बाद दुनिया में आकर रणधीर ने ऐसा कौन-सा अपराध किया जो तुम उससे ऐसा बरताव करती हो! माँ कुछ नहीं बोलती। राजकुँवर माँ मुझे रणधीर जितना ही प्यार करती थीं। उनके मन में समानता थी—वह बहुत ही उदाराशय महिला थीं।

रणधीर अल्पभाषी, शान्त और सौम्य था। बिलकुल राजकुँवर माँ का अवतार! उदार भी बहुत था। न जाने क्यों, वह मुझे प्राणों से भी प्यारा लगता था। वह जो भी चाहता मैं उसे देता था; और जो न चाहता, न माँगता वह भी खुशी-खुशी दे देता था। कोई उसकी जरा भी बुराई करता तो मुझे बड़ा दुःख होता था।

मैं ऊधमी, क्रोधी और कटुभाषी था। उद्दण्डता में बड़े-बड़े अनर्थ कर बैठता था। सामनेवाले के सुख-दुःख का ध्यान ही मुझे नहीं रहता था। मुझे आवेश तीव्र

गति से आता और उसी गति से शान्त भी हो जाता था।

पिता के लिए तो हम दोनो पुत्र एक-समान और प्रिय थे। उन्होंने हमें अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने की व्यवस्था की। अँग्रेज शिक्षक रखे गये। निशाना साधने और गोली चलाने की शिक्षा स्वयं पिताजी देते थे। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं अच्छा निशानेबाज था। कुछ लोग तो यहाँ तक मानते थे कि पूरे उत्तर प्रदेश में मेरे-जैसा निशानेबाज कोई नहीं था। एक बार मुझमें और पिताजी में प्रतियोगिता हुई और मैं जीता। रणधीर भी अच्छा निशानेबाज था, किन्तु उसमें एकाग्रता नहीं थी। घुड़सवारी का भी मुझे बड़ा शौक था; उसमें भी कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता था। रणधीर भी अच्छा घुड़सवार था।

मेरी माँ धार्मिक स्वभाव की थीं। माता जगदम्बा की वह अनन्य भक्त थीं। अष्टभुजा देवी की एक मूर्ति वह सदा साथ रखती थीं। जब मैं पाँच वर्ष का था तभी से माँ के साथ पूजा में बैठने लगा था। मुख्यतः आरती और प्रसाद के समय तो अवश्य उपस्थित रहता था। मुझे आज भी याद है कि जब माँ देवी का स्तोत्र पढ़तीं और आरती उतारतीं तो मैं आँखें बन्द करके माताजी का ध्यान किया करता था। बालकल्पना में तल्लीन होकर मैं ऊपर-ही-ऊपर उठता जाता था। एक सुन्दर प्रकाशवान सृष्टि उत्पन्न हो जाती थी और मानो माताजगदम्बा मेरा सिर अपनी छाती से लगा लेती थीं।

तभी से मुझे उस मनःसृष्टि के प्रति आकर्षण हो गया। मैं माँ से कहता तो वह हँसतीं और मेरे गाल चूमकर प्यार करतीं। जब मैं आठ वर्ष का था तब एक बार पूजा में बैठा-बैठा अकड़ गया—बेहोश हो गया। माँ एकदम घबरा गईं और जब मुझे होश आया तो याद है कि मैं बिस्तर में पड़ा था और मेरे सिर तथा पाँवों में घी की मालिश की जा रही थी।

'यह क्या कर रही हो माँ!' मैंने पूछा।

'तुझे नजर लग गई है बेटा।' ऐसा कहकर माँ ने मेरी नजर उतारी और मनौतियाँ भी मानीं।

फिर जब-जब मैं मन्दिर में जाता तो माँ मुझे आँखें मूँदने से मना करतीं। लेकिन मैं चिढ़ता था और माँ की नजर बचाकर आँखें बन्द कर लेता था। फिर वही मनःसृष्टि उत्पन्न हो जाती और माताजी प्यार करने दौड़ी आती थीं।

एक रात मैं और माँ लेटे-लेटे बातें कर रहे थे। मैंने पूछा—तुम मुझे मन्दिर में आँखें बन्द क्यों नहीं करने देती माँ ?

'तू सो जाता है बेटा, तुझे भान नहीं रहता।'

'मैं सोता नहीं हूँ; मुझे माताजी दिखाई देती हैं।'

'माताजी तो जब आँखें खुली हों तब भी दिखती हैं।'

'उस समय तो यह सब दिखता है। तुम्हें भी माताजी दिखती हैं ?'

माँ कुछ न बोलतीं। मैं चिन्तित हो जाता कि रोज रात को सोता हूँ फिर भी माताजी दिखाई नहीं देतीं और मन्दिर में आँखें बन्द करते ही दिखाई देती हैं, यह सब क्या है ?

लगभग उन्हीं दिनों हम सब अलमोड़ा रहने गये। एक दिन माँ मुझे अष्ट-भुजा के मन्दिर में ले गईं। साथ में रतनसिंह नाम का हमारा साईस भी था। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद मैंने माताजी की कल्पना में आँखें बन्द कर लीं। आरती हो रही थी; घंटी की ध्वनि मेरे हृदय को गुँजा रही थी। सहसा मैं किन्हीं विचित्र रंगों की सृष्टि में खो गया। धीरे-धीरे वह दिव्य मूर्ति आगे बढ़ी और उसने मुझे अपनी छाती से लगा लिया; मेरे मुँह पर चुम्बनों की झड़ी लगा दी।

बाद में मुझे बताया गया कि मैं गिर पड़ा था, बेहोश हो गया था और मेरे मुँह पर पसीना आ गया था। मुझे घर ले जाकर बिस्तर में लिटाया गया था। मैं लेटे-लेटे कुछ बड़बड़ाता रहा था। एक विद्वान ब्राह्मण पुरोहित को बुलाया गया और वह यह जानकर चौंक उठे थे कि मैं वेद की ऋचाएँ बोल रहा था। चार-पाँच दिन तक मैं चेतना, अर्द्ध-चेतना और सुषुप्ति की दशा में चक्कर काटता रहा। पुरोहित के कथनानुसार उस दिन मैं बार-बार ईशावास्य उपनिषद् का पाठ करता था।

आज भी धुँधला-सा स्मरण है कि सम्पूर्ण ईशावास्य उपनिषद् मुझे स्वयं माता जगदम्बा ने प्यार करते-करते सिखलाया था। सब मानते थे कि मैं अचेत था, किन्तु माताजी उस समय मुझे पढ़ा रही थीं। यह मेरी भ्रान्ति नहीं, इसे मैंने स्वयं अपनी इस कहानी में स्वीकार किया है।

बस, परदा गिरता है। मेरे माता-पिता चौंक उठते हैं। अँग्रेज डॉक्टर और सलाहकार उनसे कहते हैं कि अगर लड़के को बचाना है तो इस वातावरण से बहुत दूर ले जाना पड़ेगा। लड़का अत्यन्त भावुक, अस्थिरचित्त और कल्पना-प्रवण है।

उसकी शक्ति को नियंत्रित करके मोड़ना पड़ेगा। पिताजी तैयार हो गये; माँ ने भी टूटते-सकुचाते हृदय से स्वीकृति दे दी।

नौ वर्ष की उम्र में मुझे इंग्लैण्ड जाना पड़ा। मेरे साथ दो अँग्रेजों को शिक्षक और संरक्षक के रूप में भेजा गया। माँ फूट-फूटकर रो रही थीं; मैं भी जी भरकर रोया। मैंने कहा कि वह मूर्ति मुझे अपने साथ रखने दो; लेकिन किसी ने मेरी बात न मानी। मैं खूब रोया। केवल यही सन्तोष था कि पिताजी और माँ मुझे भेजने के लिए बम्बई तक साथ आ रहे थे।

बम्बई से जब स्टीमर रवाना हुआ तो मैं रेलिंग के पास खड़ा अपनी माँ और रणधीर को देख-देखकर रो रहा था। माँ और रणधीर भी खूब रो रहे थे। बेचारा रतनसिंह भी खूब रोया। स्टीमर धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया और मेरी माँ आँखों से ओझल हो गई।

मेरे इंग्लैण्ड पहुँचने के दो-तीन महीने बाद ही माँ सदा के लिए इस दुनिया से चली गई। लेकिन उस दुर्घटना से मुझे अनभिज्ञ रखा गया। मैं माँ को अपनी अबोध शैली में पत्र लिखता ही रहा। पिताजी उन पत्रों का उत्तर देते और लिखते थे कि माँ मजे में हैं और तुम्हें खूब-खूब प्यार भेजती हैं।

मुझे पब्लिक स्कूल में दाखिल कराया गया। मेरी स्मरणशक्ति तेज थी। कोई भी पाठ एक ही बार सुनकर या पढ़कर मुझे मुखाग्र हो जाता था।

प्रारम्भ में अपने संरक्षकों के साथ मैं हेमस्टेड के एक मकान में रहने लगा। हमने मोटर भी रखी थी और जब जी चाहे घूमने जाते थे। माँ की मृत्यु के बाद मेरे संरक्षक मुझे अत्यन्त प्यार करने लगे थे।

जब मेरी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हो गई तो मुझे हैरो में दाखिल किया गया। मेरे संरक्षक मेरी देख-रेख करते थे। मैं सोचता था कि छुट्टियों में मुझे घर भेजा जायेगा, लेकिन मेरी वह मनोकामना सफल न हुई। मुझसे कहा गया कि मेरे माता-पिता यहीं आनेवाले हैं। रणधीर और उसकी माँ भी आयेगी। मुझे कुछ शान्ति हुई। सोचा करता, माँ आयेंगी तो खूब प्यार करेंगी।

और आखिर एक दिन सब आ गये। लेकिन उनके साथ माँ नहीं थीं। मैंने पिताजी से बार-बार पूछा कि माँ कहाँ है? किन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया। मैंने उनकी आँखों से आँसू टपकते देखे। राजकुँवर माँ ने मुझे एकदम छाती से लगा

लिया और बोलीं, 'मुझे नहीं पहिचानता बेटा! मैं ही तेरी माँ हूँ।' इतना कहते-कहते वह रो पड़ीं। डेढ़ महीने तक राज माँ ने मुझे प्राणों की भाँति रखा।

माँ की याद आती थी, किन्तु राज माँ का प्यार उसकी पूर्ति कर देता था। राज माँ उतनी धार्मिक नहीं थीं, उन्हें नये-नये कपड़े पहिनने और घूमने का भी शौक था। उनका हृदय कोमल था। मुझे एकाकीपन का अनुभव न हो इसलिए उन्होंने एक वर्ष इंग्लैण्ड में रहने का निश्चय किया। पिताजी ने भी उनकी बात मान ली। हर शनिवार को मैं घर आ जाता और रविवार तक राज माँ के साथ रहता था।

कुछ दिनों बाद रणधीर भी हैरो में दाखिल हो गया। पढ़ने में वह साधारण था, लेकिन क्रिकेट अच्छा खेलता था। एक वर्ष बाद हम दोनो को छोड़कर राज माँ हिन्दुस्तान लौट गईं। हम फिर अकेले रह गये। माँ को छोड़ते समय मुझे जितना दुःख हुआ था उतना ही राज माँ के जाने पर हुआ। आश्चर्य तो यह है कि रणधीर जरा भी नहीं रोया था!

दूसरे वर्ष की छुट्टियों में हम दोनो भाई घर आये और तीन महीने रहे। उन दिनों मैंने बन्दूक चलाने का खूब अभ्यास कर लिया था। घर आने पर माँ की बहुत याद आई। एक दिन उस मन्दिर में जाकर मैं रो पड़ा। आँखें बन्द कर लीं, किन्तु माताजी जाने क्यों दिखाई नहीं दीं। मैंने भी इस पर कोई विचार नहीं किया।

छुट्टियों के बाद हम दोनो भाई फिर इंग्लैण्ड चले गये। अब हम बिलकुल अँग्रेजों की तरह हो गये थे। भाषा, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, चाल-ढाल सब अँग्रेजी। वह जमाना ही अँग्रेजी का था। अँग्रेजी शिष्टाचार को ही सभ्यता और संस्कृति का लक्षण समझा जाता था, जो शासकों के अन्धानुकरण के अतिरिक्त और कुछ न था।

मैंने सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास की और इतिहास लेकर यूनीवर्सिटी में दाखिल हुआ।

उसी वर्ष राज माँ और पिताजी इंग्लैण्ड आये। मुझे याद है कि उस वर्ष हमने यूरोप-यात्रा की थी। मैं इंग्लैण्ड का निवासी ही हो गया था; हिन्दुस्तान आने की कोई इच्छा नहीं होती थी। कई अँग्रेज-परिवारों से मेरा अच्छा सम्बन्ध हो गया था। रणधीर संकोची और एकान्तप्रिय था, लेकिन मैं झट मेल-जोल कर लेता था।

जब मैं बी० ए० के अन्तिम वर्ष में था तो रणधीर ने सीनियर कैम्ब्रिज पास किया। उस समय मेरी उम्र करीब बीस वर्ष और रणधीर की अठारह वर्ष थी। उन्हीं दिनों उसका स्वास्थ्य बिगड़ा और डॉक्टरों की सलाह से उसे हिन्दुस्तान लौटना पड़ा।

छः-सात महीने बाद मैंने प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया और तीन-चार मित्रों के साथ पेरिस घूमने चला गया। मुझे कहना चाहिए कि मैं शौकीन और मस्त तबीयत का आदमी था। दो-तीन लड़कियों से मेरी गाढ़ मैत्री हो गई थी, किन्तु मैं नहीं समझता कि उनमें से किसी से मेरा प्रेम हुआ हो। और न यही मानने का कोई कारण है कि वे मुझसे प्रेम करने लगी थीं।

उन्हीं दिनों मेरे जीवन की एक अत्यन्त रोमांचक तथा महत्वपूर्ण घटना घटी।

मैं अपने अँग्रेज मित्रों के साथ वर्साई का महल देखने और पिकनिक पर जाने के लिए निकला था। गर्मी की एक खुशनुमा शाम को मैं अपने मित्रों के साथ घूम रहा था कि वहीं एक भारतीय कुटुम्ब घूमता दिखाई दिया, जिसमें पति-पत्नी और एक जवान लड़की थी। लड़की अत्यन्त सुन्दर तथा सुडौल थी। उम्र होगी करीब अठारह साल। पति-पत्नी का व्यक्तित्व भी अत्यन्त आकर्षक था। उनकी उम्र चालीस से कम नहीं रही होगी।

वे लोग मेरे एकदम निकट होकर गुजरे और मेरी दृष्टि उनसे मिली। हम चार-पाँच मित्रों में मुझे याद है कि तीन लड़के और दो लड़कियाँ थीं। मेरे अतिरिक्त सब अँग्रेज थे।

उनके चेहरों पर से मैंने अनुमान लगाया कि वे लोग मुझसे मिलने और बात-चीत करने को उत्सुक थे। मुझे भी उस सुन्दर लड़की के कारण उत्कंठा हो रही थी। वह पीले रंग की रेशमी साड़ी और लाल रंग का ब्लाउज पहने थी। कितना आकर्षण था उसमें! उसकी आँखों ने मानो मुझपर जादू कर दिया था।

उन्हें देखकर मैं रुका, झुककर नमस्ते किया और फिर विनयपूर्वक मुस्कराया। वे पति-पत्नी भी वहीं खड़े हो गये और जहाँ तक मुझे याद है उस स्त्री ने पूछा था—आप कहाँ के हैं?

उन लोगों ने फाउण्टेन ब्लो के पास एक मकान किराये पर लिया था और दो-तीन महीने से वहाँ रहते थे। पति-पत्नी को हिन्दुस्तान लौटना था जब कि वह

लड़की वहीं चित्रकला सीखने के लिए रुकनेवाली थी। वे लोग पंजाब के जमींदार थे और वह लड़की उस स्त्री की बहनौतिया (बहिन की लड़की) थी। लड़की के माँ-बाप उत्तर प्रदेश के जमींदार थे।

वह अपने मौसा-मौसी के साथ फ्रेंच भाषा तथा चित्रकला सीखने के लिए यूरोप आई थी और सात-आठ महीने तक उसे होस्टल में रहना था।

उसकी फ्रेंच बड़ी शुद्ध थी। मैं भी फ्रेंच जानता था।

उसी दिन शाम को उन्होंने मुझे भोजन का निमंत्रण दिया। पृथक् होते समय वह लड़की मेरी ओर देखकर मुस्कराई—उसकी आँखों में मानो जन्मजन्मान्तर का परिचय था।

शाम को मैं ढूँढ़ता हुआ उनके घर पहुँचा। तीनों मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने मेरा खूब आदर-मान किया।

जमींदार का नाम था राजसिंह। अमृतसर की ओर के रहनेवाले वे बड़े खुश-मिजाज आदमी थे। जमींदारी बहुत बड़ी नहीं, किन्तु साधारण थी। उन्होंने मुझसे तरह-तरह की बातें कीं। सरकार को बुरा-भला कहा, आन्दोलनकारियों की कमजोरियाँ बतलाईं। देश के अन्धविश्वासों और कुरीतियों की लानत-मलामत की, बढ़ती हुई मँहगाई पर विचार व्यक्त किये। वह स्वयं एकदम आधुनिक विचारों के थे। उनके लड़के भी ऑक्सफोर्ड में पढ़ रहे थे।

पत्नी भी उनकी समवयस्क थी। देखने में सुन्दर और स्वभाव की मिलनसार थीं। नाम था प्रवीणकुमारी। उनके माता-पिता पंजाब के एक पुराने जमींदार थे। उनकी बहिन उषाकुमारी का विवाह उत्तर प्रदेश के एक छोटे जागीरदार से हुआ था और यह लड़की उन्हीं की पुत्री थी। उषाकुमारी और उनके पति पुराने तथा संकुचित विचारों के आदमी थे, किन्तु प्रवीणकुमारी के समझाने से वे अपनी पुत्री को इंग्लैण्ड भेजने के लिए तैयार हो गये थे। प्रवीणकुमारी की इच्छा थी कि बहिन की लड़की भी स्वयं उनके बच्चों की भाँति उच्च शिक्षा प्राप्त करे। उनकी एक पुत्री फ्रांस में पढ़ाई समाप्त करके हिन्दुस्तान लौट चुकी थी और उसने एक बंगाली जमींदार के पुत्र के साथ विवाह भी कर लिया था।

लड़की ने मुझे अपने चित्र बताये। उनमें रंगों का अद्भुत सामंजस्य था। विषय कल्पनापूर्ण थे। उन दिनों 'इम्प्रेशनिस्ट स्कूल' का बोलबाला था और वह लड़की

उसी प्रणाली में अपनी कला का विकास कर रही थी। उसके बोलने का ढंग भी अनोखा था। अंग-संचालन बड़ा ही लालित्यपूर्ण था। उसके शरीर की बनावट ग्रीक देवी एफ्रोडाइट-जैसी थी। देखते ही मुझे एफ्रोडाइट का आभास होता था। मेरी हृदय-वीणा के तार उसे देखते ही झंकृत हो उठते थे। वह सुन्दरता का साक्षात् पुंज ही थी। उतनी कोमलता, वैसी मादकता, उतना माधुर्य, वैसी प्रेम-भरी चितवन और उतना पल्लवित यौवन मैंने कभी नहीं देखा था।

हमने मान लिया कि हम एक होने के लिए ही दुनिया में आये थे; साथ रहने के लिए ही हमारा सृजन हुआ था; एक-दूसरे के पंखों में छिप जाने के लिए ही हम उड़ आये थे; प्रेम का हृदयमेघ करने के लिए ही हमें जन्म दिया गया था।

उसमें मैंने अपने जीवन का प्रभात देखा। उसमें मैंने अपने सुख का आइ-फील टावर देखा। कितनी सुकोमल, सहृदय, संवेदना-भरी थी उसकी दृष्टि! हृदय-पाटल की प्रत्येक पँखुरी पर जब उसकी आँखों का अमृत बरस जाता, तो कितनी शान्ति का अनुभव होता, सुख की कैसी निद्रा आती और अन्तर में आनन्द का कैसा स्रोत बहने लगता था! और उसका नाम भी कितना मनोहर, सुकोमल, प्रभात की जलवायु के समान था—माया!

उस रात मैं काफी देर से अपने होटल में पहुँचा। मेरा मन माया में लगा था। बिस्तर पर लेट गया, किन्तु नींद मानो रूठ गई थी। सोचा कि बाहर घूम आऊँ। मेरा होटल 'रू द रिवोली' पर था। वहाँ से निकलकर घूमता हुआ मैं 'प्लास द ला मादलिन' की ओर आया और एक काफे में प्रवेश किया। फ्रेंच रमणियाँ किलक रही थीं; ऑर्केस्ट्रा बज रहा था। संगीत की उन लहरियों में मानो माया तैर रही थी। मैं बाहर निकला। कहीं जी नहीं लगता था। 'प्लास द ला कॉन्कर्ड' होकर 'शाँ से लीजे' की ओर चलने लगा। वेश्याएँ घूम रही थीं, लेकिन मुझे उनकी कामना नहीं थी। उन्हें भी मेरी नहीं, मेरे पैसे की कामना थी; इसलिए पास आ-आकर खबर पूछ लेती थीं। चलते-चलते मैं एतवाल पहुँचा। विशाल दीपक जल रहा था।

'दीपक, तू किसे प्रकाशित कर रहा है?' मैंने दीपक से पूछा। दीपक निरुत्तर रहा। मैं लौट पड़ा। थक गया था। टैक्सी ली और 'मोंमात्र' चला आया। नाच-रंग और भोगविलास हो रहे थे। नाइट-क्लब खचाखच भरे थे। तरुणियाँ विलास और वारुणी से निशाचरों को चक-चूर कर रही थीं। मैं एक नाइट-क्लब

उसकी देहलता पर सौन्दर्य-पिपासु टूट पड़े हैं, लेकिन जिन्होंने माया की देहलता नहीं देखी वे ही मृगजल के लिए दौड़े हैं। वहाँ से हम तुलीए बाग में गये। मेरे लिए वह सैण्डविच लायी थी; उसने मुझे सब सैण्डविचें खिला दीं।

• 'तुम नहीं खाओगी ?'

'नहीं, आज मेरा अष्टमी का व्रत है।'

• अष्टमी! मुझे माँ की याद हो आई और माताजी की भी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। उसने मेरा हाथ पकड़ा। मैं कुछ देर अचेत-सा बैठा रहा। एक विशाल बादल मुझे बिखरता दिखाई दिया और उसमें अलौकिक सृष्टि की सुनहरी उषा प्रगट हुई। धीरे-धीरे एक दिव्य नारीमूर्ति मेरे पास आई—वर्षों बाद वह मेरे पास आई थी। उसने मुझे स्नेहपूर्वक छाती से लगाया और चूमा।

जब मुझे होश आया तो वह कह रही थी कि मैं बेहोश हो गया था; तब मेरा सिर उसकी गोद में था। उसका कोमल हाथ मस्तक पर फिर रहा था। आसपास दो-तीन आदमी पानी के गिलास लिये खड़े थे। वह बोली—अब ठीक है आपकी तबियत ?

मैं न होती तो क्या हाल होता आपका ?

मैंने कोई उत्तर न दिया, किन्तु मन-ही-मन बोला कि तुम न होती तो यह कुछ होता ही क्यों ?

एक टैक्सी करके वह मुझे होटल पर लायी। टैक्सी में भी मेरा सिर उसकी गोद में था। मेरे मस्तक पर वह हाथ फेर रही थी।

मुझे सुलाकर वह शाम तक मेरे मस्तक और सिर पर हाथ फेरती रही। बार-बार पानी पिलाती और अच्छी-अच्छी बातें करती रही। यद्यपि मुझे कुछ हुआ नहीं था, फिर भी वह कह रही थी कि मेरी तबियत ठीक नहीं है। अपनी पर्स से वह कोलन वॉटर निकालती, अपने रूमाल पर थोड़ा-सा उँड़ेलती और मेरे मस्तक पर रखती रही। मेरी माँ भी ऐसा ही करती थी।

'माया, तुम मेरी माँ हो!'

वह मेरी ओर देखने लगी। उसकी दृष्टि में विषाद था। फिर वात्सल्यपूर्वक झुकी और मेरे गालों पर गरम-गरम चुम्बन बरसाने लगी।

'मेरी माँ, मेरी माँ!' कहकर मैं उसकी कमर से लिपट गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। वह भी रो पड़ी।

फिर मैं लन्दन लौट आया। माया के मौसा-मौसी भी लन्दन आये। वह लन्दन की चित्रशालाओं में घूमती रही, हम रोज मिलते थे। राजसिंह और प्रवीणकुमारी चेम्ली में रहते थे। माया रोज चित्रकला सीखने आती और हम मिलते। वह मेरे जीवन को प्रेम से भरने लगी, मेरे एकाकीपन को उसने मिटा दिया। उसकी आँखों में अबूझ भावनाएँ थीं और मेरे हृदय में अनबूझ भावनाएँ। उसकी उपस्थिति में मुझे माँ के वात्सल्य का अनुभव होता था; उस देवी सृष्टि की रचना भी वह कर देती थी। मेरे ज्ञान का द्वार अपने-आप खुलने लगा।

कभी-कभी तो माताजी मुझे स्वयं दर्शन देती थीं। उनके विचारों में मैं संसार को भूल जाता था। इतना मैं अवश्य कहूँगा कि वह मेरी मूढ़ दशा नहीं थी—मेरे अन्तर में ज्ञानशक्ति पंख फड़फड़ाती और अपने-आप वेद की ऋचाएँ स्फुरित होती थीं। एक दिन वह बैठी थी। उसी से मैंने सम्पूर्ण ईशावास्य उपनिषद् वातावरण में सुना। मैंने आँखें बन्द कर लीं; मुझे वहाँ माया नहीं, किन्तु माताजी दिखाई दीं। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया और कहने लगीं :

'सर्वत्र चेतन-तत्व व्याप्त है। जहाँ तेरी इच्छा हो वहीं मैं तेरे पास हूँ। तू अपनी इच्छा-शक्ति को दृढ़ बना। तू और मैं सदैव साथ हैं। किस लिए तड़पता है? तू मेरे हृदय से लगा है। न तो मैं मरूँगी और न तुझे मरने दूँगी।'

जब आँखें खोलीं तो मैंने देखा कि माया ने मेरा सिर अपनी छाती से लगा रखा था; उसका गाल मेरे सिर पर था।

सुख-शान्ति के मेघ बरसे। उन शब्दों ने मेरे एकाकी जीवन के अन्धकार में ज्योति जला दी। दृश्य जगत् मुझे अचेतन और व्यर्थ भासित हुआ। मेरी अनुभूति ही मेरा प्रमाण थी।

मैं आनन्द-सागर में निमग्न हो गया। माया के सहवास में आनन्द का ज्वार मेरे स्थूल अस्तित्व को विनष्ट कर देता था। मैं शरीर से पृथक् होकर चैतन्य में रमण करने लगता था।

एक शाम को हम दोनो हाइड पार्क में बैठे थे। वह मेरी ओर देखकर बोली :

'मैं तुमसे अलग नहीं रहूँगी।'

'लेकिन तुम अलग हो ही नहीं।'

'तो तुम मेरे साथ हिन्दुस्तान चलो।'

'तैयार हूँ।'

'तो अक्तूबर में चला जाये।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा। मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

लेकिन अक्तूबर में अभी दो महीने की देर थी। उस अरसे में हमने सारा यूरोप घूमने का निर्णय किया। उसने अपने मौसा-मौसी के समक्ष प्रस्ताव रखा, और वे सहृदय थे इसलिए उन्होंने स्वीकृति दे दी।

हम जर्मनी गये और वहाँ का एक-एक शहर देखा। ऑस्ट्रिया में आनन्द किया, इटली में खेले, स्विटजरलैण्ड की सैर की। हमने अबल आनन्द का अनुभव किया।

अक्तूबर लगते ही हम हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गये। मौसा-मौसी भी साथ थे।

जब स्टीमर बम्बई पहुँचा तो मेरे पिताजी, राज माँ और रणधीर बन्दरगाह पर उपस्थित थे। माया के माता-पिता भी उसे लेने आये थे।

पिताजी ने मुझे छाती से लगा लिया। राज माँ से मैं लिपट गया। रणधीर के हर्ष का पार न था। माया अपने माता-पिता से मिल रही थी।

'क्यों रणधीर, मजे में तो हो न?'

'बहुत अच्छी तरह हूँ भैया!'

'तुम कैसी हो माँ? क्या हाल हैं?' मैंने राज माँ से पूछा।

'तुझे एक खुशखबरी सुनाती हूँ बेटा! जरा इधर आ।' कहकर राज माँ मुझे कुछ दूर ले गईं।

'चार दिन पहले ही रणधीर की सगाई कर दी है। कन्या की माँ ने प्रतिज्ञा ले रखी थी, सो वचन दे दिया है। रस्म तेरे आने तक स्थगित रखी गई है और बेटा, तेरे लिए भी तीन राजकुमारियाँ खोज रखी हैं, जो तुझे पसन्द आ जाये उसी के साथ....दोनो भाइयों का विवाह एक ही साथ कर देना चाहती हूँ। रणधीर की बहू तो वही है जो तेरे साथ आई है—मानो तू ही भाई के लिए उसे ले आया! रणधीर को बहुत पसन्द है! क्यों बेटा, मैंने भूल तो नहीं की?'

मैं सुन रहा था, लेकिन कुछ बोल न सका। राज माँ का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगा। मेरे एकाकीपन में वह हाथ मेरा साथी था। मैंने मूक भाव से जगज्जननी का स्मरण किया और उन्होंने मेरे कान में कहा :

'तेनं त्यक्तेन भुंजीथा :—उसे छोड़कर तू आनन्द कर।' ईशावास्य उपनिषद् के इस मंत्र ने मेरे हृदय में उत्साह की अपूर्व लहर दौड़ा दी। मैं एकान्त में त्याग का महोत्सव मनाने लगा। मुझे माया की चिन्ता हुई, लेकिन उसका भार मैंने जगज्जननी पर छोड़ दिया।

लेकिन जब माया को पता चला तो उसने साफ इनकार कर दिया। मौसा-मौसी ने भी उसका पक्ष लिया। यह सब नाटक उस दिन बम्बई में हो रहा था, क्योंकि हमारी गाड़ी तो रात में छूटती थी। हम सब ताजमहल होटल में ठहरे थे।

वह मेरे पास आई। उसकी आँखों में आँसू थे और साथ ही धधकती अग्नि। वह अग्नि आँसुओं से नहीं बुझ रही थी।

'मैं तुम्हारे भाई से विवाह नहीं कर सकती।'

'बैठो माया, मेरी बात सुनो।' मैंने कहा और वह मेरे पास बैठ गई।

'इसमें दोष किसका है?'

'किसी का भी नहीं।'

'विधाता का ही खेल है न?'

'हाँ।'

'विधाता चतुर है या हम?'

'मैं दार्शनिकता में नहीं उतरना चाहती। मैंने तुम्हें प्यार किया है, तुम मेरे जीवन हो; तुम्हारे सिवा मैं किसी से विवाह नहीं करूँगी।'

'मैं तुम्हारा जीवन हूँ माया?'

'मैं तो यही मानती हूँ।'

'तुम मुझे बहुत प्रेम करती हो?'

'यह क्यों पूछते हो, क्या तुम्हें मालूम नहीं?' सिसकियाँ भरती हुई वह बोली।

'विवाह बड़ा है या प्रेम?'

'प्रेम और इसी लिए विवाह।'

'तुम्हारा प्रेम मेरे शरीर पर आधारित है या तुम्हारा शरीर मेरे प्रेम पर?'

'प्रेम पर ही सब-कुछ आधारित है।'

'माया, तुमने मुझे उत्तर दे दिया। मेरा प्रेम तुमसे त्याग की भिक्षा माँगता है। मेरी खातिर तुम रणधीर को समर्पित हो जाओ।'

कुछ भी बोले बिना वह मुझे देखती रही। मैं उसके निकट गया और कन्धे पकड़कर बोला—तुम साक्षात् शक्ति हो माया। जिसे जिस वस्तु की जरूरत है उसे वही वस्तु दो। कृपण न बनो। मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरी हो, फिर विषाद कैसा?

'जानते हो, तुम मुझसे क्या माँग रहे हो?' माया के शब्दों में वेदना थी।

'हाँ, प्रेम का बलिदान। मैं तुमसे भिक्षा माँग रहा हूँ, अगर योग्य समझो।'

'लेकिन मैं तो उसे चाहती नहीं।'

'अगर मैं तुम्हें इतना प्रिय हूँ तो रणधीर भी होना चाहिए। तुम रणधीर को मेरी परछाईं समझो।'

'कितनी असम्भव, अव्यावहारिक और पागलों-जैसी बात कर रहे हो तुम!'

'प्रेम वस्तु ही ऐसी है माया।'

'और यह सारे त्याग मुझे अकेले ही करने होंगे, क्यों?'

'नहीं; जब हमारे हृदय एक हैं तो फिर त्याग भी पृथक् नहीं हैं।'

'मुझे कुचल दो, मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दो! अपनी धुन के लिए जो करना हो करो। मैं तुम्हारा खिलौना हूँ, तुम्हारे वश में हूँ।'

'तुम मेरा खिलौना नहीं हो माया, मेरे हृदय की शक्ति हो, मेरी प्रियतमा हो, माता हो, सर्वस्व हो।'

उसके चले जाने के बाद मैं मनुष्यों के स्थूल तथा क्षणभंगुर सम्बन्धों का चिन्तन करता रहा। यह सम्बन्ध किस कारण बँधते और क्यों टूटते हैं—इन विचारों में लीन हो गया। किनारे बैठे हुए व्यक्ति का प्रवाह के साथ कोई सम्बन्ध हो सकता है? उस प्रवाह में अनेक वस्तुएँ बहती जाती हैं, उनका हर्ष-शोक किनारे बैठे हुए प्रेक्षक को किस लिए होना चाहिए? नदी का प्रवाह मेरा नहीं है, मैंने उसे नहीं प्रवाहित किया, नहीं मोड़ा, और न उस पर नियंत्रण किया है; तो फिर उसके साथ मेरा द्रष्टा के सिवा दूसरा क्या सम्बन्ध हो सकता है? और फिर इस स्थूल शरीर की उत्पत्ति कब, किस निमित्त से हुई तथा इसका विलय भी कब और किस निमित्त से होना है—यह भी मुझे ज्ञात नहीं है। इस देह के साथ 'मैं' कब लगा और 'तू' कब छूट गया—इसकी भी मुझे कोई खबर नहीं। फिर भी यह अच्छा, यह बुरा, यह प्रिय, यह अप्रिय, यह मेरा, यह तेरा—ऐसी जो तरंगें उठती हैं उनका कारण क्या है? मैंने निश्चय करके जाना कि चैतन्य जब सीमित हो जाता है तभी

रागात्मक वृत्तियाँ उठने लगती हैं। राग के वशीभूत होकर ही सुख-दुःख तथा हर्ष-शोक का कोलाहल मचता है। जहाँ त्यागबुद्धि है वहीं चैतन्य की विशालता है।

मैंने यह भी जान लिया कि यदि सुख और दुःख अनुभव के विषय हैं तो राग और त्याग भी अनुभव के ही विषय हैं। और यदि आचरण के बिना अनुभव नहीं होता तो फिर त्याग भी मेरे लिए आचरण का ही विषय होना चाहिए। यानी, यदि मैं त्याग नहीं कर सकता तो सुख का अनुभव भी नहीं कर सकता। मैंने समझ लिया कि मानव-देह त्याग के लिए ही है और त्याग ही सेवा है तथा सेवा ही त्याग है। यदि सेवा में अहंकार का प्रवेश हो जाये तो वह राग है। यह मेरा है—ऐसी भावना ही अहंकार है, यही चैतन्य को संकुचित-सीमित कर देती है। संसार की समुत्क्रान्ति राग से त्याग की ओर हो रही है, ऐसा मुझे दृढ़ निश्चय हो गया।

उसी समय रणधीर आ पहुँचा; उसका चेहरा उदास और मुरझाया हुआ था।

'भैया, मुझे कुछ भी मालूम नहीं था; मैं वह लड़की नहीं ले सकता।'

मैं उसकी ओर देखता रहा। शायद वह मुझे दुःखी मान रहा था। मैंने उसकी पीठ पर हाथ रखा और कहा—मेरी दी हुई वस्तु नहीं ले सकते, रणधीर?

'नहीं भैया, वह वस्तु ऐसी नहीं जो दी या ली जा सके।'

'तुम मेरे कहने से, मेरी खातिर स्वीकार कर लो रणधीर! अगर तुमने स्वेच्छा से प्रेमपूर्वक दी हुई वस्तु स्वीकार नहीं की तो मेरा दिल टूट जायेगा। माया तुमसे विवाह करेगी; तुम उसकी आज्ञा का पालन करना। बस, अब आगे न बोलना रणधीर, मुझे आनन्द से वंचित न करो।'

मेरा मन आत्म-रति में किस प्रकार और कैसे प्रवृत्त हुआ इसका विश्लेषण मैंने नहीं किया। मन की स्थिति बदल रही है, ऐसा भी कोई भान मुझे नहीं था।

मैंने माया और रणधीर को सान्त्वना दी; माता-पिता को प्रसन्नता हुई। चार-पाँच दिन रहने के बाद हम अलमोड़ा आये। माया के माता-पिता ने भी अलमोड़े में बँगला लिया। माया का मुझ पर वही स्नेह था और मेरा भी उस पर वैसा ही। मैं बार-बार विशिष्ट चेतना के प्रदेश में जाने लगा था।

एक दिन मैंने पिताजी से कहा कि मुझे एक वर्ष तक कहीं अकेला रहने दें। पिता को आश्चर्य हुआ, किन्तु वह मेरी विचित्रताओं से परिचित थे। रणधीर और माया के विवाह का समय निकट आ रहा था।

'तुम विवाह के बाद जाना, भैया !'

'मैं तुम्हारे साथ ही हूँ रणधीर ! लेकिन मुझे भीतर से आदेश मिला है, तुम आग्रह न करो।'

रणधीर समझ गया, लेकिन माया ने हठ न छोड़ी। वह एक दिन एकान्त में मुझसे मिली और कहने लगी—तुम न रहे तो मैं विवाह नहीं करूँगी। तुम जानते हो न कि तुम्हारे लिए ही यह नाटक कर रही हूँ।

'मैं पाणिग्रहण के समय आ जाऊँगा माया ! लेकिन फिर मुझे रोकना मत।'

मैंने निर्णय किया कि कौसानी जाकर एक किसान के घर में रहूँ। मेरा साईस रतनसिंह मुझसे बड़ा प्रभावित हुआ था। मेरा भक्त ही बन गया था ! उसे मुझमें जाने क्या-क्या दिखाई देता था ! उसने मेरे पैर पकड़कर प्रार्थना की कि उसे मैं अपने साथ ले जाऊँ। उसने वचन दिया कि वह सब-कुछ गुप्त रखेगा। मैं उसे साथ रखने को तैयार हो गया।

राज माँ को खबर मिलते ही वह मेरे पास दौड़ी आई और बोलीं, 'नहीं बेटा, मैं तेरी माँ हूँ; मैं तुझे नहीं जाने दूँगी। यह सब पागलपन विवाह के बाद करना। मैं तेरा विवाह करना चाहती हूँ।' यह कहकर उन्होंने मुझे राजस्थान की दो-तीन राजकुमारियों के फोटू बतलाये। 'इनमें से जो तुझे पसन्द हो उसी के साथ सगाई कर सकती हूँ, लेकिन तुझे विवाह तो करना ही होगा। मेरी इच्छा तो दोनों भाइयों का विवाह एक ही साथ करने की है।'

राज माँ के शब्दों में मातृत्व का निर्मल प्रेम टपका पड़ रहा था। मैं स्नेह-पूर्वक उनसे लिपट गया और बोला—तुम जानती हो माँ, मुझे तुमसे कितना प्यार है ? मैं तुम्हें दुःखी नहीं कर सकता। तुमसे अधिक प्यार मुझे कौन दे सकता है ? अगर तुम्हें मुझसे वास्तव में प्यार है तो आग्रह न करो।

राज माँ कुछ न बोलीं। उन्होंने मेरा मस्तक चूम लिया। मैंने देखा कि उनकी आँखों से आँसू टपक रहे थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं सादी पोशाक में थोड़े-से कपड़े और कुछ पैसे लेकर घर से निकल पड़ा। रतनसिंह मुझे रास्ते में मिला। उस समय रात के चार बजे थे; चारों ओर अन्धकार था।

चलते-चलते सूर्यास्त के समय हम कौसानी पहुँचे।

तभी से मेरा साधना-काल प्रारम्भ हुआ। रात्रि के तीन से प्रातःकाल पाँच बजे तक मैं प्राणनिरोध करता था। मेरे लिए वह कठिन न था, क्योंकि एकाग्रता मुझे सिद्ध थी। वह दिव्यमूर्ति, जिस प्रकार मुझे बचपन में दिखाई देती थी, दिखने लगी; किन्तु बाद में मात्र एक प्रकाशबिन्दु के रूप में उसके दर्शन होने लगे। वह बिन्दु भी लघु होते-होते इतना लघु हो गया कि मैं चकित हो उठा। उससे लघु और कौन-सी वस्तु हो सकती है! ज्यों-ज्यों वह बिन्दु लघु होता गया मेरी विचारधारा भी सूक्ष्म होती गई; और मानो दोनो की सूक्ष्मता में प्रतिस्पर्धा होने लगी। प्रतिस्पर्धा होती रही और उस बिन्दु में से असंख्य रंगों के असंख्य परमाणु निकलते रहे। उनका अन्त ही नहीं होता था। तीन महीने तक ऐसा ही होता रहा।

फिर एक दिन मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। बिन्दु और विचार में प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी कि सहसा मेरी छाती में, हृदय के आसपास एक धमाका-सा सुनाई दिया। कितना भयंकर घोष था! उस घोष के बाद मेरी विचारधारा बन्द हो गई। नाक, कान, आँखें, त्वचा सब मानो अलोप हो गये। तथापि मैं किसी अलौकिक प्रकार की अस्मिता से भरपूर था! इच्छा नहीं थी, मात्र अनुभव था। उस अस्मिता में से फिर एक बिन्दु प्रकट हुआ और उसी में से विचारधारा प्रारम्भ हुई।

जब मैं सामान्य अनुभव के प्रदेश में आया तब रतनसिंह मेरे सामने हाथ जोड़कर बैठा कह रहा था—बारह घण्टे हो गये भैया! कितने ही लोग आकर नमस्कार कर गये। दो-तीन साधु भी थे।

मैं कुछ न बोला। वाणी का मोह छूट गया था। पन्द्रह दिन तक मैं मौन रहा। मैंने विचार किया कि वह बिन्दु और विचार हृदय में उत्पन्न होकर हृदय में ही समा जाते हैं। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जीवन का सार हृदय के भीतर ही विद्यमान है। सारा विश्व हृदय में है, हृदय ही अन्तिम वस्तु है। मैंने हृदय की उपासना प्रारम्भ की। प्राणनिरोध से हृदय के स्नायुओं को वश में किया। स्नायुओं को वश में करके अन्तरप्रदेश पर एकाग्रतापूर्वक विचारों को प्रवाहित किया। धीरे-धीरे नाड़ीतंत्र गतिमान हुआ और मुझे स्वयं विचार करने की आवश्यता ही न रही। विचार-मात्र विद्युत-प्रवाह बन गया; हृदय स्वतंत्र चैतन्य बन गया!

बस, इससे अधिक मुझे कोई अनुभव नहीं है। इस अनुभव के पश्चात् मुझमें अकल्पित परिवर्तन हुए। मैं प्रसन्न, शान्त और निर्द्वन्द्व हो गया। मैं जिसका विचार

करता उस व्यक्ति को मेरा अनुभव होने लगता। मेरे सन्देश इसी तरह पहुँच जाते थे। मेरा मन बिलकुल स्वाधीन हो गया और मोह भी समूल नष्ट हो गया।

अपने में प्रकट हुई शक्ति का मैंने कभी स्वेच्छा से उपयोग नहीं किया। शक्ति तो अनुभव की वस्तु है, उपयोग की नहीं।

वह एक वर्ष मैंने साधना में व्यतीत किया। वचन के अनुसार मैं रणधीर और माया के विवाह में तीन घण्टे उपस्थित रहा और चुपचाप एक कोने में बैठा रहा। मैंने अपने माता-पिता को, रणधीर को और माया को सूचना दे दी थी कि मेरे आने की बात किसी से न कहें।

'अब तो सन्तुष्ट हो?' विवाह के बाद माया ने मुझसे एकान्त में पूछा।

'और मैंने भी तो अपना वचन पूरा कर दिया!' मैंने उससे कहा। वह नम्रता-पूर्वक मेरी ओर देखने लगी। रणधीर पास ही खड़ा था। दोनों को आशीर्वाद देकर, माता-पिता से मिलकर मैं पिछले द्वार से निकल गया।

ठीक एक वर्ष बाद मैं घर आया। राज माँ ने फिर मेरे विवाह की बात चलाई। मैंने इनकार किया और माता-पिता से कह दिया कि मैं कभी विवाह नहीं करूँगा। जमीन-जागीर सब रणधीर की है।

रणधीर के विवाह को छः महीने हुए थे कि एक दिन पिताजी को हृदय का दौरा आया और दो ही घण्टे में उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया मेरे हाथों हुई।

उत्तराधिकारी होने के नाते सारी जमीन-जागीर मेरे हाथ में आई। गद्दी पर बिठाकर मेरा तिलक भी किया गया, लेकिन मुझे उस सबका मोह नहीं था। मैंने किसानों के लगान का तीसरा भाग माफ कर दिया। परिणामतः हमें अपने खर्च कम करने पड़े। राज माँ को यह अच्छा न लगा। मैंने उनसे कहा कि जमीन उसकी है जो उसे जोतता है। हम तो उपजीवी हैं। तथापि उन्हें सन्तोष हो, ऐसी समस्त सुविधाएँ मैंने उनके लिए कर दीं। और अपना निजी खर्च एकदम कम करके रणधीर और माया को ही सारी आय देने लगा।

जैसा कि कह चुका हूँ मुझे किसी विषय में रुचि नहीं थी। गद्दी मुझे चुभ रही थी। मैंने सारी व्यवस्था रणधीर को सौंप दी। मैं पुस्तकें पढ़ने, टेनिस खेलने और मोटर चलाने में समय व्यतीत करता था। कभी-कभी माया और रणधीर दोनों और

कभी कोई अकेला मेरे साथ आते थे। माया मेरी खूब देख-भाल करती थी।

मैं देख रहा था कि मेरे प्रति उसका प्रेम—प्रेम नहीं किन्तु राग—बढ़ रहा है। वास्तव में वह रणधीर की पत्नी थी, किन्तु उसके हृदय में मैं ही उसका प्रियतम था। कभी-कभी तो मेरी उपस्थिति में वह अत्यन्त दीन और असहाय बन जाती थी। मैंने सोचा कि मेरा वहाँ रहना उसे अधिक दुःखी करना और रणधीर के प्रति अन्याय भी है। मैं लगन का पक्का और मनस्वी था, किन्तु मेरी व्यावहारिक दृष्टि ने मेरा त्याग नहीं किया था।

उन्हीं दिनों रणधीर और माया के घर रोहिणी का जन्म हुआ।

मैं त्याग के सम्बन्ध में खूब विचार करता था। क्या मैं ऐसा त्याग नहीं कर सकता जिससे मेरी आत्मा को तृप्ति हो? जमीन-जागीर, घर-बार, माता, भाई, बहू, इन सबके और विशाल जगत् के बीच मेरे लिए कौन-सा भेद हो सकता है?

एक शाम को मैं ऐसे ही विचारों में गाँव के बाहर तेजी से मोटर दौड़ा रहा था कि रास्ते के मोड़ पर वह एक व्यक्ति से टकरा गई। मैंने एकदम ब्रेक लगाया, लेकिन वह अभागा व्यक्ति पहिये के नीचे आ ही गया। दो-चार आदमी दौड़े आये और उन्होंने मुझे पहचान लिया। उन लोगों की सहायता से मैंने उसे उठाया। उसके मुँह से खून की धाराएँ बह रही थीं। मैंने उसे होश में लाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन वहीं उसके प्राण निकल गये।

मुझे इतनी वेदना हुई जैसे किसी ने मेरा हृदय चीर दिया हो। मुझे नहीं मालूम कि अपराध मेरा था या उसका। शायद था, शायद नहीं था, किन्तु इतना तो निश्चित था कि मैं उसकी मृत्यु का निमित्त बना। मुझे अपार दुःख हुआ। उसे मैं अपने घर ले गया, लेकिन सेवा-सुश्रूषा का तो अब कोई प्रश्न ही नहीं था। उस आदमी के कन्धे पर एक झोली थी, जिसमें कुछ पुरानी पुस्तकें थीं। गाँव के तथा आसपास के लोगों से पूछताछ की लेकिन कोई उसे नहीं पहचानता था। एक-दो आदमियों ने कहा कि वह व्यक्ति वर्ष में एक-दो बार पुरानी पुस्तकें खरीदने तथा बेचने के लिए आता था और वे पुस्तकें मुख्यतः भजनों की या धार्मिक कहानियों की होती थीं। सब उसे भगत कहते थे, किन्तु असली नाम या पता किसी को भी मालूम नहीं था।

पंचनामा हुआ। सारी घटना मैंने स्पष्ट कह दी। लेकिन पुलिस भी राजा साहब

से क्या कह सकती थी ! अपने अपराध का दंड मुझे स्वयं ही भोगना था। मैंने अपने हाथों से उसकी अन्तिम-क्रिया की और पन्द्रह दिन तक उसके किसी आप्त-जन की प्रतीक्षा करता रहा। और भी पन्द्रह दिन तक बाट देखी, लेकिन किसी ने उस अभागे की खबर न ली। उसकी पुस्तकें मेरे पास रहीं। नियति का कैसा संकेत ! मेरे हाथ से मरा और अपने जीवन का सर्वस्व भी मुझे देता गया ! वे सब पुस्तकें तुलसीदास और कबीर के भजनों की थीं। तीन-चार कागज और बारह-चौदह आने पैसे भी थे। उन कागजों पर कुछ हिसाब लिखा था और नीचे हस्ताक्षर थे। बड़ी कठिनाई से मैं पढ़ सका। लिखा था—'रंतिनाथ।' और भी तीन-चार नाम थे, लेकिन पता किसी का भी नहीं था।

इस घटना से मेरी आत्मा हिल उठी। अपनी जन्मगाँठ की अगली रात मुझे विचार आया कि मैं उस व्यक्ति के कपड़े पहनकर, उसकी झोली, पुस्तकें और पैसे लेकर उसी के नाम से अपनी जीवन-यात्रा क्यों न जारी रखूँ ?

रात को मैं देर तक बैठा रणधीर के नाम एक विस्तृत पत्र लिखता रहा। दूसरा पत्र लिखा भारत सरकार को। रणधीर को मैंने सूचित किया कि अब मैं सदा के लिए जा रहा हूँ, मरने के लिए नहीं, किन्तु विशाल जगत् में विलीन होने के लिए। अपनी इच्छा से सब-कुछ समझ-बूझकर तुझे सारी जमीन-जायदाद का मालिक बनाता हूँ और अपने समस्त अधिकारों का त्याग करता हूँ। माँ तथा माया को याद करता हूँ और तुम सबको माताजी के हाथों छोड़कर जाता हूँ। सरकार के नाम मैंने कानून के मुताबिक पत्र लिखा है कि मैं स्वेच्छा से अपनी सारी जमीन-जाय-दाद का अधिकार अपने छोटे भाई को देता हूँ और उसे स्वीकार करने के लिए सरकार से प्रार्थना करता हूँ। दोनो पत्रों पर मैंने साक्षी की जगह रतनसिंह के दस्त-खत कराये। मैंने रतनसिंह की पीठ थपथपाई और प्रातःकाल चार बजे धर्मवीर से रंतिनाथ बनकर गृह-त्याग किया।

आगे की कहानी संक्षिप्त है। पुस्तकें बेचकर गुजारा करता हुआ मैं उत्तर प्रदेश पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र—सारे भारत में घूमा। एक वर्ष घूमने के बाद मुझे लगा कि मेरे लिए देश कैसा ! जिसने घर छोड़ दिया वह देश को क्यों पकड़ रखे ! सौ-डेढ़ सौ रुपये तो इकट्ठे हो ही गये थे, इसलिए मैं अफ्रीका पहुँचा। वहाँ अखबार, पत्र और पुस्तकें बेचकर पच्चीसेक पौण्ड एकत्रित कर लिये। नैरोबी में

एक दिन अपनी कोठरी में बैठे-बैठे मुझे विचार आया कि 'जिस देश में तूने राग-रंग और भोग-विलास किये हैं उसी देश में जाकर फकीरी का अनुभव क्यों नहीं करता? यहाँ तो तेरा कोई परिचित नहीं है इसलिए तू बिना प्रयत्न अलग रह सकता है; लेकिन वहाँ तो तू बड़े-बड़े लार्ड परिवारों में रहा है, राजाओं की तरह जीवन बिताया है। जा, वहाँ जाकर फकीर बन, वहाँ अहंकार का नाश कर, वहाँ स्मृतियों का सामना कर।' और मैंने इंग्लैण्ड जाने का निर्णय किया।

जब मैं लन्दन पहुँचा तो मेरे पास सिर्फ दो पौण्ड थे। तुमने जिसे देखा है वह कोठरी किराये से ली और पहले ही दिन दस शिलिंग के अख़बार लेकर बेचने निकला। कुछ दिनों तक मैंने हाकर का काम किया। फिर मुझे लगा कि एक ही धन्धे का मोह किस लिए? बूटपालिश करने लगा। मैं अधिकांश रात को निकलता और दिन में ध्यान-धारणा में बैठा रहता। लगातार आठ घण्टे तक हृदय की उपासना किये बिना मुझे चैन नहीं मिलता था। बार-बार मैं अपनी अन्तिम अस्मिता में निमग्न हो जाता था। रात को मुझे वेश्याओं के बूटपालिश का काम मिलता था। मैंने पाँच-छः वर्ष कई तरह के और छोटे कहे जानेवाले धन्धे किये और फिर पुस्तकें खरीदना-बेचना प्रारम्भ किया। पुस्तकों के व्यवसाय में रोडनी की दूकान पर जब मार्था से मेरा परिचय हुआ तो मुझे इंग्लैण्ड आये बरसों हो चुके थे। अपने देश और सगे-सम्बन्धियों से मेरा सम्बन्ध तो टूट ही चुका था, किन्तु उस सृष्टि को भी मैंने अपनी स्मृति से निकाल दिया था।

वह मेरी साधना का नहीं किन्तु प्रबुद्ध दशा का काल था। चेतना के विशिष्ट अनुभव और नाड़ीचक्रों की गति मुझे सिद्ध थी। त्याग तो मेरे मन बच्चों का खेल था। राग मेरे मन एक अनजान वस्तु थी; शरीर मेरे मन चेतन के अनुभव का मन्दिर था। नाड़ियाँ उस मन्दिर का द्वार थीं। पुरुष एवं नारी चेतना के अनुभव में एक-दूसरे के सहयोगी थे। नारी का शरीर पुरुष के मन और पुरुष का शरीर नारी के मन चैतन्य-यज्ञ की वेदी थी। मेरा यह विश्वास दृढ़ हो चुका था। मानव की समुत्क्रान्ति का मार्ग मिल गया था। उन विचारों को मार्था ने आधार दिया। मार्था मेरी पूर्वजन्म की पत्नी थी। फिर आई आइलीन। आइलीन मेरी पूर्वजन्म की प्रियतमा थी और माया भी। मैं यह सब लिख रहा हूँ, क्योंकि मुझे पूर्वजन्म का स्मरण हो रहा है। पूर्वजन्म में मैं विषयी था, भोग का भँवरा था। फ्रांस के

दक्षिणी किनारे मेरा जन्म हुआ था; लेकिन इन सब बातों को विस्तारपूर्वक लिखने की आवश्यकता नहीं है। मैं इतना अवश्य कहूँगा कि अब मेरा पुनर्जन्म नहीं है, क्योंकि मैं अस्मिता को प्राप्त हो गया हूँ।

यह पुस्तक मैंने प्रकाशनार्थ नहीं लिखी है। मार्था, आइलीन और माया मुझे यथार्थ रूप में पहचानें और यदि मेरे जीवन को सार्थक मानती हों तो मण्डल का मार्गदर्शन करें। निरर्थक समझें तो मण्डल को समाप्त कर दें।

मेरे शरीर का, जो नाशवान है, मोह वे छोड़ दें। यह पुस्तक पढ़कर दृढ़ निश्चय करें कि यदि संसार को त्याग की दृष्टि से देखा जाये तो वह मोक्ष का कारण है, और राग की दृष्टि से देखा जाये तो बन्धन का।

४७ : समाधि

मार्था ने जब पुस्तक समाप्त की तो घड़ी में बारह बज रहे थे। गोद में बैठी हुई माया ने अनन्य भाव से रंतिनाथ की ओर देखा; लेकिन वह तो अग्नि की ओर इस प्रकार स्थिर दृष्टि से देख रहा था मानो ध्यानावस्थित हो।

'अरे, यह क्या!' माया के स्वर में घबराहट थी।

'समाधि!' मार्था ने शान्तिपूर्वक कहा।

'मैंने तो यह आज ही देखा।'

'ऐसा तो अनेकों बार होता है।'

'मैं तलवों की मालिश करती हूँ, तुम हथेलियाँ घिसो।' आइलीन ने कहा।

'नहीं, तुम हथेलियाँ मलो। पैरों के स्थान की जानकारी मुझे है।

माया खड़ी हुई और दूसरा पैर दबाने लगी। कुछ देर में रंतिनाथ सचेत हुआ और निर्लेप दृष्टि से देखने लगा।

'क्या हो गया था अचानक?' माया ने पूछा।

रंतिनाथ कुछ न बोला, किन्तु मार्था को संकेत किया कि बस।

'दूध ठण्डा हो गया है, पी लो।' माया ने कहा।

रंतिनाथ फिर भी मौन रहा। पाँच-दस मिनट यों ही बीत गये।

'मार्था, मुझे सोना है।' उसके शब्द मानो किसी गहरी गुफा से निकल रहे थे। उसका एक हाथ मार्था ने और दूसरा आइलीन ने पकड़ा। वह उठा।